महात्मा कबीरदास
(प्रौढ़ावस्था का चित्र)

प्रथम संस्करण की भूमिका

आज इस बात को पाँच छह वर्ष हुए होंगे, जब काशी नागरीप्रचारिणी सभा मे रक्षित हस्तलिखित हिंदी पुस्तकों की जाँच की गई थी और उनकी सूची बनाई गई थी। उस समय दो ऐसी पुस्तकों का पता चला जो बडे महत्व की थी, पर जिनके विषय मे किसी को पहले कोई सूचना नही थी। इनमे से एक तो सूरसागर की हस्तलिखित प्रति थी और दूसरी कबीरदास जी के ग्रथो की दो प्रतियाँ थी। कबीरदासजी के ग्रथो की इन दो प्रतियो मे से एक तो सवत् १५६१ की लिखी है और दूसरी सवत् १८८१ की। दोनों प्रतियो के देखने पर यह प्रकट हुआ कि इस समय कबीरदासजी के नाम से जितने ग्रथ प्रसिद्ध है उनका कदाचित् दशमाश भी इन दोनो प्रतियो मे नही है। यद्यपि इन दोनो प्रतियो के लिपिकाल मे ३२० वर्ष का अतर है पर फिर भी दोनो मे पाठभेद बहुत ही कम है। संवत् १८८१ की प्रति में संवत् १५६१ वाली प्रति की अपेक्षा केवल १३१ दोहे और ५ पद अधिक है। उस समय यह निश्चित किया गया कि इन दोनों हस्तलिखित प्रतियो के आधार पर कबीरदास जी के ग्रथों का एक सग्रह प्रकाशित किया जाय। यह कार्य पहले पंडित अयोध्यासिह जी उपाध्याय को सौपा गया और उन्होने इसे सहर्ष स्वीकार भी कर लिया। पर पीछे से समयाभाव के कारण वे यह न कर सके। तब यह मुझे सौपा गया। मैंने यथासमय यह कार्य आरभ कर दिया। मेरे दो विद्यार्थियो ने इस कार्य मे मेरी सहायता करने की तत्परता भी प्रकट की, पर इस तत्परता का अवसान दो ही तीन दिन मे हो गया। धीरे धीरे मैने इस काम को स्वय ही करना आरभ किया। सवत् १९८३ के भाद्रपद मास मे बहुत बीमार पड जाने तथा लगभग दो वर्ष तक निरतर अस्वस्थ रहने और गृहस्थी सबधी अनेक दुर्घटनाओ और आपत्तियो के कारण मै यह कार्य शीघ्रतापूर्वक न कर सका। बीच बीच मे जब जब अन्य झंझटो से कुछ समय मिला और शरीर ने कुछ कार्य करने मे समर्थता प्रकट की, तब तब मै यह कार्य करता रहा। ईश्वर की कृपा है कि यह कार्य अब समाप्त हो गया।

जैसा कि मैने ऊपर कहा है, इस सस्करण का मूल आधार सवत् १५६१ की लिखी हस्तलिखित प्रति है। यह प्रति खेमचद के पढने के लिये मलूकदास ने काशी मे लिखी थी। यह पता नही लगा कि ये खेमचद और मलूकदास कौन थे। क्या ये मलूकदासजी कबीरदासजी के वही शिष्य तो नही थे जो

जगन्नाथपुरी मे जाकर बसे और जिनकी प्रसिद्ध खिचड़ी का वहाँ अब तक भोग लगता है तथा जिसके विषय में कबीरदासजी ने स्वय कहा है 'मेरा गुरु बनारसी चेला समुदर तीर'। यदि ये वही मलूकदास हैं तो इस प्रति का महत्व बहुत अधिक है। यदि यह न भी हो, तो भी इस प्रति का मूल्य कम नही है। जैसा कि इस सस्करण की प्रस्तावना मे सिद्ध किया गया है, कबीरदासजी का निधन सवत् १५७५ मे हुआ था। यह प्रति उनकी मृत्यु के १४ वर्ष पहले की लिखी हुई है। अन्तिम १४ वर्षो मे कबीरदासजी ने जो कुछ कहा था यद्यपि वह उसमे सम्मिलित नही है, तथापि इसमे सदेह नही कि सवत् १५६१ तक की कबीरदास जी की समस्त रचनाएँ इसमे सगृहीत हैं। यह प्रति (क) मानी गई है। इसके प्रथम और अतिम दोनो पृष्ठो के चित्र इस सस्करण के साथ प्रकाशित किए जाते हैं।

दूसरी प्रति (ख) मानी गई है। यह सवत् १८८१ की लिखी है अर्थात् इस प्रति के और (क) प्रति के लिपिकाल मे ३२० वर्षो का अतर है। पर (क) और (ख) दोनो प्रतियो मे पाठभेद बहुत कम है। (ख) प्रति मे (क) प्रति की अपेक्षा १३१ दोहे और ५ पद अधिक हैं।

यह बात प्रसिद्ध है कि सवत् १६६१ मे अर्थात् (क) प्रति के लिखे जाने के १०० वर्ष पीछे गुरुग्रंथ साहब का सकलन किया गया। उसमे अनेक भक्तो की वाणी समिलित की गई है। गुरुग्रथसाहब मे कबीरदासजी की जितनी वाणी समिलित है, वह सब मैंने अलग करवाई और तब (क) तथा (ख) प्रतियो मे संमिलित पदो आदि से उसका मिलान कराया। जो दोहे और पद मूल अंश मे आ गए थे, उनको छोडकर शेष सब दोहे और पद परिशिष्ट मे दे दिए गए हैं।

ग्रथसाहब तथा दोनो हस्तलिखित प्रतियो का मिलान करने पर नीचे लिखे दोहे और पद दोनो प्रतियो मे मिले।

पृष्ठ	दोहा	पृष्ठ	दोहा
पृष्ठ २	दो० १०	पृष्ठ २६	दो० ५४
पृष्ठ ५	दो० ६, ११, १२, १३	पृष्ठ २८	दो० ७
पृष्ठ ६	दो० १६	पृष्ठ ३८	दो० १ (१९)
पृष्ठ ७	दो० २५	पृष्ठ ४२	दो० २ (२२)
पृष्ठ ११	दो० ४४	पृष्ठ ४३	दो० ६, १
पृष्ठ १८	दो० ३ (१०)	पृष्ठ ४७	दो० १
पृष्ठ १९	दो० ३	पृष्ठ ५०	दो० ७
पृष्ठ २०	दो० १४, १	पृष्ठ ५१	दो० २, ६
पृष्ठ २४	दो० ३३	पृष्ठ ५४	दो० ५, ६, ११
पृष्ठ २५	दो० ४३, ४६	पृष्ठ ६१	दो० ६, १

पृष्ठ ६२	दो० ५	पृष्ठ ७८	दो० ३
पृष्ठ ६४	दो० ५, ६	पृष्ठ ८२	दो० १
पृष्ठ ६५	दो० ११, १४	पृष्ठ ८५	दो० ६
पृष्ठ ६६	दो० ४	पृष्ठ ९७	प० २७
पृष्ठ ६९	दो० १३	पृष्ठ १००	प० ३९
पृष्ठ ७१	दो० ३३	पृष्ठ २०८	प० ३५९, ३६२
पृष्ठ ७३	दो० १०	पृष्ठ २२०	प० ४००❀
पृष्ठ ७७	दो० ७, २		

इनके अतिरिक्त पादटिप्पणियो मे जो (ख) प्रति मे अधिक दोहे दिए गए हैं, उनमे से साखी (४१) के दोहे १८, १९ और २० तथा साखी (४६) का दोहा ३८ उस प्रति और गुरुग्रंथसाहव दोनो मे समान है। इस प्रकार दोनों हस्तलिखित प्रतियो और गुरुग्रथसाहव मे ४८ दोहे और ५ पद ऐसे है जो दोनो मे समान हैं। इनको छोडकर ग्रथसाहव मे जो दोहे या पद अधिक मिले हैं वे परिशिष्ट में दे दिए गए हैं। इनमे १९२ दोहे और २२२ पद है। इस प्रकार इस संस्करण मे कवीरदासजी के दोहो और पदों का अत्यत प्रामाणिक सग्रह दिया गया है। यह कहना तो कठिन है कि इस सग्रह मे जो कुछ दिया गया है, उसके अतिरिक्त और कुछ कवीरदासजी ने कहा ही नही, पर इतना अवश्य है कि इनके अतिरिक्त और जो कुछ कवीरदासजी के नाम पर मिले उसे सहसा उन्हीं का कहा हुआ तव तक स्वीकार नही कर लेना चाहिए, जव तक उसके प्रक्षिप्त न होने का कोई दृढ प्रमाण न मिल जाय।

❀ इन दोहों का क्रम प्रस्तुत सस्करण मे निम्नलिखित है—

साखी	(१)	दो० १०	साखी	(३७)	दो० ९
,,	(२)	,, ९, ११-१३, १६, २४	,,	(३८)	,, ४, ५
,,	(३)	,, ४४	,,	(४१)	,, ५, ६, ११, १४
,,	(१०)	,, ३	,,	(४३)	,, ४
,,	(११)	,, ३, १४	,,	(४५)	,, १३, ३३
,,	(१२)	,, १, ३३, ४३, ४६, ५४	,,	(४६)	,, १०
,,	(१३)	,, ७	,,	(४७)	,, ७
,,	(१९)	,, १	,,	(४८)	,, २
,,	(२२)	,, २, ९	,,	(४९)	,, ३
,,	(२३)	,, ७	,,	(५४)	,, १
,,	(२४)	,, १	,,	(५६)	,, ६
,,	(२८)	,, ७			
,,	(२९)	,, २, ६			
,,	(३१)	,, ५, ९, ११			

तथा पद सख्या २७, ३९, ३५९, ३६२ और ४००।

इस संबंध मे ध्यान रखने योग्य एक और बात यह है कि इस संग्रह मे दिए हुए दोहों आदि को भाषा और कबीरदासजी के नाम पर बिकनेवाले ग्रंथों मे के पदो आदि की भाषा मे आकाशपाताल का अंतर है। इस संग्रह के दोहों आदि की भाषा भाषाविज्ञान की दृष्टि से कबीरदासजी के समय के लिये बहुत उपयुक्त है और वह हिंदी के १६वी तथा १७वी शताब्दी के रूप के ठीक अनुरूप है। और इसीलिये इन पदों और दोहों को कबीरदासजी रचित मानने में आपत्ति नहीं हो सकती। परंतु कबीरदासजी के नाम पर आजकल जो बड़े बड़े ग्रंथ देखने मे आते हैं, उनकी भाषा बहुत ही आधुनिक और कहीं कहीं तो बिलकुल आजकल की खड़ी बोली ही जान पड़ती है। आज के प्रायः तीन साढे तीन सौ वर्ष पूर्व कबीरदासजी आजकल की सी भाषा लिखने मे किस प्रकार समर्थ हुए होंगे, यह विषय बहुत ही विचारणीय है।

इस संस्करण मे कबीरदासजी के जो दोहे और पद सम्मिलित किए गए हैं, उन्हें मैंने आजकल की प्रचलित परिपाटी के अनुसार खराद पर चढाकर सुडौल, सुंदर और पिंगल के नियमों से शुद्ध बनाने का कोई उद्योग नहीं किया। वरन् मेरा उद्देश्य यही रहा है कि हस्तलिखित प्रतियो या ग्रंथसाहब मे जो पाठ मिलता है, वही ज्यो का त्यो प्रकाशित कर दिया जाय। कबीरदासजी के पूर्व के किसी भक्त की वाणी नही मिलती। हिंदी साहित्य के इतिहास मे वीरगाथा काल की समाप्ति पर मध्यकाल का आरंभ कबीरदासजी से होता है, अतएव इस काल के वे आदि कवि हैं। उस समय भाषा का रूप परिमार्जित और संस्कृत नही हुआ था। तिस पर कबीरदासजी स्वयं पढे लिखे नही थे। उन्होने जो कुछ कहा है, वह अपनी प्रतिभा तथा भावुकता के वशीभूत होकर कहा है। उनमे कवित्व उतना नही था जितनी भक्ति और भावुकता थी। उनकी अटपट वाणी हृदय मे चुभनेवाली है। अतएव उसे ज्यो का त्यो प्रकाशित कर देना ही उचित जान पड़ा और यही किया भी गया है, हाँ, जहाँ मुझे स्पष्ट लिपि-दोष देख पडा, वहाँ मैंने सुधार दिया है, और वह भी कम से कम उतना ही जितना उचित और नितांत आवश्यक था।

एक और बात विशेष ध्यान देने योग्य है। कबीरदासजी की भाषा मे पंजाबीपन बहुत मिलता है। कबीरदास ने स्वयं कहा है कि मेरी बोली बनारसी है। इस अवस्था मे पंजाबीपन कहाँ से आया? ग्रंथसाहब मे कबीरदासजी की वाणी का जो संग्रह किया गया है, उसमे जो पंजाबीपन देख पडता है, उसका कारण तो स्पष्ट रूप से समझ में आ सकता है, पर मूल भाग मे अथवा दोनों हस्तलिखित प्रतियों मे जो पंजाबीपन देख पडता है, उसका कुछ कारण समझ

में नही आता। या तो यह लिपिकर्ता की कृपा का फल है अथवा पजावी साधुओ की संगति का प्रभाव है। कही कही तो स्पष्ट पजावी प्रयोग और मुहावरे आ गए है जिनको वदल देने से भाव तथा शैली मे परिवर्तन हो जाता है। यह विषय विचारणीय है। मेरी समझ मे कवीरदासजी की वाणी मे जो पजावीपन देख पड़ता है उसका कारण उनका पंजावी साधुओ से ससर्ग ही मानना समीचीन होगा।

इस सस्करण के साथ कवीरदासजी के दो चित्र प्रकाशित किए जाते है, एक तो कलकत्ता म्यूजियम से प्राप्त हुआ है और दूसरा कवीरपथी स्वामी युगलानदजी से मिला है। दोनो मे से किसी चित्र का कोई ऐसा प्रामाणिक इतिहास नही मिला जिसकी कुछ जाँच की जा सकती पर जहाँ तक मैं समझता हूँ, वृद्धावस्था का चित्र ही जो कवीरपथी साधु युगलानदजी से प्राप्त हुआ है अधिक प्रामाणिक जान पड़ता है।

इस ग्रथ का परिशिष्ट प्रस्तुत करने मे मेरे छात्र पडित अयोध्यानाथ शर्मा एम० ए० ने वडा परिश्रम किया है। यदि वे यह कार्य न करते तो मुझे वहुत कुछ कठिनता का सामना करना पड़ता। इसी प्रकार प्रस्तावना के लिये सामग्री एकत्र करने और उसे व्यवस्थित रूप देने मे मेरे दूसरे छात्र पंडित पीताम्वरदत्त वडथ्वाल एम० ए० ने मेरी जो सहायता की है वह वहुत ही अमूल्य है। सच वात तो यह है कि यदि मेरे ये दोनो प्रिय छात्र इस प्रकार मेरी सहायता न करते, तो अभी इस सस्करण के प्रकाशित होने में और भी अधिक समय लग जाता। इस सहायता के लिये मै इन दोनो के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करता हूँ। इनके अतिरिक्त और भी दो तीन विद्यार्थियो ने मेरी सहायता करने मे कुछ कुछ तत्परता दिखाई पर किसी का तो काम ही पूरा न उतरा, किसी ने टालमटूल कर दी और किसी ने कुछ कर कराकर अपने सिर से वला टाली। अस्तु, सभी ने कुछ न कुछ करने का उद्योग किया और मैं इन सवके प्रति कृतज्ञता प्रगट करता हूँ।

काशी ज्येष्ठ कृष्ण १३, १९८५	}	श्यामसुदरदास

प्रस्तावना

काल की कठोर आवश्यकताएं महात्माओ को जन्म देती है। कबीर का जन्म भी समय की विशेष आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए हुआ था।

आविर्भाव काल

अवसर के उचित उपयोग से अनभिज्ञ और कर्मठता से उदासीन रहनेवाली हिंदू जाति को धर्मजन्य दयालुता ने उसे दासता के गर्त मे ढकेल दिया था। उसका शूरवीरत्व उसके किसी काम न आया। वीरता के साथ साथ वीरगाथाओ और वीरगीतो की अतिम प्रतिध्वनि भी रणथभौर के पतन के साथ ही विलीन हो गई। शहाबुद्दीन गोरी (मृत्यु स० १२६३) के समय से ही इस देश मे मुसलमानो के पाँव जमने लग गए थे, उसके गुलाम कुतुबुद्दीन ऐबक (सं० १२६३–१२७३) ने गुलाम वश की स्थापना कर पठानी सल्तनत और भी दृढ कर दी। भारत की लक्ष्मी पर लुब्ध मुसलमानो का विकराल स्वरूप, जिसे उनकी धर्मांधता ने और भी अधिक विकराल बना दिया था, अलाउद्दीन खिलजी (सं० १३५२–१३७२) के समय मे भलीभाँति प्रकट हुआ। खेतो मे खून और पसीना एक करनेवाले किसानों की कमाई का आधे से अधिक अंश भूमिकर के रूप मे राजकोष में जाने लगा। प्रजा दाने दाने को तरसने लगी। सोने चाँदी की तो बात ही क्या, हिंदुओ के घरो मे ताँबे पीतल के थाली लोटों तक का रहना सुलतान को खटकने लगा। उनका घोडे की सवारी करना और अच्छे कपड़े पहनना महान अपराधो में गिना जाने लगा। नाम मात्र के अपराध के लिये भी किसी की खाल खिचवाकर उसमे भूसा भरवा देना एक साधारण बात थी। अलाउद्दीन खिलजी के लडके कुतुबुद्दीन मुबारक (सं० १३७३–१३७७) के शासनकाल मे जब देवगिरि का राजा हरपाल बंदी करके दिल्ली लाया गया, तब उसकी यही दशा हुई। मंदिरों को गिराकर उसके स्थान पर मस्जिदें बनाने का लग्गा तो बहुत पहले ही लग चुका था, अब स्त्रियो के मान और पातिव्रत की रक्षा करना भी कठिन हो गया। चित्तौर पर अलाउद्दीन की दो चढ़ाइयाँ केवल अतुल सुंदरी पद्मिनी की ही प्राप्ति के लिए हुईं, अंत मे गढ़ के टूट जाने और अपने पति भीमसी के वीरगति पाने पर पुण्यप्रतिमा महाराणी पद्मिनी ने अन्य वीर क्षत्राणियो के साथ अपने मान की रक्षा के लिए अग्निदेव के क्रोड़ मे शरण ली और जौहर करके हिंदू जाति का मस्तक ऊँचा किया। तुगलक वश के अधिकारारूढ़

होने पर भी ये कष्ट कम नही हुए वरन् मुहम्मद तुगलक (सं० १३८२-१४०८) की ऊटपटांग व्यवस्थाओ मे और भी बढ गए। समस्त राजधानी, जिसमे नवजात शिशु से लेकर मरणोन्मुख वृद्ध तक थे, दिल्ली से लाकर दौलताबाद मे बसाई गई। परतु जब वहाँ आने से अधिक लोग मर गए तब सबको फिर दिल्ली लौट जाने की आज्ञा दी गई। हिंदू जाति के लिए जीवन धीरे धीरे एक भार सा होने लगा, कही से आशा की झलक तक न दिखाई देती थी। चारो ओर निराशा और निरवलवता का अधकार छाया हुआ था। हिंदू रक्त ने खुसरो की नसो मे उबलकर हिंदू राज्य की स्थापना का प्रयत्न किया तो था (वि० स० १३०८) पर वह सफल न हो सका। इसके अनतर सारी आशाएँ बहुत दिनो के लिए मिट्टी मे मिल गई। तैमूर के आक्रमण ने देश को जहाँ तहाँ उजाड़कर नैराश्य की चरम सीमा तक पहुँचा दिया। हिंदू जाति मे से जीवन शक्ति के सब लक्षण मिट गए। विपत्ति की चरम सीमा तक पहुँचकर मनुष्य पहले तो परमात्मा की ओर ध्यान लगाता है और अनेक कष्टो से त्राण पाने की आशा करता है, पर जब स्थिति मे सुधार नही होता, तब परमात्मा की भी उपेक्षा करने लगता है, उसके अस्तित्व पर उसका विश्वास ही नही रह जाता। कबीर के जन्म के समय हिंदू जाति की यही दशा हो रही थी। वह समय और परिस्थिति अनीश्वरवाद के लिये बहुत ही अनुकूल थी, यदि उसकी लहर चल पड़ती तो उसे रोकना बहुत ही कठिन हो जाता। परतु कबीर ने बडे ही कौशल से इस अवसर से लाभ उठाकर जनता को भक्तिमार्ग की ओर प्रवृत्त किया और भक्तिभाव का प्रचार किया। प्रत्येक प्रकार की भक्ति के लिये जनता इस समय तैयार नही थी। मूर्तियो की अशक्तता वि० स० १०८१ मे बडी स्पष्टता से प्रगट हो चुकी थी जब कि महमूद गजनवी ने आत्मरक्षा से विरत, हाथ पर हाथ रखकर बैठे हुए श्रद्धालुओ को देखते देखते सोमनाथ का मंदिर नष्ट करके उनमे से हजारो को तलवार के घाट उतारा था। गजेंद्र की एक ही टेर सुनकर दौड आनेवाले और ग्राह से उसकी रक्षा करनेवाले सगुण भगवान जनता के घोर सकटकाल मे भी उसकी रक्षा के लिए आते हुए न दिखाई दिए। अतएव उनकी ओर जनता को सहसा प्रवृत्त कर सकना असभव था। पढरपुर के भक्तशिरोमणि नामदेव की सगुण भक्ति जनता को आकृष्ट न कर सकी, लोगो ने उनका वैसा अनुकरण न किया जैसा आगे चलकर कबीर का किया, और अत मे उन्हें भी ज्ञानाश्रित निर्गुण भक्ति की ओर झुकना पड़ा। उस समय परिस्थिति केवल निराकार और निर्गुण ब्रह्म की भक्ति के ही अनुकूल थी, यद्यपि निर्गुण की शक्ति का भलीभाँति अनुभव नही किया जा सकता था, उसका आभास मात्र मिल सकता था। पर

प्रबल जलधार मे बहते हुए मनुष्य के लिये यह कूलस्थ मनुष्य या चट्टान किस काम की है जो उसकी रक्षा के लिये तत्परता न दिखलाए। पर उसकी ओर बहकर आता हुआ एक तिनका भी उसके हृदय मे जीवन की आशा पुनरुद्दीप्त कर देता है और उसी का सहारा पाने के लिये वह अनायास हाथ बढा देता है। कबीर ने अपनी निर्गुण भक्ति के द्वारा यही आशा भारतीय जनता के हृदय मे उत्पन्न की और उसे कुछ अधिक समय तक विपत्ति की इस अथाह जलराशि के ऊपर बने रहने की उत्तेजना दी, यद्यपि सहायता की आशा से आगे बढे हुए हाथ को वास्तविक सहारा सगुण भक्ति से ही मिला और केवल रामभक्ति ही उसे किनारे पर लाकर सर्वथा निरापद कर सकी। रामभक्ति ने केवल सगुण कृष्णभक्ति के समान जनता की दृष्टि जीवन के आनंदोल्लासपूर्ण पक्ष की ओर ही नही लगाई, प्रत्युत आनदविरोधिनी अमांगलिक शक्तियो के सहार का विधान कर दूसरे पक्ष मे भी आनद की प्राण-प्रतिष्ठा की। पर इससे जनता पर होनेवाले कबीर के उपकार का महत्व कम नही हो जाता। कबीर यदि जनता को भक्ति की ओर न प्रवृत्त करते तो क्या यह सभव था कि लोग इस प्रकार सूर की कृष्णभक्ति अथवा तुलसी की रामभक्ति आँखे मूँदकर ग्रहण कर लेते? साराश यह है कि कबीर का जन्म ऐसे समय मे हुआ जब कि मुसलमानो के अत्याचारो से पीड़ित भारतीय जनता को अपने जीवित रहने की आशा नही रह गई थी और न उसमे अपने आपको जीवित रखने की इच्छा ही शेष रह गई थी। उसे मृत्यु या धर्मपरिवर्तन के अतिरिक्त और कोई उपाय ही नही देख पड़ता था। यद्यपि धर्मज्ञ तत्वज्ञो ने सगुण उपासना से आगे बढते बढते निर्गुण उपासना तक पहुँचने का सुगम मार्ग बतलाया है और वास्तव मे यह तत्व बुद्धिसगत भी जान पडता है, पर उस समय सगुण उपासना की नि सारता का जनता को परिचय मिल चुका था और उस पर से उसका विश्वास भी हट चुका था। अतएव कबीर को अपनी व्यवस्था उलटनी पडी। मुसलमान भी निर्गुण उपासक थे। अतएव उनसे मिलते जुलते पथ पर लगाकर कबीर ने हिंदू जनता को सतोष और शाति प्रदान करने का उद्योग किया। यद्यपि उस उद्योग मे उन्हें सफलता नही प्राप्त हुई, तथापि यह स्पष्ट है कि कबीर के निर्गुणवाद ने तुलसी और सूर के सगुणवाद के लिये मार्ग परिष्कृत कर दिया और उत्तरी भारत के भावी धर्ममय जीवन के लिए उसे बहुत कुछ सस्कृत और परिष्कृत बना दिया।

जिस समय कबीर आविर्भूत हुए थे, वह समय ही भक्ति की लहर का था। उस लहर को बढाने के प्रबल कारण भी प्रस्तुत थे। मुसलमानो के भारत में आ बसने से परिस्थिति मे बहुत कुछ परिवर्तन हो गया। हिंदू जनता का

नैराश्य दूर करने के लिये भक्ति का आश्रय ग्रहण करना आवश्यक थ
इसके अतिरिक्त कुछ लोगो ने हिंदू और मुसल
भक्त संतो की परंपरा दोनो विरोधी जातियो को एक करने की आवश्य
का भी अनुभव किया। इस अनुभव के मूल
एक ऐसे सामान्य भक्तिमार्ग का विकास गर्भित था जिसमे परमात्मा की ए
के आधार पर मनुष्यो की एकता का प्रतिपादन हो सकता था और जि
मूलाधार भारतीय ब्रह्मवाद तथा मुसलमानी खुदावाद की स्थूल समा
हुई। भारतीय अद्वैतवाद और मुसलमानी एकेश्वरवाद के सूक्ष्मभेद की
ध्यान नही दिया गया और दोनो के एक विचित्र मिश्रण के रूप मे निर्
भक्तिमार्ग चल पडा। रामानंदजी के बारह शिष्यो मे से कुछ इस मार्ग
प्रवर्तन मे प्रवृत्त हुए, जिनमे से कबीर प्रमुख थे। शेष मे सेना, धना, भवा
पीपा और रैदास थे, परंतु उनका उतना प्रभाव न पड़ा जितना कबीर क
नरहर्यानंदजी ने अपने शिष्य गोस्वामी तुलसीदास को प्रेरित करके उ
कर्तृत्व मे सगुण रामभक्ति का एक और ही स्रोत प्रवाहित कराया।

मुसलमानो के आगमन से हिंदू समाज पर एक और प्रभाव पडा।
दलित शूद्रो की दृष्टि मे उन्मेष हो गया। उन्होने देखा कि मुसलमानो
द्विजो और शूद्रो का भेद नही है। सधर्मी होने के कारण वे सब एक
उनके व्यवसाय ने उनमे कोई भेद नही डाला है, न उनमे कोई छोटा
और न कोई बडा। अतएव इन ठुकराए हुए शूद्रो मे से ही कुछ ऐसे महात
निकले जिन्होने मनुष्यो की एकता को उद्घोषित करना चाहा। इन न
रियत भक्तितरग मे सम्मिलित होकर हिंदू समाज मे प्रचलित इस भेदभाव
विरुद्ध भी आवाज उठाई गई। रामानंदजी ने सबके लिए भक्ति का म
खोलकर उनको प्रोत्साहित किया। नामदेव दरजी, रैदास चमार, द
धुनिया, कबीर जुलाहा आदि समाज की नीची श्रेणी के ही थे, परंतु उन
नाम आज तक आदर से लिया जाता है।

वर्णभेद से उत्पन्न उच्चता और नीचता को ही नही, वर्गभेद से उत्प
उच्चता नीचता को भी दूर करने का इस निर्गुण भक्ति ने प्रयत्न किया। स्त्रि
का पद स्त्री होने के कारण नीचा न रह पाया। पुरुषो के ही समान वे
भक्ति की अधिकारिणी हुई! रामानंदजी के शिष्यो मे से दो स्त्रियाँ थी, ए
पद्मावती और दूसरी सुरसरी। आगे चलकर सहजोबाई और दयाबाई
भक्तसतो मे से हुई। स्त्रियो की स्वतत्रता के परम विरोधी, उनको घर
चहारदीवारी के अदर ही कैद रखने के कट्टर पक्षपाती तुलसीदास जी भी
मीराबाई को 'राम विमुख तजिय कोटि बैरी सम यद्यपि परम सनेही'
उपदेश दे सके, वह निर्गुण भक्ति के ही अनिवार्य और अलक्ष्य प्रभाव

प्रसाद से समझना चाहिए । ज्ञानी संतों ने स्त्री की जो निंदा की है, वह दूसरी ही दृष्टि से है। स्त्री से उनका अभिप्राय स्त्री पुरुष के कामवासनापूर्ण संसर्ग से है । स्त्री की निंदा कबीर से बढ़कर कदाचित् ही किसी ने की हो, परंतु पतिपत्नी की भाँति न रहते हुए भी लोई का आजन्म उनके साथ रहना प्रसिद्ध है ।

कबीर इस निर्गुण भक्तिप्रवाह के प्रवर्तक है, परतु भक्त नामदेव इनसे भी पहले हो गए थे । नामदेव का नाम कबीर ने शुक, उद्धव, शकर आदि ज्ञानियो के साथ लिया है—

'जागे सुक ऊधव अक्रूर हणवत जागे लै लँगूर ।
संकर जागे चरन सेव, कलि जागे नामाँ जैदेव ॥'

अक्रूर, हनुमान और जयदेव की गिनती ज्ञानियो (जाग्रतो) मे कैसे हुई, यह नही कह सकते । नामदेव जी जाति के दर्जी थे और दक्षिण के सतारा जिले के नरसी बमनी नामक स्थान मे उत्पन्न हुए थे । पढरपुर मे विठोबाजी का मंदिर है । ये उनके बड़े भक्त थे । पहले ये सगुणोपासक थे, परंतु आगे चलकर इनका झुकाव निर्गुणभक्ति की ओर हो गया, जैसा उनके गायनो के नीचे दिए उदाहरणो से पता चलेगा—

(क) 'दशरथ राय नद राजा मेरा रामचद्र,
प्रणवै नामा तत्व रस अमृत पीजै ॥'

❀ ❀ ❀

'धनि धनि मेघा रोमावली । धनि धनि कृष्ण ओढ़ै काँवली ॥
धनि धनि तू माता देवकी । जिह घर रमैया कँमलापति ॥
धनि धनि वनखड वृंदावना । जहँ खेलै श्रीनारायना ॥
वेनु बजावै गोधन चारै । नामे का स्वामी आनद करै ॥'

(ख) 'पाडे तुम्हारी गायत्री लोधे का खेत खाती थी ॥
लैकरि ठेगा टँगरी तोरी लगत लंगत जाती थी ॥
पांडे तुम्हारा महादेव धौले बलद चढा आवत देखा था ॥
पाडे तुम्हारा रामचंद्र सो भी आवत देखा था ॥
रावन सेती सरवर होई घर की जोय गँवाई थी ॥'

कबीर के पीछे तो मतो की मानो बाढ सी आ गई और अनेक मत चल पड़े। पर सब पर कबीर का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित है । नानक, दादू, शिवनारायण, जगजीवनदास आदि जितने प्रमुख सत हुए, सबने कबीर का अनुकरण किया और अपना अपना अलग मत चलाया । इनके विषय की मुख्य बाते ऊपर आ गई हैं, फिर भी कुछ बातो पर ध्यान दिलाना आवश्यक है । सबने नाम, शब्द, सद्गुरु आदि की महिमा गाई है और मूर्तिपूजा,

अवतारवाद तथा कर्मकाड का विरोध किया है, तथा जातिपांति का भेदभाव मिटाने का प्रयत्न किया है, परतु हिंदू जीवन मे व्याप्त सगुण भक्ति और कर्मकाड के प्रभाव से इनके परिवर्तित मतो के अनुयायियो द्वारा वे स्वय परमात्मा के अवतार माने जाने लगे है, और उनके मतो मे भी कर्मकांड का पाखड घुस गया है । कई मतो मे केवल द्विज लिये जाते है । केवल नानकदेवजी का चलाया सिक्ख सप्रदाय ही ऐसा है जिसमे जातिपांति का भेद नही आने पाया, परतु उसमे भी कर्मकाड की प्रधानता हो गई है और ग्रथसाहब का प्रायः वैसा ही पूजन किया जाता है जैसा मूर्तिपूजक मूर्ति का करते है । कवीरदास के मनगढत चित्र बनाकर उनकी पूजा कबीरपथी मठो मे भी होने लग गई है और सुमिरनी आदि का प्रचार हो गया है ।

यद्यपि आगे चलकर निर्गुण मत मतो का वैष्णव सप्रदायो मे बहुत भेद हो गया, तथापि इसमे सदेह नही की मतधारा का उद्गम भी वैष्णव भक्ति रूपी स्रोत से ही हुआ है । श्रीरामानुज ने सवत् ११४८ मे यादवाचल पर नारायण की मूर्ति स्थापित करके दक्षिण मे वैष्णव धर्म का प्रवाह चलाया था पर उनका भक्ति का आधार ज्ञानमार्गी अद्वैतवाद था उनका अद्वैत विशिष्टाद्वैत हुआ । गुजरात मे माधवाचार्य ने द्वैतमूलक वैष्णव धर्म का प्रवर्तन किया । जो कुछ कहा जा चुका है, उससे पता लगेगा कि मत धारा अधिकतर ज्ञानमार्ग के ही मेल मे रही । पर उधर बगाल मे महाप्रभु चैतन्यदेव और उत्तर भारत मे वल्लभाचार्यजी के प्रभाव से भक्ति के लिये परमात्मा के सगुण रूप की प्रतिष्ठा की गई यद्यपि सिद्धात रूप मे ज्ञानमार्ग का त्याग नही किया गया । और तो और तुलसीदासजी तक ने ज्ञानमार्ग की बातो का निरूपण किया है, यद्यपि उन्होने उन्हे गौणस्थान दिया है । सतो में भी कही कही अनजान मे सगुणवाद आ गया है और विशेषकर कबीर मे क्योंकि भक्ति गुणो का आश्रय पाकर ही हो सकती है । शुद्ध ज्ञानाश्रयी उपनिषदो तक मे उपासना के लिये ब्रह्म मे गुणो का आरोप किया गया है । फिर भी तथ्य की बात यह जान पडती है कि वैष्णव सप्रदाय ने आगे चलकर व्यवहार मे सगुण भक्ति का आश्रय लिया, तब भी सत मतो ने ज्ञानाश्रयी निर्गुण भक्ति ही से अपना सबध रखा ।

यहाँ पर यह कह देना उचित जँचता है कि कबीर सारत: वैष्णव थे । अपने आपको उन्होने वैष्णव तो कही नही कहा है, परतु वैष्णव की जितनी प्रशसा की है, उससे उनकी वैष्णवता का बहुत पुष्ट प्रमाण मिलता है—

'मेरे सगी द्वै जणा एक वैष्णव एक राम ।
वो है दाता मुक्ति का वो सुमिरावै नाम ।'

'कबीर धनि ते सुदरी जिनि जाया बैसनौ पूत ।
राम सुमिरि निरभै हुआ सब जग गया अऊत ।।
साकत बाभँण मति मिलै बेसनौ मिलै चडाल ।
अंकमाल दे भेटिए मानौ मिलै गोपाल ।।'

शाक्तो की निंदा के लिये यह तत्परता उनकी वैष्णवता का ही फल है। शाक्त को उन्होंने कुत्ता तक कह डाला है--

साकत -सुनहा दूनो भाई, एक नीदै एक भौकत जाई ।

जो कुछ संदेह उनकी वैष्णवता मे रह जाता है, वह रामानंदजी को गुरु बनाने की उनकी आकुलता से दूर हो जाना चाहिए । अन्य वैष्णवो में और उनमे जो भेद दिखाई देता है उसका कारण, जैसा कि हम आगे चलकर बतावगे, उनके सिद्धांत और व्यवहार मे भेद न रखने का फल है।

कबीरदास के जीवनचरित्र के सबंध मे तथ्य की बाते बहुत कम ज्ञात हैं; यहाँ तक कि उनके जन्म और मरण के सवतो के विषय मे भी अब तक कोई निश्चित बातें नही ज्ञात हुई है । कबीरदास के विषय में लोगों ने जो कुछ लिखा है, सब जनश्रुतियों के आधार पर है। इनका समय भी अनुमान के आधार पर निश्चित किया गया है। डा० हटर ने इनका जन्म संवत् १४३७ में और विलसन साहब ने मृत्यु स० १५०५ मे मानी है। रेवरेंड वेस्टकाट के अनुसार इनका जन्म सवत् १४९७ मे और मृत्यु सं० १५७५ मे हुई । कबीरपंथियों में इनके जन्म के विषय में यह पद्य प्रसिद्ध है--

कालनिर्णय

'चौदह सौ पचपन साल गए, चद्रवार एक ठाठ ठए ।
जेठ सुदी बरसायत को पूरनमासी तिथि प्रगट भए ।।
घन गरजे दामिनि दमके बूँदे बरषे झर लाग गए ।
लहर तलाब मे कमल खिले तहँ कबीर भानु प्रगट हुए ।।'

यह पद्य कबीरदास के प्रधान शिष्य और उत्तराधिकारी धर्मदास का कहा हुआ बताया जाता है । इसके अनुसार कबीरदास का जन्म लोगों ने संवत् १४५५ ज्येष्ठ शुक्ल पूर्णिमा चद्रवार को माना है, परतु गणना करने से सवत् १४५५ मे ज्येष्ठ शुक्ल पूर्णिमा चंद्रवार को नही पड़ती । पद्य को ध्यान से पढने पर सवत १४५६ निकलता है, क्योंकि उसने स्पष्ट शब्दो में लिखा है 'चौदह सौ पचपन साल गए, अर्थात् उस समय तक सवत् १४५५ बीत गया था ।

ज्येष्ठ मास वर्ष के आरंभिक मासो मे है, अतएव उसके लिये चौदह सौ पचपन साल गए लिखना स्वाभाविक भी है, क्योंकि वर्षारंभ मे नवीन संवत् लिखने का उतना अभ्यास नही रहता । सं० १४५६ मे ज्येष्ठ शुक्ल पूर्णिमा

चंद्रवार को ही पडती है। अतएव यही संवत् कबीर के जन्म का ठीक सवत् जान पडता है।

इनके निधन के सबध मे दो तिथियाँ प्रसिद्ध हैं--

(१)'सवत् पद्रह सौ श्रौ पाच मौ, मगहर कियो गमन।
श्रगहन सुदी एकादशी, मिले पवन मे पवन॥'

(२) 'सवत् पद्रह सौ पछत्तरा, कियो मगहर को गवन।
माघ सुदी एकादशी, रलो पवन मे पवन॥'

एक के श्रनुसार इनका परलोकवास सवत् १५०५ मे श्रौर दूसरे के श्रनुसार १५७५ मे ठहरता है। दोनो तिथियो मे ७० वर्ष का श्रतर है। वार न दिए रहने के कारण ज्योतिष की गणना से तिथियो की जाँच नहीं की जा सकती।

डाक्टर फ्यूरर ने श्रपने 'मानुमेंटल एटीक्विटीज श्राफ दि नार्थ वेस्टर्न प्राविसेज' नामक ग्रथ मे लिखा है कि बस्ती जिले के मगहर ग्राम मे, श्रामी नदी के दक्षिण तट पर, कबीरदासजी का रौजा है जिसे सन् १४५० (सवत् १५०७) मे बिजली खाँ ने बनवाया श्रौर जिसका जीर्णोद्धार सन् १५६७ (सवत् १६२४) मे नवाब फिदाई खाँ ने कराया। यदि ये सवत् ठीक है तो कबीर की मृत्यु सवत् १५०७ के पहले ही हो चुकी थी। इस बात को ध्यान मे रखकर दखने से १५०५ ही इनका निधन सवत् ठहरता है, श्रौर इनका जन्म सवत् १४५६ मान लेने से इनकी श्रायु केवल ४६ वर्ष की ठहरती है। मेरा श्रनुमान था कि डाक्टर फ्यूरर ने मगहर के रौजे के बनने तथा जीर्णोद्धार के सवत् उसमे खुदे किसी शिलालेख के श्राधार पर दिए होगे। इस श्रनुमान से मैं बहुत प्रसन्न था कि इस शिलालेख के श्राधार पर कबीर जी का समय निश्चित हो जायगा; पर पूछताछ करने पर पता लगा कि वहाँ कोई शिलालेख नही है। डाक्टर साहब ने जिस ढग से सवत् दिए है, उससे तो यही जान पडता है कि उनके पास कोई श्राधार श्रवश्य था। परतु जब तक उस श्राधार का पता नही लगता, तब तक मै पुष्ट प्रमाणो के श्रभाव मे इन सवतो को निश्चित मानने मैं श्रसमर्थ हूँ। श्रौर भी कई बाते है जिनमे इन संवतो को श्रप्रामाणिक मानने को ही जी चाहता है। इन पर श्रागे विचार किया जाता है।

यह बात प्रसिद्ध है कि कबीरदास सिकदर लोदी के समय मे हुए थे श्रौर उसके कोप के कारण ही उन्हे काशी छोडकर जाना पडा था। सिकदर लोदी का राजत्वकाल सन् १५१७ (सवत् १५७४) से सन् १५२६ (संवत् १५८३) तक माना जाता है। इस श्रवस्था मे यदि कबीर का निधन संवत्

१५०५ मान लिया जाय तो उनका सिकंदर लोदी के समय मे वर्तमान रहना असभव सिद्ध होता है।

गुरु नानकदेवजी ने कबीर की अनेक साखियो और पदो को आदि ग्रंथ में उद्धृत किया है। गुरु नानकजी का जन्म सवत् १५२६ मे और मृत्यु संवत् १५९६ मे हुई। रेवरंड वेस्टकाट लिखते हैं कि जब नानक २७ वर्ष के थे, तब कबीरदासजी से उनकी भेट हुई थी। नानकदेवजी पर कबीरदास का इतना स्पष्ट प्रभाव दिखाई देता है कि इस घटना को सत्य मानने की प्रवृत्ति होती है, जिससे कबीर का सवत् १५५६ मे वर्तमान रहना मानना पड़ता है। परतु सवत् १५०५ मे कबीर की मृत्यु मानने से यह घटना असंभव हो जाती है।

जिन दो हस्तलिखित प्रतियो के आधार पर इस ग्रथावली का सपादन हुआ है, उनमे से एक सवत १५६१ की लिखी है। यदि कबीरदास की मृत्यु १५०५ मे हुई तो यह प्रतिलिपि उनकी मृत्यु के ५६ वर्ष पीछे तैयार की गई होगी। ऐसा प्रसिद्ध है कि कबीरदासजी के प्रधान शिष्य और उत्तराधिकारी धर्मदासजी ने सवत् १५२१ मे जब कि कबीरदासजी की आयु ६५ वर्ष की थी, अपने गुरु के वचनों का संग्रह किया था। जिस ढंग से कबीरदास जी की वाणी का सग्रह इस प्रति मे किया गया है, उसे देखकर यह मानना पडेगा कि यह पहला सकलन नही था, वरन् अन्य सकलनो के आधार पर पीछे से किया गया था, अथवा कोई आश्चर्य नही कि धर्मदास के सग्रह के ही आधार पर इसका सकलन किया गया हो *।

इस ग्रथावली मे कबीरदासजी के दो चित्र दिए गए है—एक युवावस्था का और दूसरा वृद्धावस्था का। पहला चित्र कलकत्ता म्यूजियम से प्राप्त हुआ है और दूसरा मुझे कबीरपंथी स्वामी युगलानंदजी से मिला है। मिलान करने से दोनो चित्र एक ही व्यक्ति के नही मालूम पडते, दोनो की आकृतियों मे बडा अतर है। यदि दोनो नही तो इनमे से कोई एक अवश्य अप्रामाणिक होगा, दोनो ही अप्रामाणिक हो सकते है, परतु श्रीयुत युगला-

---

*ग्रथ साहब मे कबीरदास की बहुत सी साखियाँ और पद दिए है। उनमे से बहुत से ऐसे हैं जो स० १५६१ की हस्तलिखित प्रति मे नही है। इससे यह मानना पडेगा कि या तो यह सवत् १५६१ वाली प्रति अधूरी है अथवा इस प्रति के लिखे जाने के १०० वर्ष के अदर बहुत सी साखियाँ आदि कबीरदासजी के नाम मे प्रचलित हो गई थीं, जो कि वास्तव मे उनकी न थी। यदि कबीरदास का निधन सवत् १५०५ मे मान लिया जाता है तो यह बात असगत नही जान पडती कि इस प्रति के लिखे जाने के अनतर १४ वर्ष तक कबीरदासजी जीवित रहे हो और इस बीच मे उन्होंने और बहुत से पद बनाए हो जो ग्रथ-साहब मे सम्मिलित कर लिए गए हो।

नंदजी वृद्धावस्थावाले चित्र के लिये अत्यंत प्रामाणिकता का दावा करते हैं, जो ४९ वर्ष से अधिक अवस्थावाले व्यक्ति का ही हो सकता है। नहीं कह सकते कि यह दावा कहाँ तक साधार और सत्य है, परंतु यह ठीक है तो मानना पड़ेगा कि कबीरदासजी की मृत्यु संवत् १५०५ के बहुत पीछे हुई।

इन सब बातों पर एक साथ विचार करने से यही संभव जान पड़ता है कि कबीरदास जी का जन्म १४५६ में और मृत्यु संवत् १५७५ में हुई होगी। इस हिसाब से उनकी आयु ११९ वर्ष की होती है, जिस पर बहुत लोगों को विश्वास करने की प्रवृत्ति न होगी, परंतु जो इस युग में भी असंभव नहीं है।

यह कहा जा चुका है कि कबीरदास जी के जीवन की घटनाओं के संबंध में कोई निश्चित बात ज्ञात नहीं होती, क्योंकि उन सबका आधार जनसाधारण और विशेषकर कबीरपंथियों में प्रचलित दंतकथाएँ हैं। कहते हैं कि काशी में एक सात्विक ब्राह्मण रहते थे जो स्वामी रामानंद जी के बड़े भक्त थे। उनकी

माता पिता

एक विधवा कन्या थी। उसे साथ लेकर एक दिन वे स्वामीजी के आश्रम पर गए। प्रणाम करने पर स्वामी जी ने उसे पुत्रवती होने का आशीर्वाद दिया। ब्राह्मण देवता ने चौंककर जब पुत्री का वैधव्य निवेदन किया तब स्वामीजी ने सखेद कहा कि मेरा वचन तो अन्यथा नहीं हो सकता है, परंतु इतने से संतोष करो कि इससे उत्पन्न पुत्र बड़ा प्रतापी होगा। आशीर्वाद के फलस्वरूप जब इस ब्राह्मण कन्या को पुत्र उत्पन्न हुआ तो लोकलज्जा और लोकापवाद के भय से उसने उसे लहर तालाब के किनारे डाल दिया। भाग्यवश कुछ ही क्षण के पश्चात् नीरू नाम का एक जुलाहा अपनी स्त्री नीमा के साथ उधर से आ निकला। इस दंपति के कोई पुत्र न था। बालक का रूप पुत्र के लिए लालायित दंपति के हृदयों में चुभ गया और वे इसी बालक का भरण पोषण कर यत्नवान् हुए। आगे चलकर यही बालक परम भगवद्भक्त कबीर हुआ। कबीर का विधवा ब्राह्मण कन्या का पुत्र होना असंभव नहीं, किंतु स्वामी रामानंद जी के आशीर्वाद की बात ब्राह्मण कन्या का कलंक मिटाने के उद्देश्य से ही पीछे से जोड़ी गई जान पड़ती है, जैसे कि अन्य प्रतिभाशाली व्यक्तियों के संबंध में जोड़ी गई है। मुसलमान घर में पालित होने पर भी कबीर का हिंदू विचारों में सराबोर होना उनके शरीर में प्रवाहित होनेवाले ब्राह्मण अथवा कम से कम हिंदू रक्त की हा ओर संकेत करता है। स्वयं कबीरदास ने अपने माता पिता का कहीं कोई उल्लेख नहीं किया है और जहाँ कहीं उन्होंने अपने संबंध में कुछ कहा भी है वहाँ अपने को जुलाहा और बनारस का रहनेवाला बताया है।

'जाति जुलाहा मति को धीर । हरषि हरषि गुण रमै कबीर' ॥

'मेरे राम की अभैपद नगरी, कहै कबीर जुलाहा ।'

'तू ब्राह्मन मै काशी का जुलाहा ।'

परंतु जान पडता कि उनकी हार्दिक इच्छा थी कि यदि मेरा ब्राह्मण कुल मे जन्म हुआ होता तो अच्छा होता । वे पूर्व जन्म मे अपने ब्राह्मण होने की कल्पना कर अपना परितोष कर लेते है । एक पद मे वे कहते है—

'पूरब जनम हम ब्राह्मन होते वोछे करम तप हीना ।
रामदेव की सेवा चूका पकरि जुलाहा कीना ॥'

ग्रंथ साहब मे कबीरदास का एक पद दिया है जिसमे कबीरदास कहते है—'पहले दर्शन मगहर पायो पुनि कासी बसे आई ।' एक दूसरे पद मे कबीरदास कहते है—'तोरे भरोसे मगहर बसियो मेरे मन की तपन बुझाई ।' यह तो प्रसिद्ध ही है कि कबीरदास अंत मे मगहर मे जाकर बसे और वही उनका परलोकवास हुआ । पर 'पहले दर्शन महगर पायो पुनि काशी बसे आई' से तो यह ध्वनि निकलती है कि उनका जन्म ही मगहर मे हुआ था और फिर ये काशी मे आकर बस गए और अंत मे फिर मगहर मे जाकर परलोक सिधारे । तो क्या विधवा ब्राह्मणी के गर्भ मे जन्म पाने और नीरू तथा नीमा से पालित पोषित होने की समस्त कथा केवल मनगढत है और उसमे कुछ भी सार नही ! यह विषय विशेष रूप से विचारणीय है ।

कुछ लोग कबीर को नीरू और नीमा का औरस पुत्र मानते है, परंतु इस मत के पक्ष मे कोई ससार प्रमाण अब तक किसी ने नही दिया । स्वयं कबीर की एक उक्ति हम ऊपर दे चुके है जिसमे उनका जन्म से मुसलमान न होना प्रकट होता है, परंतु 'जौ रे खुदाई तुरक मोहि करता आपै कटि किन जाई' से यह ध्वनित होता है कि वे मुसलमान माता पिता के संतति थे । सब बातो पर विचार करने से इसी मत के ठीक होने की अधिक संभावना है कि कबीर ब्राह्मणी या किसी हिंदू स्त्री के गर्भ से उत्पन्न और मुसलमान परिवार मे लालित पालित हुए थे। कदाचित् उनका बालकपन मगहर मे बीता हो और पीछे से आकर काशी मे बसे हो, जहाँ से अंतकाल के कुछ पूर्व उन्हे पुनः मगहर मे जाना पड़ा हो ।

किंवदंती है कि जब कबीर भजन गा गा कर उपदेश देने लगे तब उन्हे पता चला कि बिना किसी गुरु से दीक्षा लिये हमारे उपदेश मान्य नही होगे

गुरु

क्योकि लोग उन्हे 'निगुरा' कहकर चिढाते थे । लोगो का कहना था कि जिसने किसी गुरु से उपदेश नही ग्रहण किया, वह औरो को क्या उपदेश देगा। अतएव कबीर को किसी को गुरु बनाने की चिंता हुई ।

कहते है, उस समय स्वामी रामानद जी काशी मे सबमे प्रसिद्ध महात्मा थे।' अतएव कबीर उन्ही की सेवा मे पहुँचे। परतु उन्होने कबीर के मुसलमान होने के कारण उनको अपना शिष्य बनाना स्वीकार नही किया। इसपर कबीर ने एक चाल चली जो अपना काम कर गई। रामानदजी पंचगगा घाट पर नित्य प्रति प्रात.काल ब्रह्ममुहूर्त मे ही स्नान करने जाया करते थे उस घाट की सीढियो पर कबीर पहले से ही जाकर लेट रहे। स्वामीजी जब स्नान करके लौटे तो उन्होंने अँधेरे मे इन्हे न देखा, उनका पाँव इनके सिर पर पड गया जिस पर स्वामी जी के मुँह से 'राम राम' निकल पड़ा। कबीर ने चट उठकर उनके पैर पकड लिए और कहा कि आप राम राम का मत्र देकर आज मेरे गुरु हुए हैं। रामानद जी से कोई उत्तर देते न बना। तभी से कबीर ने अपने को रामानद का शिष्य प्रसिद्ध कर दिया।

'कासी मे हम प्रकट भये है रामानद चेताए' कबीर का यह वाक्य इस बात का प्रमाण मे प्रस्तुत किया जाता है कि रामानदजी उनके गुरु थे। जिन प्रतियो के आधार पर इस ग्रथावली का सपादन किया गया है उनमे यह वाक्य नही है और न ग्रथसाहब ही मे यह मिलता है। अतएव इसको प्रमाण मानकर इसके आधार पर कोई मत स्थिर करना उचित नही जँचता। केवल किवदती के आधार पर रामानद जी को उनका गुरु मान लेना ठीक नही। यह किवदती भी ऐतिहासिक जाँच के सामने ठीक नही ठहरती। रामानदजी की मृत्यु अधिक से अधिक देर मे मानने से सवत् १४६७ मे हुई, इसमे १४ या १५ वर्ष पहले भी उसके होने का प्रमाण विद्यमान है। उस समय कबीर की अवस्था ११ वर्ष की रही होगी, क्योकि हम ऊपर उनका जन्म सवत् १४५६ सिद्ध कर आए है। ११ वर्ष के बालक का घूम फिरकर उपदेश देने लगना सहसा ग्राह्य नही होता। और यदि रामानदजी की मृत्यु सवत् १४५३ के लगभग हुई तो यह किवदती झूठ ठहरती है, क्योकि उस समय तो कबीर को ससार मे आने के लिये अभी तीन चार वर्ष रहे होगे।

पर जब तक कोई विरुद्ध दृढ प्रमाण नही मिलते, तब तक हम इस लोकप्रसिद्ध बात को कि रामानदजी कबीर के गुरु थे, बिलकुल असत्य भी नही ठहरा सकते। हो सकता है कि बाल्यकाल मे बार बार रामानदजी के साक्षात्कार तथा उपदेशश्रवण से ('गुरु के सबद मेरा मन लागा') अथवा दूसरो के मुँह से उनके गुण तथा उपदेश सुनने से बालक कबीर के चित्त पर गहरा प्रभाव पड गया हो जिसके कारण उन्होने आगे चलकर उन्हें अपना मानस गुरु मान लिया हो। कबीर मुसलमान माता पिता की सतति हो चाहे नही किंतु मुसलमान के घर मे लालित पालित होने पर भी उनका हिंदू

विचारधारा में आप्लावित होना उनपर वाल्यकाल ही से किसी प्रभावशाली हिंदू का प्रभाव होना प्रदर्शित करता है।

'हम भी पाहन पूजते होते वन के रोझ।
सतगुरु की किरपा भई सिर तैं उतरया वोझ॥'

से प्रकट होता है कि अपने गुरु रामानद से प्रभावित होने से पहले कवीर पर हिंदू प्रभाव पड चुका था जिससे वे मुसलमान कुल मे परिपालित होने पर भी 'पाहन' पूजनेवाले हो गए थे। कवीर लोगो के कहने से कोई काम करनेवाले नही थे। उन्होने अपना सारा जीवन ही अपने समय के अध-विश्वासो के विरुद्ध लगा दिया था। यदि स्वय उनका हार्दिक विश्वास न होता कि गुरु वनाना आवश्यक है, तो वे किसी के कहने की परवा न करते। किंतु उन्होंने स्वयं कहा है—

'गुरु विन चेला ज्ञान न लहै।'
'गुरु विन इह जग कौन भरोसा, काके सग ह्वै रहिए॥'

परंतु वे गुरु और शिष्य का शारीरिक साक्षात्कार आवश्यक नही समझते थे। उनका विश्वास था कि गुरु के साथ मानसिक साक्षात्कार से भी शिष्य के शिष्यत्व का निर्वाह हो सकता है।

'कवीर गुरु वसै वनारसी सिष समदर तीर।
विसरया नही वीसरे जे गुण होई सरीर॥'

कवीर अपने आप में शिष्य के लिये आवश्यक गुणो का अभाव नहीं समझते थे। वे उन एक आध मे से थे जो गुरुज्ञान से अपना उद्धार कर सकते थे. जिनके संवध में कवीर ने कहा है—

'माया दीपक नर पतंग, भ्रमि भ्रमि इवै पडत।
कहै कवीर गुरु ज्ञान थैं, एक आध उवरत॥'

मुसलमान कवीरपथियो का कहना है कि कवीर ने सूफी फकीर शेख तकी से दीक्षा ली थी। कवीर ने अपने गुरु के वनारस निवासी होने का स्पष्ट उल्लेख किया है। इस कारण ऊँजी के पीर और तकी उनके गुरु नही हो सकते। 'घट घट है अविनासी सुनहु तकी तुम शेख' मे उन्होंने तकी का नाम उस आदर से नही लिया है जिस आदर से गुरु का नाम लिया जाता है और जिसके प्रभाव से कवीर ने असभव का भी सभव होना लिखा है।

'गुरु प्रसाद सूई कै नोकै हस्ती आवै जाहि॥'

वल्कि वे तो उलटे तकी को ही उपदेश देते हुए जान पडते हैं। यद्यपि यह वाक्य इस ग्रथावली मे कही नही मिलता फिर भी स्थान स्थान पर 'शेख' शब्द का प्रयोग मिलता है जो विशेष आदर से नही लिया गया है वरन् जिसमें फटकार की मात्रा ही अधिक देख पडती है। अत. तकी कवीर के गुरु

तो हो ही नही सकते, हाँ यह हो सकता है कि कबीर कुछ समय तक उनके सत्संग मे रहे हो, जैसा कि नीचे लिखे वचनो से भी प्रकट होता है। पर यह स्वय कबीर के वचन है, इसमे भी सदेह है —

'मानिकपुरहि कबीर बसेरी। मदहति सुनि शेख तकि केरी॥
ऊजी सुनी जौनपुर थाना। झूँसी सुनि पीरन के नामा॥'

परतु इसके अनतर भी वे जीवनपर्यत राम नाम रटते रहे जो स्पष्टत. रामानद के प्रभाव का सूचक है, अतएव स्वामी रामानद को कबीर का गुरु मानने मे कोई अडचन नही है, चाहे उन्होने स्वय उन्ही से मत्र ग्रहण किया हो अथवा उन्हे अपना मानस गुरु बनाया हो। उन्होने किसी मुसलमान फकीर को अपना गुरु बनाया हो इसका कोई स्पष्ट प्रमाण नही मिलता।

शिष्य

धर्मदास और सुरतगोपाल नाम के कबीर के दो चेले हुए। धर्मदास बनिए थे। उनके विषय मे लोग कहते है कि वे पहले मूर्तिपूजक थे, उनका कबीर से पहले पहल काशी मे साक्षात्कार हुआ था। उस समय कबीर ने उन्हे मूर्तिपूजक होने के कारण खूब फटकारा था। फिर वृदावन मे दोनो की भेट हुई। उस समय उन्होने कबीर को पहचाना नही, पर बोले—'तुम्हारे उपदेश ठीक वैसे है जैसे एक साधु ने मुझे काशी मे दिए थे।' इस समय कबीर ने उनकी मूर्ति को, जिसे वे पूजा के लिए सदैव अपने साथ रखते थे, जमुना मे डाल दिया। तीसरी बार कबीर स्वय उनके घर बाँधोगढ पहुँचे। वहाँ उन्होने उनसे कहा कि तुम उसी पत्थर की मूर्ति पूजते हो जिसके तुम्हारे तौलने के बाट है। उनके दिल मे यह बात बैठ गई और ये कबीर के शिष्य हो गए। कबीर की मृत्यु के बाद धर्मदास ने छत्तीसगढ मे कबीरपथ की एक अलग शाखा चलाई और सुरतगोपाल काशीवाली शाखा की गद्दी के अधिकारी हुए। धीरे धीरे दोनो शाखाओ मे बहुत भेद हो गया।

कबीर कर्मकाड को पाखड समझते थे और उसके विरोधी थे, परतु आगे चलकर कबीरपथ मे कर्मकाड की प्रधानता हो गई। कठी और जनेऊ कबीरपथ मे भी चल पडे। दीक्षा से मृत्युपर्यंत कबीरपथियो को कर्मकाड की कई क्रियाओ का अनुसरण करना पडता है। इतनी बात अवश्य है कि कबीरपथ मे जातपाँत का कोई भेद नही और हिंदू मुसलमान दोनो धर्म के लोग उसमे सम्मिलित हो सकते है। परतु ध्यान रखने की बात यह है कि कबीरपथ मे जाकर भी हिंदू मुसलमान का भेद नही मिट जाता। हिंदू धर्म का प्रभाव इतना व्यापक है कि उससे अलग होने पर भी भारतीय नए नए मत अत मे उसके प्रभाव से नही बच सकते।

कबीर के साथ प्राय: लोई का भी नाम लिया जाता है। कुछ लोग कहते हैं कि यह कबीर की शिष्या थी और आजन्म उनके साथ रही ! अन्य इसे उनकी परिणीता स्त्री बताते है और कहते हैं कि इसके गर्भ से कबीर को कमाल नाम का पुत्र औ कमाली नाम की पुत्री हुई थी। कबीर ने लोई को सबोधन करके कई पद कहे है। एक पद मे वे कहते है--

गार्हस्थ्य जीवन

रे यामे क्या मेरा क्या तेरा, लाज न मरहिं कहत घर मेरा।

... ...

कहत कबीर सुनहु रे लोई, हम तुम विनसि रहेगा सोई।

इसमे लोई और कबीर का एक घर होना कहा गया है। जिससे लोई को कबीर की स्त्री होना ही अधिक सभव जान पडता है। कबीर ने कामिनी की बहुत निंदा की है। सभवत इसीलिये लोई के सबध मे उनकी पत्नी के स्थान मे शिष्या होने की कल्पना की गई है।

'नारि नसावै तीनि सुख, जा नर पासैं होइ।
भगति मुकति निज ज्ञान मे, पैसि न सकई कोइ॥

एक कनक अरु कामिनी, विष फल कीएउ पाइ।
देखे ही थे विष चढे, खाए सूँ मरि जाइ॥'

परंतु कामिनी काचन की निंदा के उनके वाक्य वैराग्यावस्था के समझने चाहिए। यह अधिक सगत जान पडता है कि लोई कबीर की पत्नी थी जो कबीर के विरक्त होकर नवीन पथ चलाने पर उनकी अनुगामिनी हो गई। कहते है कि लोई एक वनखडी वैरागी की परिपालिता कन्या थी। वह लोई उस वैरागी को स्नान करते समय लोई मे लपेटी और टोकरी मे रखी हुई गगाजी मे वहती हुई मिली थी। लोई मे लपेटी हुई मिलने के कारण ही उसका नाम लोई पडा। वनखड़ी वैरागी की मृत्यु के बाद एक दिन कबीर उनकी कुटिया मे गए। वहाँ अन्य सतो के साथ उन्हे भी दूध पीने को दिया गया, औरो ने तो दूध पी लिया, पर कबीर ने अपने हिस्से का रख छोडा। पूछने पर उन्होने कहा कि गगापार मे एक साधु आ रहे हैं, उन्ही के लिए रख छोड़ा है। थोडी देर मे सचमुच एक साधु आ पहुँचा जिससे अन्य साधु कबीर की सिद्धई पर आश्चर्य करने लगे। उसी दिन से लोई उनके साथ हो ली।

कबीर की सतति के विषय मे तो कोई प्रमाण नही मिलता। कहते है कि उनका पुत्र कमाल उनके सिद्धातो का विरोधी था। इसी से कबीर ने कहा--

'डूबा वश कबीर का, उपजा पूत कमाल।
हरि का सुमिरन छाँडि के, घर ले आया माल।'

इस दोहे के भी कवीरकृत होने मे संदेह ही है। परतु कमाल के कई पद ग्रंथसाहब मे सम्मिलित किए गए हैं।

कवीर के विषय मे कई आश्चर्यजनक कथाएँ प्रसिद्ध है जिनसे उनमें लोकोत्तर शक्तियो का होना सिद्ध किया जाता है। महात्माओ के विषय मे प्राय. ऐसी कल्पनाएँ की ही जाती है। यद्यपि इस युग मे इस प्रकार की बातो पर शिक्षित और समझदार लोग विश्वास नही करते, परंतु फिर भी

अलौकिक कृत्य

महात्मा गाधी के विषय मे भी असहयोग के समय मे ऐसी कई गप्पे उडी थी। अतएव हम उन सबका उल्लेख मात्र करके व्यर्थ ही इस प्रस्तावना का कलेवर बढाना उचित नहीं समझते। यहाँ एक ही कथा दे देना पर्याप्त होगा, जिसके लिए कुछ स्पष्ट आधार है।

कहते है कि एक बार सिकदर लोदी के दरबार मे कबीर पर अपने आपका ईश्वर कहने का अभियोग लगाया गया। काजी ने उन्हे काफिर बताया और उनको मसूर हल्लाज की भाँति मृत्युदड की आज्ञा हुई। बेडियों से जकडे हुए कबीर नदी मे फेक दिए गए। परतु जिन कबीर को माया मोह की शृखला न बाँध सकती थी, जिनकी पाप की बेडियाँ कट चुकी थी उन्हे यह जजीर बाँधे न रख सकी और वे तैरते हुए नदी तट पर आ खड़े हुए। अब काजी ने उन्हे धधकते हुए अग्निकुंड मे डलवाया; किंतु उनके प्रभाव से आग बुझ गई और कबीर की दिव्य देह पर आँच तक न आई। उनके शरीरनाश के इस उद्योग के भी निष्फल हो जाने पर उन पर एक मस्त हाथी छोडा गया। उनके पास पहुँचकर हाथी उन्हें नमस्कार कर चिग्घाडता हुआ भाग खडा हुआ। इसका आधार कबीर का यह पद कहा जाता है--

'अहो मेरे गोव्यद तुम्हारा जोर, काजी वकिवा हस्ती तोर॥
बाँधि भुजा भले करि डारयौ, हस्ती कोपि सूँड मैं मारयौ॥
भाग्यो हस्ती चीसा मारी, वा मूरति की मैं बलिहारी॥
महावत तोकूँ मारौ साँटी, इसही मराऊँ घालौ काटी॥
हस्ती न तोरै धरे धियान, वाकै हिरदै बसै भगवान॥
कहा अपराध सत हौ कीन्हाँ, बाँधि पोट कुंजर कूँ दीन्हा॥
कुंजर पोट बहु बदन करै, अजहुँ न सूझै काजी अँधरै॥
तीनि बेर पतियारा लीन्हा, मन कठोर अजहूँ न पतीनाँ॥
कहै कबीर हमारे गोव्यद, चौथे पद मैं जन को गयंद॥

परतु यह पद प्राचीन प्रतियो मे नही मिलता। यदि यह कबीर जी का ही कहा हुआ है तो इस पद से केवल यह प्रकट होता है कि उनको मारने के

तीनो प्रयत्न हाथी के द्वारा किए गए थे, क्योकि इसमे उनके नदी मे फेंके जाने या आग मे जलाए जाने का कोई उल्लेख नही है।

ग्रंथसाहब मे कबीर जी का यह पद भी मिलता है जो गगा मे जजीर से बाँधकर फेंके जानेवाली कथा से सबध रखता है।

'गगा गुसाइन गहिर गँभीर। जजीर बाँधि करि खरे कबीर ॥
गगा की लहरि मेरी टूटी जजीर। मृगछाला पर बैठे कबीर ॥

कबीर का जीवन अधविश्वासो का विरोध करने मे ही बीता था अपनी मृत्यु से भी उन्होने इसी उद्देश्य की पूर्ति की। काशी मोक्षदापुरी कही जाती है। मुक्ति की कामनासे लोग काशीवास

मृत्यु

करके यहाँ तन त्यागते हे और मगहर मे मरने का अनिवार्य परिणाम या फल नरकगमन माना जाता है। यह अधविश्वास अब तक चला आता है। कहते है कि इसी के विरोध में कबीर मरने के लिये काशी छोडकर मगहर चले गए थे। वे अपनी भक्ति के कारण ही अपने आपको मुक्ति का अधिकारी समझते थे। उन्होने कहा भी है—

'जौ काशी तन तजै कबीरा तौ रामहिं कहा निहोरा रे।'

इस अधविश्वास का उन्होने जगह जगह खंडन किया है—

(क) 'हिरदै कठोर मरचा बनारसी नरक न बच्या जाई।
हरि को दास मरै जो मगहर सेन्या सकल तिहाई ॥'

(ख) 'जस कासी तस मगहर ऊसर हृदय रामसति होई।'

आदि ग्रथ मे उनका नीचे लिखा पद मिलता है—

"ज्यो जल छाड़ि बाहर भयो मीना। पूरब जनम हौ तप का हीना ॥
अब कहु राम कवन गति मोरी। तजिले बनारस मति भइ थोरी ॥
बहुत बरष तप कीया कासी। मरनु भया मगहर को बासी ॥
कासी मगहर सम बीचारी। ओछी भगति कैसे उतरसि पारी ॥
कहु गुर गति सिव सभु को जानै। मुआ कबीर रमता श्री रामै ॥'

कबीर के ये वचन मरने के कुछ ही समय पहले के जान पड़ते है। आरभिक चरणो मे जो क्षोभ प्रकट किया है, वह इसलिये कि बनारस उनका जन्मस्थान था जो सभी को अत्यत प्रिय होता है। बनारस के साथ वे अपना संबध वैसा ही घनिष्ट बतलाते है जैसा जल और मछली का होता है। काशी और मगहर को वे अब भी समान समझते थे। अपनी मुक्ति के सबंध में उन्हे तनिक भी सदेह नही था, क्योकि उन्हें परमात्मा की सर्वज्ञता मे अटल

विश्वास था, 'शिव सम को जानै' और राम नाम का जाप करते करते वे शरीर त्यागने जा रहे थे 'मुत्रा कबीर रमत श्री राम।'

उनकी अन्त्येष्टि क्रिया के विषय में एक बहुत ही विलक्षण प्रवाद प्रसिद्ध है। कहते हैं हिंदू उनके शव का अग्निसंस्कार करना चाहते थे और मुसलमान उसे कब्र में गाड़ना चाहते थे। झगड़ा यहाँ तक बढ़ा कि तलवारें चलने की नौबत आ गई। पर हिंदू मुसलिम ऐक्य के प्रयासी कबीर की आत्मा यह बात कब सहन कर सकती थी। आत्मा ने आकाशवाणी की 'लड़ो मत! कफन उठाकर देखो।' लोगों ने कफन उठाकर देखा तो शव के स्थान पर एक पुष्प राशि पाई गई, जिसको हिंदू मुसलमान दोनों ने आधा आधा बाँट लिया। अपने हिस्से के फूलों को हिंदुओं ने जलाया और उनकी राख को काशी ले जाकर समाधिस्थ किया। वह स्थान अब तक कबीरचौरा के नाम से प्रसिद्ध है। अपने हिस्से के फूलों के ऊपर मुसलमानों ने मगहर ही में कब्र बनाई। यह कहानी भी विश्वास करने योग्य नहीं है, परंतु उसका मूल भाव अमूल्य है।

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, कबीर ने चाहे जिस प्रकार हो रामानंद से रामनाम की दीक्षा ली थी; परंतु कबीर के राम रामानंद के राम से भिन्न थे। वे 'दुष्टदलन रघुनाथ' नहीं थे जिनके सेवक 'अजनिपुत्रः महाबलदायक, साधु संत पर सदा सहायक' थे। राम से उनका अभिप्राय कुछ और ही था।

तात्विक सिद्धांत

'दशरथ सुत तिहुँ लोक बखाना। राम नाम का मरम है आना॥'

राम से उनका तात्पर्य निर्गुण ब्रह्म से है। उन्होंने 'निरगुण राम निरगुण राम जपहु रे भाई' का उपदेश दिया है। उनकी रामभावना भारतीय ब्रह्म भावना से सर्वथा मिलती है। जैसा कि कुछ लोग भ्रमवश समझते हैं, वे आह्यार्थवादमूलक मुसलमानी एकेश्वरवाद या खुदावाद के समर्थक नहीं थे। निरगुण भावना भी उनके लिये स्थूल भावना है जो मूर्तिपूजकों की सगुण भावना के विरोधीपक्ष का प्रदर्शन मात्र करती है। उनकी भावना इससे भी अधिक सूक्ष्म है। वे 'राम, को सगुण और निर्गुण दोनों से परे समझते हैं।

'अला एकै नूर उपनाया ताकी कैसी निंदा।
ता नूर थैं जग कीया कौन भला कौन मंदा॥'[१]

यह मुसलमानों की ही तर्कशैली का आश्रय लेकर 'खुदा के बंदों' और 'काफिरों' की एकता प्रतिपादित करने के लिये कहा जान पड़ता है, मुसलमानी मत के समर्थन में नहीं, क्योंकि उन्होंने स्वयं कहा है—

'खालिक खलक, खलक मे खालिक सब घट रह्यो समाई ।'

जो भारतीय ब्रह्मभावना के ही परम अनुकूल है ।

कबीर केवल शब्दो को लेकर झगडा करनेवाले नही थे । अपने भाव व्यक्त करने के लिये उन्होने उर्दू फारसी सस्कृत आदि सभी शब्दों का उपयोग किया है । अपने भाव प्रकट करने भर से उन्होने मतलब रखा है । शब्दो के लिये वे विशेष चिंतित नही दिखाई देते । ब्रह्म के लिये, राम, रहीम, अल्ला, सत्यनाम, गोव्यद, साहब, आप आदि अनेक शब्दो का उन्होने प्रयोग किया है । उन्होने कहा भी है 'अपरपार का नाउँ अनत ।' ब्रह्म के निरूपण के लिये शब्दो के प्रयोग मे जो अत्यत शुद्धता और सावधानी बहुत आवश्यक है, कबीर मे उसे पाने की आशा करना व्यर्थ है, क्योकि कबीर का तत्वज्ञान दार्शनिक ग्रथो के अध्ययन का फल नही है, वह उनकी अनुभूति और सारग्राहिता का प्रसाद है। पढे लिखे तो वे थे ही नही, उन्होने जो कुछ ज्ञानसचय किया, वह सब सत्सग और आत्मानुभव से था । हिंदू मुसलमान सभी सत फकीरो का इन्होने समागम किया था, अतएव हिंदू भावो के साथ इनमे मुसलमानी भाव भी पाए जाते है । यद्यपि इनकी रचनाओ मे भारतीय ब्रह्मवाद का पूरा पूरा ढाँचा पाया जाना है, तथापि उमकी प्राय वे ही बाते इन्होने अधिक विस्तृत रूप से वर्णन के लिये उठाई है जो मुसलमानी एकेश्वरवाद के अधिक मेल मे थी । इनका ध्येय सर्वदा हिंदू मुस्लिम ऐक्य रहा है, यह भी इसका एक कारण है ।

स्थूल दृष्टि से तो मूर्तिद्रोही एकेश्वरवाद और मूर्तिपूजक बहुदेववाद मे बहुत बड़ा अतर है, परतु यदि सूक्ष्मदृष्टि से विचार किया जाय तो उनमें उतना अंतर नही देख पडेगा, जितना एकेश्वरवाद और ब्रह्मवाद मे है, वरन् सारत वे दोनो एक ही है, क्योकि बहुत से देवी देवताओ को अलग अलग मानना और सबके गुरु गोवर्धनदास एक ईश्वर को मानना एक ही बात है । परंतु ब्रह्मवाद का मूलाधार ही भिन्न है। उसमे लेशमात्र भी भौतिकवाद नही है, वह जीवात्मा, परमात्मा और जड जगत् तीनो की भिन्न सत्ता मानता है, जब कि ब्रह्मवाद शुद्ध आत्मतत्व अर्थात् चैतन्य के अतिरिक्त और किसी का अस्तित्व नही मानता। उसके अनुसार आत्मा भी परमात्मा ही है जड जगत भी ब्रह्म है । कबीर मे भौतिक या बाह्यार्थवाद कही मिलता ही नही और आत्मवाद की उन्होने स्थान स्थान पर अच्छी झलक दिखाई है ।

ब्रह्म ही जगत् मे एकमात्र सत्ता है, इसके अतिरिक्त ससार मे और कुछ नही है। जो कुछ है, ब्रह्म ही है। ब्रह्म ही से सबकी उत्पत्ति होती है और फिर उसी मे सब लीन हो जाते हैं। कबीर के शब्दो मे—

'पाणी ही ते हिम भया, हिम ह्वै गया बिलाइ ।
जो कुछ था सोई भया, अब कुछ कहा न जाइ ॥'

विश्वविस्तृत सृष्टि और ब्रह्म का संबध दिखाने के लिये ब्रह्मवादी दो उदाहरण दिया करते है । जिस प्रकार एक छोटे से बीज के अदर वट का बृहदाकार वृक्ष अतर्हित रहता है उसी प्रकार यह सृष्टि भी ब्रह्म मे अतर्हित रहती है, और जिस प्रकार दूध मे घी व्याप्त रहता है उसी प्रकार ब्रह्म भी इस अडकटाह मे सर्वत्र व्याप्त रहता है। कबीर ने इसे इस तरह कहा है—

'खालिक खलक, खलक मे खालिक सब जग रह्यो समाई ।'

सर्वव्यापी ब्रह्म जब अपनी लीला का विस्तार करता है तब इस नाम-रूपात्मक जगत् की सृष्टि होती है, जिसे वह इच्छा होने पर अपने ही में समेट लेता है—

'इन मैं आप आप सबहिन मे आप आप सूँ खेलै ।
नाना भाँति घडे सब भाँडे रूप धरे धरि मेलै ॥'

वेदात मे नामरूपात्मक जगत् से ब्रह्म का सबध और कई प्रकार से प्रकट किया जाता है, जिनमे से एक प्रतिबिंबवाद है जिसका कबीर ने भी सहारा लिया है। प्रतिबिंबवाद के अनुसार ब्रह्म बिंब है और नामरूपात्मक दृश्य जगत् उसका प्रतिबिंब है। कबीर कहते है—

खडित मूल बिनास कहौ किम बिगतह कीजै ।
ज्यूँ जल मै प्रतिब्यब त्यूँ, सकल रामहि जाणीजै ॥'

'जो पिंड मे है वही ब्रह्माड मे है' कहकर भी ब्रह्म का निरूपण किया जाता है परतु केवल वाक्य के आश्रय से बननेवाले ज्ञानियो को इससे भ्रम हो सकता है कि पिंड और ब्रह्माड ब्रह्म की अवस्थिति के लिये आवश्यक है। ऐसे लोगो के लिए कबीर कहते है—

'प्यड ब्रह्मड कथै सब कोई, वाकै आदि अरु अंत न होई ।
प्यड ब्रह्माड छाडि जे कथिए, कहै कबीर हरि सोई ॥'

वेदात के 'कनककुडलन्याय' के अनुसार जिस प्रकार सोने से कुडल बनता है और उस कुंडल के टूटटाट अथवा पिघल जाने पर वह सोना ही रहता है, उसी प्रकार नामरूपात्मक दृश्यो की उत्पत्ति ब्रह्म से होती है और ब्रह्म ही मे वे समा जाते है—

'जैसे बहु कंचन के भूषन ये कहि गालि तवावहिंगे ।
ऐसे हम लोक वेद के बिछुरै सुन्निहि माँहि समायहिंगे ॥'

इसी प्रकार का जलतरग न्याय भी है—

'जैसे जलहि तरग तरगिनी ऐसे हम दिखलावहिंगे ।
कहै कबीर स्वामी सुखसागर हसहि हस मिलावहिंगे ॥'

एक और तरह से कबीर ने भारतीय पद्धति से यह संबंध प्रदर्शित किया है--

'जल मै कुंभ कुंभ मै जल है, बाहरि भीतरि पानी।
फूटा कुंभ जल जलहि समाना, यह तत कथौ गियानी ।।'

यह नामरूपात्मिक दृश्य जो चर्म चक्षुओं को दिखाई देता है, जल मे का घड़ा है जिसके बाहर भी ब्रह्मरूप वारि है और अदर भी। बाह्य रूप का नाश हो जाने पर घड़े के अदर का जल जिस प्रकार बाहरवाले जल में मिल जाता है उसी प्रकार बाह्य रूप के अभ्यतर का ब्रह्म भी अपने बाह्यस्थ ब्रह्म मे समा जाता है।

सब प्रकार से यही सिद्ध किया गया है कि परिवर्तनशील नाशवान् दृश्यों का अध्यारोप जिस एक अव्यय तत्व पर होता है, वही वास्तव है। जो कुछ दिखाई देता है, वह असत्य है, केवल मायात्मक भ्रांतिज्ञान है। यह बात कबीर ने स्पष्ट ही कह दी है—

'ससार ऐसा सूपिन जैसा जीव न सूपिन समान।'

जो मनुष्य माया के इस प्रसार को सच्चा समझकर उसमे लिपट जाता है उसे शुद्ध हंस स्वरूप जीव अर्थात् ब्रह्म की प्राप्ति नही हो सकती।

बुद्धदेव के 'दुःख सत्य' सिद्धात के समान ही कबीर का भी सिद्धांत है कि यह संसार दुख ही का घर है--

'दुनियाँ भाँडा दुख का भरी मुँहामुँह मूष।
अदया अलह राम की कुरहै उँणी कूप।।'

ससार का यह दु.ख मायाकृत है परतु जो लोग माया मे लिपटे रहते है वे इस दुख मे पडे हुए भी उसे समझ नही सकते। इस दु.ख का ज्ञान उन्ही को हो सकता है जिन्होने मायात्मक अज्ञानावरण हटा दिया है। माया मे पड़े हुए लोग तो इस दुःख को सुख ही समझते है—

'सुखिया सब ससार है, खावै अरु सोवै।
दुखिया दास कबीर है जागै अरु रोवै।।'

कबीर का दु.ख अपने लिये नही है, वे अपने लिये नही रोते, संसार के लिये रोते है, क्योकि उन्होने साईं के सब जीव के लिये अपना अस्तित्व सर्मपित कर दिया था, ससार के लिये ईसामसीह की तरह उन्होने अपने आपको मिटा दिया था।

माया में पड़ा हुआ मनुष्य अपनी ही बात सोचता रहता है, इसी से वह परमात्मा को नही पा सकता। परमात्मा को पाने के लिये इस 'ममता' को छोड़ना पडता है—

'जब मै था तब हरि नही, अब हरि है मैं नाहिं।'

इसीलिये ज्ञानी माया का त्याग आवश्यक बताते हैं। परतु माया का त्याग कुछ खेल नही है। बाहर से वह इतनी मधुर जान पडती है कि उसे छोडते ही नही बनता—

'मीठी मीठी, माया' तजी न जाई।
अग्यानी पुरिष को भोलि भोलि खाई॥'

माया ही विषय वासनाओ को जन्म देती है—

'इक डाइन मेरे मन बसै। नित उठि मेरे जिय को डसै॥
या डाइन के लरिका पांच रे। निसि दिन मोहि नचावै नाच रे॥'

माया के पांच पुत्र काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मत्सर हैं। मनुष्य के अध पात के कारण ये ही है। आत्मा की परमात्मिकता को यही व्यवधान मे डालते है। अतएव परम तत्वार्थियो को इनसे सावधान रहना चाहिए—

'पच चोर गढ मझा, गढ लूटै दिवस अरु सझा।
जो गढपति मुहकम होई, तौ लूटि न सकै कोई॥'

माया ही पाखड की जननी है। अतएव माया का उचित स्थान पाखडियो के ही पास है। इसीलिये माया को सबोधन कर कबीर कहते है—

'तहाँ जाहु जहँ पाट पटबर, अगर चदन घसि लीना।'

कर्मकाड को भी कबीर पाखंड ही के अतर्गत मानते है, क्योकि परमात्मा की भक्ति का सबध मन से है, मन की भक्ति तन का स्वय ही अपने अनुकूल बना लेगी, भक्ति की सच्ची भावना होने से कर्म भी अनुकूल होने लगेगे परतु केवल बाहरी माला जपने अथवा पूजापाठ करने से कुछ नही हो सकता। यह तो मानो और भी अधिक माया मे पडना है—

'जप तप पूजा अरचा जोतिग जग बौराना।
कागद लिखि लिखि जगत भुलाना मन ही मन न समाना॥'

इसीलिये कबीर ने 'कर का मनका छाडि के, मन का मनका फेर' का उपदेश दिया है। उनका मत है कि जो माया ऋषि, मुनि, दिगबर, जोगी और वेदपाठी ब्राह्मणो को भी धर पछाडती है, वही 'हरि भगतन कै चेरी' है। काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर आदि माया के सहचारियो का मिट जाना 'हरि भजन' का आवश्यक अग है—

'राम भजै सो जानिये, जाकै आतुर नाही।
सत सतोष लीये रहै, धीरज मन माही॥
जन कौ काम क्रोध व्यापै नही, त्रिष्णा न जरावै।
प्रफुलित आनद मैं, गोव्यंद गुण गावै॥'

माया से बचने का एक उपाय जो भक्तो को बताया गया है, वह ससार से विमुख रहना है। जैसे उलटा घडा पानी मे नही डूबता परतु सीधा घड़ा

रकर डूब जाता है, वैसे ही संसार के सम्मुख होने से मनुष्य माया में डूब जाता है, परंतु ससार से विमुख होकर रहने से माया का कुछ भी प्रभाव नही पडता—

'औंधा घड़ा न जल मैं डूबै, मूत्रा सू भर भरिया।
जाकौं यह जग घिन करि चालै, ता प्रसादि निस्तरिया ॥'

माया का दूसरा नाम अज्ञान है। दर्पण पर जिस प्रकार काई लग जाती है, उसी प्रकार आत्मा पर अज्ञान का आवरण पड़ जाता है जिससे आत्मा में परमात्मा का दर्शन अर्थात आत्मज्ञान दुर्लभ हो जाता है अतएव आत्मा रूपी दर्पण को निर्मल रखना चाहिए—

'जौ दरसन देख्या चाहिए, तौ दरपन मजत रहिए।
जब दरपन लागै काई, तब दरसन दिया न जाई ॥'

दरपन का यही माँजना हरिभक्ति करना है। भक्ति ही मे मायाकृत अज्ञान दूर होता है और ज्ञानप्राप्ति के द्वारा अपने पराए का भेद मिटता है—

उचित चेति च्यति लै ताही। जा च्यंत आपा पर नाही ॥
हरि हिरदै एक ध्यान उपाया। ताथै छूटि गई सब माया ॥'

इस पद मे 'च्यति' शब्द विचारणीय है क्योकि यह कबीर की भक्ति की विशेपता प्रकट करता है। यह कहना अधिक उचित होगा कि ज्ञानियों की ब्रह्मजिज्ञासा और वैष्णवो की सगुणभक्ति की विशेप विशेष बातों को लेकर कबीर ने अपनी निर्गुणभक्ति का भवन खड़ा किया अथवा वैष्णवों के तात्विक सिद्धातो और व्यावहारिक भक्ति के मिश्रण से कबीर की भक्ति का उद्भव हुआ है। सिद्धात और व्यवहार मे, कथनी और करनी मे भेद रखना कबीर के स्वभाव के प्रतिकूल है। वैष्णवो में सदा से सिद्धात और व्यवहार मे भेद रहा है। सिद्धांत रूप से रामानुज जी ने विशिष्टाद्वैत, वल्लभाचार्य जी ने शुद्धाद्वैत और माधवाचार्य ने द्वैत का प्रचार किया; पर व्यवहार के लिये सगुण भगवान की भक्ति का ध्येय ही सामने रखा गया।

सिद्धात पक्ष का अज्ञेय ब्रह्म व्यवहार पक्ष मे जाने बूझे मनुष्य के रूप मे आ बैठा। हम दिखला चुके है कि कबीर अपने को वैष्णव समझते थे। परतु सिद्धात और व्यवहार का, कथनी और करनी का भेद वे पसंद नही कर सकते थे, अनएव उन्होने दोनो का मिश्रण कर अपनी निर्गुणभक्ति का भवन खड़ा किया जिसका मुसलमानी खुदावाद से भी बाहरी मेल था।

ज्ञानमार्ग के अनुसार निर्गुण निराकार ब्रह्म शुष्क चिंतन का विषय है। कबीर ने इस शुष्कता को निकालकर प्रेमपूर्ण चिंतन की व्यवस्था की है।

कबीर के इस प्रेम के दो पक्ष है, पारमार्थिक और ऐहिक। पारमार्थिक अर्थ मे प्रेम का अर्थ लगन है, जिसमे मनुष्य अपनी वृत्तियो को ससार की सब वस्तुओ से विमुख करके समेट लेता है और केवल ब्रह्म के चिंतन मे लगा देता है तथा ऐहिक पक्ष मे उसका अभिप्राय ससार के सब जीवो से प्रेम और दया का व्यवहार करना है।

जिन्हें ब्रह्म का साक्षात्कार हो जाता है केवल वे ही अमर हैं; जन्ममरण का भय उन्हें नही रह जाता। उनके अतिरिक्त और सब नश्वर है। कबीर-दास कहते हैं कि मुझे ब्रह्म का साक्षात्कार हो गया है, इसीलिये वे अपने आप को अमर समझते है—

'हम न मरैं मरिहै ससारा, हम कूं मिल्या जिवावनहारा।
अब न मरौं मरनैं मन माना, तेई मुए जिन राम न जाना॥'

मनुष्य की आत्मा ब्रह्म के साथ एक है और ब्रह्म ही एकमात्र चिरस्थायी सत्ता है, जिसका नाश नही हो सकता। अतएव मनुष्य की आत्मा का भी नाश नही हो सकता, यही कबीर के अमरत्व का रहस्य है—

'हरि मरिहै तौ हम मरिहै, हरि न मरैं हम काहे कूं मरिहै।'

परतु साक्षात्कार के पहले इस अमरत्व की प्राप्ति नहीं हो सकती। परतु उस प्रेम का मिलना सहज नही है, यह व्यक्तिगत साधना ही से उप-लब्ध हो सकता है। यह पूर्ण आत्मोत्सर्ग चाहता है—

'कबीर भाटी कलाल की, बहुतक बैठे आइ।
सिर सौंपै सोई पिवै, नहि तो पिया न जाइ॥'

जब मनुष्य आत्मोत्सर्ग की इस चरम सीमा पर पहुँच जाता है, तब उसके लिये यह प्रेम अमृत हो जाता है—

'नीझर झरै अमीरस निकलै तिहि मदिरावलि छाका।'

इस प्रेमरूप मदिरा को मनुष्य यदि एक बार भी पी लेता है तो जीवन-पर्यंत उसका नशा नही उतरता और उसे अपने तन मन की सब सुध बुध भूल जाती है।

'हरि रस पीया जानिए, कबहुँ न जाय खुमार।
मैमता घूमत रहे, नाही तन की सार॥'

यह परमानद की अवस्था है, जिसमे मनुष्य का लौकिक अश, जो अज्ञानावस्था मे प्रधान रहता है, किसी गिनती मे नही रह जाता; उसे अपने मे अतर्हित आत्मतत्व का ज्ञान हो जाता है और उस ब्रह्म के साथ तादात्म्य की अनुभूति हो जाती है। इसी को साक्षात्कार होना कहते है। यह साक्षा-त्कार हो जाने पर अर्थात् ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति होने पर, मनुष्य ब्रह्म ही

हो जाता है—ब्रह्मवित् ब्रह्मैव भवति । उपनिषद् के 'तत्त्वमसि' अथवा सोऽहं-भाव का यही रहस्य है ।

'तूँ तूँ करता तूँ भया, मुझमे रही न हूँ ।
वारी फेरी बलि गई, जित देखी तित तूँ ॥

यह सच है कि ऐहिक अर्थ में निराकार निर्गुण ब्रह्म प्रेम का आलंबन नही हो सकता, केवल चिंतन का ही विषय हो सकता है, परंतु उस निराकार की इस विश्वविस्तृत सृष्टि मे उस मूल तत्व की सत्ता का जो आभास मिल जाता है उसके कारण निर्गुण ससार के समस्त प्राणियों को अपने प्रेम और दया का पात्र बना लेता है, जब कि सगुण भक्त की बहुत कुछ भावुकता ठाकुर जी की मूर्ति के बनाव शृंगार और उनके भोगराग के आडबर ही मे व्यय हो जाती है । इसी प्रेम ने कबीर को ऊँच नीच का भेदभाव दूर कर सबकी एकता प्रतिपादित करने की प्रेरणा दी थी ।

'एक बूंद एक मल मूतर एक चाम एक गूदा ।
एक जाति थै सब उपजा कौन ब्राह्मन कौन सूदा ॥'

जातिपाँति का ही नही इसी से धर्माधर्म का भेद भी उन्हे अवास्तविक जँचा—

'कहैं कबीर एक राम जपहु रे, हिंदू तुरक न कोई ।[1]

कबीर का प्रेम मनुष्यों तक ही परिमित नही है, परमात्मा की सृष्टि के सभी जीव जंतु उसकी सीमा के अंदर आ जाते हैं; क्योकि 'सबै जीव साईं के प्यारे हैं।' अँगरेजी के कवि कालरिज ने भी यही भाव इस प्रकार प्रकट किया है—

'ही प्रेथ वेस्ट हू लव्थ वेस्ट,
आल थिंग्स बोथ ग्रेट ऐंड स्माल;
फार दि डियर गॉड हू लव्थ अस,
ही मेड ऐंड लव्थ आल ।'

कबीर का यह प्रेमतत्व, जिसका ऊपर निरूपण किया गया है, सूफियों के संसर्ग का फल है परतु उसमे भी उन्होने भारतीयता का पुट दे दिया है । सूफी परमात्मा को प्रियतमा के रूप मे देखते है । उनके 'मजनूँ को अल्लाह भी लैला नजर आता है' परतु कबीरदास ने परमात्मा को प्रियतम के रूप मे देखा है जो भारतीय माधुर्य भाव के सर्वथा मेल मे है। फारस मे विरह-व्यथा, पुरुषो के मत्थे और भारत मे स्त्रियो के ही मत्थे अधिक मढी जाती है। वहाँ प्रेमी प्रिया को अपना प्रेम जताने के लिये उत्कट उद्योग करते है, और यहाँ प्रेमिका विरह से व्याकुल होकर मुरझाए हुए फूल की तरह अपनी सत्ता तक मिटा देती है। इसी से वहाँ उपासक की पुरुष रूप मे और यहाँ

स्त्री रूप मे भावना की गई है। परतु कवीर के सूफियाना भावो में भारतीयता कूट कूटकर भरी हुई है।

इस प्रकार निर्गुणवाद और सगुणवाद की एकेश्वरवाद से बाहरी समता रखनेवाली बातो के सम्मिश्रण और उसके प्रेमतत्व के योग से कबीर की भक्ति का निर्माण हुआ। कबीर का विश्वास है कि भक्ति से मुक्ति हो जाती है—

'कहै कबीर संसा नाही भगति मुगति गति पाई रे।'

परतु भक्ति निष्काम होनी चाहिए। परमात्मा का प्रेम अपस्वार्थ की पूर्ति का साधन नही है, मनुष्य को यह न सोचना चाहिए कि उससे मुझे कोई फल मिलेगा। यदि फल की कामना हो गई, तो वह भक्ति भक्ति न रह गई और न उससे सत्य की प्राप्ति ही हो सकती है—

'जब लग हैं बैकुठ की आसा। तब लग न हरि चरन निवासा॥'

ब्रह्म लौकिक वासनाओ से परे है। व्यक्तिगत उच्चतम साधना से ही उसकी प्राप्ति हो सकती है, वह स्वय भक्त के लिये विशेष चिंतित नही रहता। क्योंकि भक्त भी ब्रह्म ही है। वह किसी की सहायता की अपेक्षा नही रखता, उसे अपने ब्रह्मत्व की अनुभूति भर कर लेनी पड़ती है जो, जैसा कि हम देख चुके है; कोई खेल नही है। इसीलिये ब्रह्म को अवतार धारण करने की आवश्यकता नही रह जाती। जो कबीर मनुष्य से ऐहिक अश छुड़ाकर उसे ब्रह्मत्व तक पहुँचाना चाहते है, उनकी ब्रह्म मे लौकिक भावनाओ का समावेश करके उसका अध पात न करने की व्यग्रता स्वाभाविक ही है—

'ना दसरथ घरि औतरि आवा, ना लका का राव सतावा।
देवै कूप न औतरि आवा, ना जसवै गोद खिलावा॥
ना वो ग्वालन के सग फिरिया, गोवरधन ले न कर धरिया।
बावन होय नही बलि छलिया, धरनी वेद ले न उधरिया॥
गंडक सालिकराम न कोला, मछ कछ ह्वै जलहि न डोला।
बद्री वैस्य ध्यान नहि लावा, परसराम ह्वै खत्री न सँतावा॥'

प्रतिमापूजन के वे घोर विरोधी थे। जिस परमात्मा का कोई आकार नही, देशकाल का जिसके लिये कोई आधार आवश्यक नही, उसकी मूर्ति कैसी? जगह जगह पर उन्होंने मूर्तिपूजा के प्रति अपनी अरुचि प्रदर्शित की है—

'हम भी पाहन पूजते होते बन के रोझ।
सतगुरु की किरिपा भई, डारचा सिर थैं बोझ॥
सेवें सालिगराम कूँ मन की भ्राति न जाइ।
सीतलता सुपिनै नही, दिन दिन अधकी लाइ॥'

जिसका आकार नहीं, उसकी मूर्ति का सहारा लेकर उसकी प्राप्ति का प्रयत्न वैसा ही है जैसा झूठ के सहारे सच तक पहुँचने का प्रयत्न। असत्य से मन की भ्रान्ति बढ़ेगी ही, घट नहीं सकती; और उससे जिज्ञासा की तृप्ति होना तो असंभव ही है।

मूर्तिपूजा में भगवान् की मूर्ति को जो भोग लगाने की प्रथा है, उसकी वे इस तरह हँसी उडाते है—

'लाडू लावर लापसी पूजा चढे अपार।
पूजि पुजारा ले चला दे मूरति के मुख छार॥'

यद्यपि कबीर अवतारवाद और मूर्तिपूजा के विरोधी थे, तथापि हिंदूमत की कई बातें वे पूर्णतया मानते है। हिंदुओ का जन्म-मरण-संबधी सिद्धात वे मानते है। मुसलमानों की तरह वे एक ही जन्म नहीं मानते, जिसके बाद मरने पर प्राणी कब्र मे पड़ा पडा कयामत तक सड़ा करता है, जब तक कि प्राणी पुनरुज्जीवित होकर खुदावद करीम के सामने अपने अपने कर्मो के अनुसार अनत काल तक दोजख की आग मे जलने अथवा बिहिश्त मे हूरों और गिलमो का सुख भोगने के लिये पेश किए जायँ। एक स्थान पर, "उबरहुगे किस बोले' कह कर कबीर ने इसी विश्वास की ओर सकेत किया है। परतु यह उन्होंने बोलचाल के ढग पर कहा है, सिद्धात के रूप में नही। ये बाते कुछ उसी प्रकार कही गई हैं, जिस प्रकार सूर्य के चारो ओर पृथ्वी के घूमने के कारण दिन रात का होना मानने पर भी साधारण बोलचाल मे यह कहना कि 'सूर्य उगता है'। सिद्धात रूप से वे अनेक जन्म मानते हैं। 'जनम अनेक गया अरु आया'। इस जन्म में जो कुछ भोगना पड़ता है वह पूर्व जन्म के कर्मो का ही फल है, 'देखौ कर्म कबीर का कछू पूरब जनम का लेखा'। कबीर ने यह तो कहा है कि सृष्टि के सृजन और लय का कारण परमात्मा है, परंतु उन्होंने यह नही कहा कि सृष्टि की रचना कैसे और किस क्रम से हुई है, कौन तत्व पहले हुआ और कौन पीछे। इस विषय मे वे शका मात्र उठाकर रह गए है, उसका समाधान उन्होने नही किया—

'प्रथमे गगन कि पुहुमि प्रथमे प्रभू, प्रथमे पवन कि पाणी।
प्रथमे चंद कि सूर प्रथमे प्रभू प्रथमे कौन बिनाणी॥
प्रथमे प्राण कि प्यंड प्रथमे प्रभू, प्रथमे रकत की रेत।
प्रथमे पुरिष की नारी प्रथमे प्रभू, प्रथमे बीज को खेत॥
प्रथमे दिवस कि रैणि प्रथमे प्रभू, प्रथमे पाप कि पुण्य॥
कहै कबीर जहाँ बसहु निरंजन, तहाँ कुछ आहि कि सुन्य॥'

ऊपर हमने कबीर की रचना में वेदांतसम्मत अद्वैतवाद की एक पूरी पूरी पद्धति के दर्शन किए हैं, जिसे हम शुद्धाद्वैत नहीं मान सकते। शुद्धाद्वैत में माया ब्रह्म की ही शक्ति मानी जाती है, परंतु कबीर ने माया को मिथ्या या भ्रममात्र माना है, जिसका कारण अज्ञान है। यह शंकर का अद्वैत है, जिसमें आत्मा और परमात्मा परमार्थतः एक माने जाते हैं, परंतु बीच में अज्ञान के आ पड़ने से आत्मा अपनी पारमार्थिकता को भूल जाती है। ज्ञान प्राप्त हो जाने पर अज्ञानकृत भेद मिट जाता है और आत्मा को अपनी पारमार्थिकता की अनुभूति हो जाती है। यही बात हम कबीर में देख चुके हैं।

परंतु उनपर समय और परिस्थितियों का अलक्ष्य प्रभाव भी पड़ा था, जिसके कारण वे असावधानी में ऐसी बातें भी कह गए हैं जो उनके अद्वैत सिद्धांत से मेल नहीं खाती। उन्होंने स्थान स्थान पर अवतारवाद का विरोध ही किया है, परंतु उनके नीचे लिखे पद में अवतारवाद का समर्थन भी होता है—

'बाँधि मारि भावै देह जारि जै, हूँ राम छाड़ौं तौ मेरे गुरहिं गारि।
तब काढ़ि खडग कोप्यौ रिसाइ, तोहि राखनहारौ मोहिं बताइ॥
खंभा मैं प्रगट्यौ गिलारि, हरनाकस मार्‍यौ नख बिदारि।
महा पुरुष देवाधिदेव, नरस्यंघ प्रकट किए भगति भेव॥
कहै कबीर कोई लहै न पार, प्रहिलाद उबार्‍यौ अनेक बार।'

बात यह है कि उपासना के लिये उपास्य में कुछ गुणों का आरोप आवश्यक होता है, बिना गुणों के प्रेम का आलंबन हो ही नहीं सकता। उपनिषदों तक में निराकार निर्गुण ब्रह्म में उपासना के लिये गुणों का आरोप किया गया है। एकेश्वरवादी धर्मों में जहाँ कट्टरपन ने परमात्मा में गुणों का आरोप नहीं करने दिया, वहाँ परमात्मा और मनुष्य के बीच में एक और मनुष्य का सहारा लिया गया है। ईसाइयों को ईसा और मुसलमानों को मुहम्मद का अवलंबन ग्रहण करना पड़ा। भक्ति की झोंक में कबीर भी जब सांसारिक प्रेममूलक संबंधों के द्वारा परमात्मा की भावना करने लगे, तब परमात्मा में स्वयं ही गुणों का आरोप हो गया। माता पिता और प्रियतम निर्जीव पत्थर नहीं हो सकते। माता के रूप में परमात्मा की भावना करते हुए वे कहते हैं

'हरि जननी मैं बालिक तेरा। काहे न औगुण बकसहु मेरा।'

अवतारवाद में यही सगुणवाद पराकाष्ठा को पहुँचा हुआ है।

कबीर में कई बात ऐसी भी है, जिनमें दिखाई देनेवाला विरोध केवल भाषा की असावधानी से आया है। कबीर शिक्षित नहीं थे, इसलिये उनकी रचनाओं में यह दोष क्षम्य है।

कबीरदासजी ने धार्मिक सिद्धातो के साथ साथ उनकी पुष्टि के लिये अनेक स्थानो पर अलौकिक आचरण अथवा व्यवहारो का वर्णन किया है।

व्यावहारिक सिद्धांत

यदि उनकी वाणी का पूरा पूरा विवेचन किया जाय तो यह स्पष्ट हो जायगा कि उनकी साखियों का विशेष संबध लौकिक आचरणो से है तथा पदो का सबध विशेष कर धार्मिक सिद्धातो तथा अशत लौकिक आचरण से है। लौकिक आचरण की इन बातो को भी दो भागो मे विभक्त कर सकते है, कुछ तो निवृत्तिमूलक है और कुछ प्रवृत्तिमूलक।

कबीर स्वतन्त्र प्रकृति के मनुष्य थे। उनके चारो ओर शारीरिक दासता का घेरा पड़ा हुआ था। वे इस बात का अनुभव करते थे कि शारीरिक स्वातंत्र्य के पहले विचार स्वातंत्र्य आवश्यक है। जिनका मन ही दासता की बेडियों से जकड़ा हो, वह पाँवो की जजीरे क्या तोड सकेगा। उन्होने देखा था कि लोग नाना प्रकार के अधविश्वासो मे फँसकर हीन जीवन व्यतीत कर रहे है। अत लोगो को इसी से मुक्त करने का प्रयत्न किया। मुसलमानो के रोजा, नमाज, हज, ताजिएदारी, और हिंदुओ के श्राद्ध, एकादशी, तीर्थव्रत, मंदिर सबका उन्होने विरोध किया है। कर्मकाड की उन्होने भर पेट निंदा की है। इस बाहरी पाखड के लिये उन्होने हिंदू मुसलमान दोनों को खूब फटकारें सुनाई है। धर्म को वे आडबर से परे एकमात्र सत्य सत्ता मानते थे, जिसके हिंदू मुसलमान आदि विभाग नही हो सकते। उन्होने किसी नाम-धारी धर्म के बधन मे अपने आपको नही डाला और स्पष्ट कह दिया है कि मैं न हिंदू हूँ न मुसलमान।

जिस सत्य को कबीर धर्म मानते है, वह सब धर्मों मे है। परतु इस सत्य को सबने मिथ्या विश्वास और पाखड से परिच्छन्न कर दिया है। इस बाहरी आडबर को दूर कर देने से धर्मभेद के समस्त झगड़े, बखेड़े दूर हो जाते है, क्योंकि उससे वास्तव मे धर्मभेद ही नहीं रह जाता। फिर तो हिंदू मुस्लिम ऐक्य का प्रश्न स्वय ही हल हो जाता है। एक अलग धार्मिक संप्रदाय के रूप मे कबीरपथ तो कबीर के मूल सिद्धातो के वैसे ही विरुद्ध है जैसे हिंदू और मुसलमान धर्म, जिनका उन्होने जी भर खडन किया है।

धार्मिक सुधार और समाज सुधार का घनिष्ठ सबध है। धर्मसुधारक को समाजसुधारक होना पडता है। कबीर ने भी समाजसुधार के लिये अपनी वाणी का उपयोग किया है। हिंदुओ को जातिपाँति, छूआछूत, खानपान आदि के व्यवहारो और मुसलमानो के चाचा की लडकी व्याहने, मुसलमानी आदि कराने का उन्होने चुभती भाषा मे विरोध किया है और इनके विषय

मे हिंदू मुसलमान दोनो की जी भरकर धूल उडाई है। हिंदुओ के चौके के विषय मे वे कहते हैं—

> 'एकै पवन एक ही पाणी करी रसोई न्यारी जानी।
> माटी सूँ माटी ले पोती, लागी कहौ कहाँ धूँ छोती॥
> धरती लीपि पवित्तर कीन्ही, छोति उपाय लीक बिचि दीन्ही।
> याका हम सूँ कहौ विचारा, क्यूँ भव तिरिहौ इहि आचारा॥'

छूआछूत का उन्होने इन शब्दो मे खडन किया है—

> 'काहे को कीजै पाँडे छोति विचारा। छोतिहि ते उपना संसारा॥
> हमारे कैसे लोहू तुम्हारे कैसे दूध। तुम्हे कैसे ब्राह्मण पाँडे हम कैसे सूद।
> छोति छोति करता तुम्हही जाए। तौ ग्रभवास काहे को आए॥
> जनमत छोति मरत ही छोति। कह कबीर हरि की निर्मल जोति॥

जन्म ही से कोई द्विज या शूद्र अथवा हिंदू या मुसलमान नही हो सकता। इसको कबीर ने कितने सीधे किंतु मन मे जम जानेवाले ढग से कहा है—

> 'जौ तूँ बाँभन बभनी जाया। तौ आन बाट ह्वै क्यो नहि आया॥
> जौ तू तुरक तुरकनी जाया। तौ भीतर खतना क्यो न कराया॥'

उच्चता और नीचता का सबध उन्होने व्यवसाय के साथ नही जोडा है क्योकि कोई व्यवसाय नीच नही है। अपने को जुलाहा कहने मे भी उन्होने कही सकोच नही किया और वे स्वयं आजीवन जुलाहे का व्यवसाय करते रहे। वे उन ज्ञानियो मे से नही थे जो हाथ पाँव समेटकर पेट भरने के लिये समाज के ऊपर भार बनकर रहते है। वे परिश्रम का महत्व जानते थे और अपनी आजीविका के लिये अपने हाथो का सहारा रखते थे।

परतु अपनी आजीविका भर से वे मतलब रखते थे, धन सपत्ति जोडना वे उचित नही समझते थे। थोडे ही मे सतोष करने का उन्होने उपदेश दिया है। जो कुछ वे दिन भर मे कमाते थे, उसका कुछ अश अवश्य साधु-सतो की सेवा मे लगाते थे, और कभी कभी सब कुछ उनकी सेवा मे अर्पित कर डालते और आप निराहार रह जाते थे। कहते हैं कि एक दिन वे गाढे का एक थान बेचने के लिये हाट गए। वस्त्र के अभाव से दुखी एक फकीर को देखकर उन्होने उसमे से आधा उसे दे दिया। पर जब फकीर ने कहा कि मेरा तन ढकने के लिये वह काफी नही है, तब उन्होने सारा उसे ही दे डाला और खाली हाथ घर चले आए। धन धरती जोडना कबीर की सतोषी वृत्ति के विरुद्ध था। उन्होने कहा भी है—

> 'काहे कूँ भीत बनाऊँ टाटी, का जाणूँ कहूँ परिहै माटी।
> काहे कूँ मदिर महल चिनाऊँ, मूवा पीछै घडी एक रहन न पाऊँ॥'

काहे कूँ छाऊँ ऊँच उचेरा, साढ़ै तीन हाथ घर मेरा।
कहै कबीर नर गरब न कीजै, जेता तन तेती भुइ लीजै॥

कबीर अत्यंत सरल हृदय थे। बालको मे सरलता की पराकाष्ठा होती है; यह सब जानते है। इसका कारण वर्ड्सवर्थ के अनुसार यह है कि बालक मे पारमार्थिकता अधिक रहती है। पर ज्यो ज्यो बालक की अवस्था बढ़ती जाती है त्यो त्यो उसमे पारमार्थिकता की न्यूनता होती जाती है। इसीलिये अपने खोए हुए बालकत्व के लिये वर्ड्सवर्थ कवि क्षुब्ध है। परतु कबीर कहते है कि यदि मनुष्य स्वय भक्ति भाव मे अपने मन को निर्मल कर परमात्मा की ओर मुड़े तो वह फिर से इस सरलता को प्राप्त कर बालक हो सकता है—

जो तन माहै मन धरै, मन धरि निर्मल होइ।
साहिब सो सनमुख रहै; तौ फिरि बालक होइ॥

कबीर का सारल्य ऐसे ही बालकत्व का फल था।

कबीर की गर्वोक्तियो के कारण लोग उन्हे घमंडी समझते है। ये गर्वोक्तियाँ कम नही है। उनके नाम से प्रसिद्ध नीचे लिखा पद, जो इस ग्रथावली मे नही है, लोगो मे बहुत प्रसिद्ध है—

'झीनी झीनी बीनी चदरिया।
काहे कै ताना काहे कै भरनी, कौन तार मे बीनी चदरिया।
इगला पिंगला ताना भरनी, सुखमन तार मे बीनी चदरिया॥
आठ कँवल दल चरखा डोलै, पॉच तत्त गुन तीनी चदरिया।
साँइ को सियत मास दस लागे, ठोक ठोक कै बीनी चदरिया॥
सो चादर सुर नर मुनि ओढे, ओढ कै मैली कीनी चदरिया।
दास कबीर जतन से ओढी, ज्यों की त्यो धर दीनी चदरिया॥'

इस ग्रथावली मे भी ऐसी गर्वोक्तियो की कोई कमी नही है—

(क) 'हम न मरै मरिहै ससारा।'

(ख) 'एक न भूला दोइ न भूला, भूला सब ससारा।
एक न भूला दास कबीरा, जाकै राम आधारा॥'

(ग) देखौ कर्म कबीर का, कछू पूरब जनम का लेखा।
जाका महल न मुनि लहै, सो दोसत किया अलेखा॥'

(घ) 'कबीर जुलाहा पारषू, अनभै उतरया पार।'

परंतु यह गर्व लोगो को नीचे देखनेवाला गर्व नही है—साक्षात्कारजन्य गर्व है, स्वामी के आधार का गर्व है, जो सबमें पारमात्मिकता का अनुभव करके प्राणिमात्र को समता की दृष्टि मे देखता है। अपनी

पारमात्मिकता की अनुभूति की गरमी मे उनका ऐसा कहना स्वाभाविक ही है जो उनके मुँह से अनुचित भी नही लगता। जो हो, कम से कम छोटे मुँह बडी बात की कहावत उनके विषय मे चरितार्थ नही हो सकती। वे पहुँचे हुए महात्मा थे। उन्होने स्वय ही अपनी गिनती गोपीचद, भर्तृहरि और गोरखनाथ के साथ की है--

'गोरप भरथरि गोपीचदा। ता मन सो मिलि करै अनदा।
अकल निरजन सकल सरीरा। ता मन सौं मिलि रहा कबीरा।'

परतु इतने ऊँचे पद पर वे विनय के द्वारा ही पहुँच सके है। इसी मे उनका गर्व उन्चतम मनुष्यता का प्रेममय गर्व है जिसकी आत्मा विनय है। सच्चे भक्त की भाँति उन्होने परमात्मा के महत्व और अपनी हीनता का अनुभव किया है--

'तुम्ह समानि दाता नही, हम से नही पापी।'

स्वामी के सामने वे विनय क अवतार है--

'कबीर कूता राम का, मुतिया मेरा नाउँ।
गले राम की जेवडी, जित खैंचै तित जाउँ॥'

उनकी विनय यहाँ तक पहुँची है कि वे बाट का रोडा होकर रहना चाहते है जिस पर सबके पैर पडते है। परतु रोडा पाँव मे चुभकर बटोहियों को दु ख देता है, इसलिये वह धूल के समान रहना उचित समझते है। किंतु धूल भी उडकर शरीर पर गिरती है और उसे मैला करती है, इसलिये पानी की तरह होकर रहना चाहिए जो सबका मैल धोवे। पर पानी भी ठडा और गरम होता है जो अरुचि का विषय हो सकता है। इसलिए भगवान् की ही तरह होकर रहना चाहिए। कबीर का गर्व और दैन्य दोनो मनुष्य को उसकी पारमात्मिकता की अनुभूति करानेवाले है।

कबीर पहुँचे हुए ज्ञानी थे। उनका ज्ञान पोथियो से चुराई हुई सामग्री नही थी और न वह सुनी सुनाई बातो का बेमेल भडार ही था। पढे लिखे तो वे थे नही, परतु सतसग से भी जो बातें उन्हे मालूम हुईं, उन्हें वे अपनी विचारधारा के द्वारा मानसिक पाचन से सर्वदा अपना ही बना लेने का प्रयत्न करते थे। उन्होने स्वय कहा है 'सो ज्ञानी आप विचारै'। फिर भी कई बाते उनमे ऐसी मिलती है, जिनका उनके सिद्धातो के साथ मेल नही पडता। उनकी ऐसी उक्तियो को समय और परिस्थितियो का तथा भिन्न भिन्न मतावलबियो के ससर्ग का अलक्ष्य प्रभाव समझना चाहिए।

कबीर बहुश्रुत थे। सतसग से वेदात, उपनिषदो और पौराणिक कथाओं का थोड़ा बहुत ज्ञान उनका हो गया था, परतु वेदो का उन्हे कुछ भी ज्ञान

नहीं था। उन्होने वेदो की जो निंदा की है, वह यह समझकर कि पंडितों मे जो पाखंड फैला हुआ है, वह वेदज्ञान के कारण ही है। योग की क्रियाओ के विषय मे भी उनकी जानकारी थी। इगला, पिंगला, सुषुम्ना षट्चक्र आदि का उन्होने उल्लेख किया है, परंतु वे योगी नही थे। उन्होंने योग को भी माया मे सम्मिलित किया है। केवल हिंदू मुसलमान दो धर्मों का उन्होने मुख्यतया उल्लेख किया है पर इससे यह न समझना चाहिए की भारतवर्ष मे प्रचलित और धर्मो से वे परिचित नही थे। वे कहते हैं—

'अरु भूले पटदरसन भाई। पाषंड भेष रहे लपटाई।
जैन बोध औरे साकत सैना। चारवाक चतुरंग विहूना॥
जैन जीव को सुधि न जाने। पाती तोरी देहुरै आनैं।'

इनमे ज्ञात होता है कि अन्य धर्मो से भी उनका परिचय था, पर कहाँ तक उनके गूढ रहस्यो को वे समझने थे यह नही विदित होता। जहाँ तक देखा जाता है, ऐसा जान पड़ता है कि ऊपरी बातो पर ही उन्होने विशेष ध्यान दिया है। मार्मिक तात्विक बातो तक ये नही गए है। ईसाई धर्म का उनके समय तक इस देश मे प्रवेश नही हुआ था पर बिलाइत का नाम उनकी साखी मे एक स्थान पर अवश्य आया है—'बिन बिलाइत बड राज'। यह निश्चयात्मक रूप से नही कहा जा सकता कि 'बिलाइत' से उनका यूरोप के किसी देश से अभिप्राय था अथवा केवल विदेश से। कबीरदास जी ने शाक्तो की बड़ी निंदा की है। जैसे—

वैश्नो की छपरी भली, ना साकत का बडागाँव।
'साषत ब्राभण मति मिलै बैंपनो मिलै चँडाल।
अंक माल दे भेटिये मानी मिलै गोपाल॥

कबीर रहस्यवादी कवि है। रहस्यवाद के मूल मे अज्ञात शक्ति की जिज्ञासा काम करती है। संसारचक्र का प्रवर्तन किसी अज्ञात शक्ति के द्वारा होता है, इस बात का अनुभव मनुष्य अनादि काल से करता चला आया है। उस अज्ञात शक्ति को जानने की इच्छा सदैव मनुष्य को रही है और रहेगी। परन्तु वह शक्ति उस प्रकार स्पष्टता से नही दिखाई दे सकती, जिस प्रकार जगत् के अन्य दृश्य रूप; और न उसका ज्ञान ही उस प्रकार साधारण विचारधारा के द्वारा हो सकता है, जिस प्रकार इन दृश्य रूपो का होता है। अपनी लगन से जो इस क्षेत्र मे सिद्ध हो गए है, उन्होने जब जब अपनी अनुभूति का निरूपण करने का प्रयत्न किया है, तब तब अपनी उक्तियों को स्पष्टता देने में अपने आपको समर्थ नही पाया है। कबीर ने स्पष्ट कर दिया है कि परमात्मा का प्रेम और उसकी अनुभूति गूंगे के गुड सा है—

रहस्यवाद

(क) 'अकथ कहानी प्रेम की, कछू कही न जाइ।
गूंगे केरी सरकरा, बैठा मुसकाइ ॥'

(ख) तजि बावें दाहिनें विकार, हरि पद दिढ करि गहिये।
कहै कबीर गूंगे गुड खाया, बूझै तो का कहिये ॥'

यही रहस्यवाद का मूल है। वेद और उपनिषदो मे रहस्यवाद की झलक विद्यमान है। गीता मे भगवान् के मुँह से उनकी विभूति का जो वर्णन कराया गया है, वह भी अत्यत रहस्यपूर्ण है।

परमात्मा को पिता, माता, प्रियतम, पुत्र अथवा सखा के रूप मे देखना रहस्यवाद ही है, क्योकि लौकिक अर्थ मे परमात्मा इनमे मे कुछ भी नही है। आदर्श पुरुषो मे परमात्मा की विशेष कला का साक्षात्कार कर उनको अवतार मानने के मूल मे भी रहस्यवाद ही है। मूर्ति को परमात्मा मानकर उसे मस्तक नवाना आदिम रहस्यवाद है।

परमात्मा के पितृत्व की भावना बहुत प्राचीन काल से वेदो ही मे मिलने लगती है। ऋग्वेद की एक ऋचा मे 'यो न पिता जनिता यो विधाना' कहकर परमात्मा का स्मरण किया गया है। वेदो मे परमात्मा को माता भी कहा गया है—'त्व हि न. पिता वसो त्वं माता शक्रतो वभूविथ'। परमात्मा के मातृपितृ मे प्राणियो के भ्रातृत्व की भावना का उदय होता है 'अज्येष्ठामो अकनिष्ठासो एते संभ्रातरो'। बहुत पीछे के ईसाई ईश्वरवाद मे परमात्मा के पितृत्व और प्राणियो के भ्रातृत्व की यही भावना पाई जाती है; अतएव पश्चिमी रहस्यवाद मे भी इस भावना का प्रावल्य है। कबीर मे भी यह भावना मिलती है

'बाप राम राया अब हूँ सरन तिहारी।'

उन्होने परमात्मा को 'माँ' भी कहा है—

'हरि जननी मैं बालिक तेरा।'

परतु भारतीय रहस्यवाद की विशेषता सर्वात्मवादमूलक होने मे है जो भारतीयो की ब्रह्मजिज्ञासा का फल है। उपनिषदो और गीता का रहस्यवाद यही रहस्यवाद है। जिज्ञासु जब ज्ञानी की कोटि पर पहुँचकर कवि भी होना चाहता है तब तो अवश्य ही वह इस रहस्यवाद की ओर झुकता है। चितन के क्षेत्र का ब्रह्मवाद कविता के क्षेत्र मे जाकर कल्पना और भावुकता का आधार पाकर इस रहस्यवाद का रूप पकड़ता है। सर्वात्मवादी कवि के रहस्योद्भावी मानस मे ससार उसी रूप मे प्रतिबिंबित नही होता, जिस रूप मे साधारण मनुष्य उसे देखता है। यह परमात्मा के साथ सारी सृष्टि का अखड सबध देखता है, जिसके चरितार्थ करने का प्रयत्न करते हुए जायसी ने

जगत् के सब रूपों को दिखलाया है। जगत् के नाना रूप उसकी दृष्टि में परमात्मा से भिन्न नही है, उसी के भिन्न भिन्न व्यक्त रूप है। स्वातत्र्य के अवतार, स्त्रीत्व का आध्यात्मिक मूल समझनेवाले अँगरेजी के कवि शेली को भी सर्वात्मवादी रहस्यवाद ही 'मर्मर करते हुए काननो मे, झरनो मे, उन पुष्पों की परागगध मे जो उस दिव्य चुंबन के मुखस्पर्श से सोए हुए कुछ बरौते से मुग्ध पवन को उसका परिचय दे रहे है, इसी प्रकार मद या तीव्र समीर मे, प्रत्येक आते जाते मेघखंड की झडी मे, वसतकालीन विहगमो के कलकूजन मे और सब ध्वनियो और स्तब्धता मे भी अपनी प्रियतमा की मधुर वाणी सुनाई दी है। कबीर मे ऊपर परिगणित कुछ अन्य रहस्यवादी भावनाओ के होते हुए भी प्रधानता इसी रहस्यवाद की है। मुसलमान कवियों की प्रेमाख्यानक परपरा के जायसी एक जगमगाते रत्न हैं। वे रहस्यवादी कवियों की ही एक लड़ी हैं, जिसमें सूफियो के मार्ग से होते हुए भारतीय सर्वात्मवाद आया है।

सर्वात्मवादमूलक रहस्यवाद मे 'माधुर्य भाव' का उदय हुआ, जो कबीर और प्रेमाख्यानक सब मुसलमान कवियों मे विद्यमान है। वैष्णवो और सूफियो की उपासना माधुर्य भाव से युक्त होती है। दार्शनिको ने परमात्मा को पुरुष और जगत् को स्त्रीरूप प्रकृति कहा है। माधुर्य भाव इसी का भावुक रूप है, जिसमे परमात्मा की प्रियतम के रूप मे भावना की जाती है और जगत् के नाना रूप स्त्रीरूप मे देखे जाते हैं। मीराबाई ने तो केवल कृष्ण को ही पुरुष माना है, जगत् में पुरुष उन्हे और कोई दिखाई ही नहीं दिया। कबीर भी कहते है—

(क) 'कहै कबीर ब्याहि चले है पुरुप एक अविनासी।'
(क) 'सखी सुहाग राम मोहि दीन्हा ॥'

इस तरह के एक दो नही कई उदाहरण दिए जा सकते है। राम की सुहागिन पहले अपना प्रेमनिवेदन करती है—

'गोकुल नायक बीठुला मेरो मन लागौ तोहि रे।'

यह जीवात्मा का परमात्मा मे लगन लगने का आरभिक रूप है। इसे ब्याह के पहले का पूर्वानुराग समझना चाहिए।

कभी वह वियोगिनी के रूप में प्रगट होती है और उस वियोगाग्नि मे जले हुए हृदय के उद्गार प्रकट करती है—

'यह तन जालौं मसि करौ, लिखौं राम का नाउँ।
लेखणि करौं करंक की, लिखि लिखि राम पठाउँ ॥'

परमात्मा के वियोग से जनित सारी सृष्टि का दुःख कितना घना होकर कबीर के हृदय मे समाया है।

राम की वियोगिन आकुलता से उन दिनो की वाट देखती है जब वह प्रियतम का आलिंगन करेगी—

'वै दिन कब आवैगे भाई ।

जा कारनि हम देह धरी है, मिलिबौ अग लगाई ।।'

यहाँ जीवात्मा के परमात्मा से मिलने की आकुलता की ओर सकेत है। इस आकुलता के साथ साथ भय भी रहता है। सारा विश्व जिसका व्यक्त रूप है, उस प्रियतम से मिलने के लिये असाधारण तैयारी करने की आवश्यककता होती है। 'हरि की दुलहिन' को भय इस आशका से होता है कि वह उतनी तैयारी कर सकेगी या नही। उसे अपने ऊपर विश्वास नही होता। फिर रहस्य केलि के समय प्रियतम के साथ किस प्रकार का व्यवहार करना होगा, यह भी नही जानती—

'मन प्रतीति न प्रेमरस ना इस तन मे ढग ।
क्या जाणौ उस पीय सूँ कैसे रहसी रग ।।'

इसमे साक्षात्कार की महत्ता का आभास है जो एक साधारण घटना नही है।

ज्यो ज्यो जीवात्मा को अपनी पारमात्मिकता का अनुभव होता जाता है, त्यो त्यो उसका भय जाता रहता है। लौकिक भाषा मे इसी की ओर इस पद मे इशारा है—

अब तोहि जान न दैहूँ राम पियारे। ज्यूँ भावै त्यूँ होहु हमारे।'

यह प्रेम की ढिठाई है।

परमात्मा से मिलने के लिये ऐसी 'ऊँची गैल, राह रपटीली नही तै करनी पड़ती जहाँ 'पाँव नही ठहराय'। वह तो घर बैठे मिल जायँगे पर उसके लिये पहुँची हुई लगन चाहिए, क्योकि परमात्मा तो हृदय ही मे है—

'बहुत दिनन के बिछुरे हरि पाये। भाग बड़े घरि बैठे आये।'

कबीरदास के नाम से लोगों की जिह्वा पर जो यह पद—

'मो को कहाँ ढूँढे बदे मै तो तेरे पास मे।
ना मै देवल, ना मै मसजिद, ना कावे कैलास मे ।।'

बहुत दिनो से चढा चला आ रहा है, उसका भी यही भाव है। जायसी ने यही भाव यो प्रकट किया है।

'पिउ हिरदय महँ भेट न होई। को रे मिलाय, कहौ केहि रोई ।।'

रहस्यमय उक्तियो की रहस्यात्मकता उनके लोकनियोजित शब्दार्थ मे नही है। उस अर्थ को मानने से उनकी रहस्यात्मकता जाती रहती है, उनका सकेत मात्र ग्रहण करना चाहिए। मूर्ति को परमात्मा मानकर उसका पूजन

इसीलिये करना चाहिये कि ईश्वरप्राप्ति मे आगे की सीढी सहज में चढ सके, क्योकि साधारणत. सबलोग परमात्मा या ब्रह्म का ठीक ठीक स्वरूप समझने मे नितात असमर्थ होते है। अतः मूर्तिपूजा के द्वारा मानों मनुष्य को ब्रह्म के भी साक्षात्कार की प्रारभिक शिक्षा मिलती है। उसके आगे बढकर सचमुच पत्थर को परमात्मा मानने से फिर कोई रहस्य नही रह जाता। ईसाइयो ने परमात्मा के पितृत्व भाव की उसी समय इतिश्री कर दी, जब ईसा को लौकिक अर्थ मे परमात्मा या पवित्रात्मा का पुत्र मान लिया। राम और कृष्ण को साक्षात् परमात्मा ही मानने के कारण तुलसी और सूर मे अवतारवाद की मूलभूत रहस्यभावना नही आ पाई है। सखी सप्रंदाय ने मनुष्यो को सचमुच स्त्री मानकर और उनके नाम भी स्त्रियो जैसे रखकर और यहाँ तक कि उनसे ऋतुमती स्त्रियो का अभिनय कराकर 'माधुर्य भाव' के रहस्यवाद को वास्तववाद का रूप दे दिया। रहस्यवाद के वास्तववाद मे पतित हो जाने के कारण ही सदुद्देश्य से प्रवर्तित अनेक धर्म सप्रदायों में इद्रियलोलुपता का नारकीय नृत्य देखने मे आता है। रहस्यवादी कवियो का वास्तववादियो से इसी बात मे भेद है कि वास्तववादी कवि अपने विपय का यथातथ्य वर्णन करते है, और रहस्यववादी केवल सकेत मात्र कर देते हैं, अपने वर्ण्यविपय का आभास भर दे देते है। उनमे जो यह धुँधलापन पाया जाता है, उसका कारण उनकी आध्यात्मिक प्रवृत्ति है। परमात्मा की सत्ता का आभास मात्र ही दिया जा सकता है। इसके लिये वे व्यजनावृत्ति से अधिकतर काम लिया करते है और चित्राधान उनका प्रधान उपादान होता है। उनकी बाते अन्योक्ति के रूप मे हुआ करती है। किसी प्रत्यक्ष व्यापार के चित्र को लेकर वे उससे दूसरे परोक्ष व्यापार के चित्र की व्यंजना करते हैं। इसी से रहस्यवादी कवियो में वास्तववादियो की अपेक्षा कल्पना का प्राचुर्य अधिक होता है।

रसिको की सम्मति मे कबीर का रहस्यवाद रूखा है, उनका माधुर्य भाव भी उन्हें फीका लगता है, उनके चित्रो मे उन्हे अनेकरूपता नही दिखाई देती। कबीर ने अपने उक्तियो को काव्य की काटछाँट नही दी है, परंतु इसकी उन्हे जरूरत ही नही थी। इस बात का प्रयास वह करेगा· जिसमें कुछ सार न हो।

कबीर में चित्रो की अनेकरूपता न देखना उनके साथ अन्याय करना है। व्याह का ही दृश्य वे कई बार अवश्य लाए है, पर जैसा कि पाठकों को आगे चलने पर मालूम होता जायगा, उनका रहस्यवाद माधुर्य भाव में ही नही समाप्त हो जाता। प्रकृति से चुने चुने चित्र उनकी उक्तियो मे अपने आप आ बैठे है। हाँ, उन्होंने प्रयास करके अपनी उक्तियो को काव्य की

मधुरता नही दी है। फिर भी उनकी ऊपरी सहृदयता न सही तो अनन्य-हृदयता और तल्लीनता व्यर्थ कैसे जा सकती थी। जो उन्हे बिल्कुल ही रूखा समझते हैं, उन्हे उनकी रहस्यमयी अन्योक्तियो को देखना चाहिए।

'काहे री नलिनी ! तू कुमिलानी। तेरे ही नालि सरोवर पानी।
जल मे उतपति जल मे वास, जल मे नलिनी तोर निवास ॥
ना तलि तपति न ऊपर आगि, तोर हेत कहु कामनि लागि ॥
कहै कबीर जे उदिक समान, ते नहीं मूए हमारे जान ॥'

कैसा मृदुल मनोमोहक चित्र है ! इसका सहज माधुर्य किसे न मोह लेगा। प्रकृति का प्रतिनिधि मनुष्य नलिनी है, जल ब्रह्म तत्व है। इसी मे प्रकृति के नाना रूपो की उत्पत्ति होती है, यही, पोषक तत्व है जो मनुष्य और नाना रूपो मे स्वय विद्यमान है। इस जल की शीतलता के सामने कोई ताप ठहर नही सकता। यह तत्व समझकर इस पोषण सामग्री का उपयोग करने-वाला (अर्थात् ज्ञानी) मर ही कैसे सकता है ?

औद्यानिक भाषा मे सासारिक जीवन की नश्वरता का कितना प्रभावशाली आभास नीचे लिखे दोहे मे है—

'मालनी आवत देखि करि, कलियाँ करी पुकार।
फूले फूले चुन लिए, काल्हि हमारी बार ॥'

और देखिए—

'बाढी आवत देखि करि, तरिवर डोलन लाग।
हम कटे कि कछु नही, पखेरु घर भाग।'

बढई काल है, वृक्ष का डोलना वृद्धावस्था का कप है पक्षी आत्मा है। यह डोलना आत्मा को इस बात की चेतावनी देता है कि शरीर के नाश का दुख न करके ब्रह्म तत्व मे लीन होने का प्रबंध करो; पक्षी का घर भागना यही है। काटते समय पेड को हिलने और वृद्धावस्था मे शरीर को काँपते किसने नही देखा होगा। परन्तु किसलिये वह हिलना काँपना है, इसका रहस्य कबीर ही जान पाए है। यह आभास किसको नही मिलता, पर कितने हैं जो उनको समझ पाते हैं !

नाश नीची स्थितिवालो के लिये ही मुँह बाए नही खडा है, ऊँची स्थितिवाले भी इसी घाट उतरेंगे इस बात का सकेत यह दोहा देता है—

'फागुण आवत देखि करि, वन रूना मन माहि।
ऊँची डाली पात है, दिन दिन पीले थाहि ॥'

कबीर की चमत्कारपूर्ण उलटवाँसियाँ भी रहस्यपूर्ण हैं। कठोपनिषद् के अनुसार मनुष्य का शरीर रथ है, जिसमे इद्रियो के घोडे जुते हैं, घोडो पर मन

की लगाम लगी हुई है जो सारथी रूपी बुद्धि के हाथ मे है। 'परमपद' का पथिक आत्मा इस रथ पर सवार है, उसकी इच्छा के अनुसार उसका परिचालन होना चाहिए। शरीर सेवक है, आत्मा स्वामी है। यह स्वाभाविक क्रम है। परतु जब स्वामी सो जाय, सारथी किंकर्तव्यविमूढ हो जाय और घोड़ों की लगाम निरुद्देश्य ढीली पड़ जाय, तब यह क्रम उलट जाता है, स्वामी का स्थान सेवक ले लेता है। रथ के अधीन होकर स्वामी भटका करता है। और प्राय. ऐसा होता है कि घोड़ो (इद्रियो) के मनमाने आचरण मे रथ (शरीर) और स्वामी (आत्मा) दोनो को अनेक प्रकार के कष्ट भोगने पड़ते है। भवजाल मे पडे हुए मनष्यो की इसी उलटी अवस्था को विशेपकर कबीर ने अपनी उलटबाँसियो द्वारा व्यजित कर लोगो को आश्चर्य मे डाला है--

'ऐसा अद्भुत मेरा गुरु कथ्या, मै रह्या उमेपैं।
मूसा हस्ती सौं लड़ै कोई विरला पेपैं ॥
मूसा बैठा बाँवि मैं, लारै सापणि धाई।
उलटि मूसै सापिण गिली यह अचरज भाई ॥
चीटी परवत ऊपण्या ले राख्यौ चौड़ै।
मूर्गा मिनकी सूं लड़ै झल पाणी दौडै ॥
सुरही चूपैं बछतलि, बछा दूध उतारै।
ऐसा नवल गुणी भया, सारदूलहि मारै ॥
भील लुक्या वन बीझ मैं, ससा- सर मारै।
कहै कबीर ताहि गुरु करी, जो या पदहि विचारै ॥'

सबका कारण परब्रह्म किसी का कार्य नही है, इस बात का आभास देनेवाला यह साकेतिक पद कितना रहस्यपूर्ण है।

'बाँझ का पूत, बाप बिन जाया, बिन पाउँ तरवर चढिया।
अस बिन पाखर, गज बिन गुडिया, बिन पडै सग्राम लडिया ॥
बीज बिन अकुर, पेड बिन तरवर, बिन साषा तरवर फलिया।
रूप बिन नारी, पुहुप बिन परिमल, बिन नीरै सर भरिया ॥'

सभी सत कवियो के काव्य मे थोड़ा बहुत रहस्यवाद मिलता है। पर उनका काव्य विशेपकर कबीर का ही ऋणी है। बँगला के वर्तमान कवीन्द्र को भी कबीर का ऋण स्वीकार करना पडेगा। अपने रहस्यवाद का बीज उन्होने कबीर ही मे पाया। परतु उनमे पाश्चात्य भड़कीली पालिश भी है। भारतीय रहस्यवाद को उन्होने पाश्चात्य ढग से सजाया है। इसी से यूरोप मे उनकी इतनी प्रतिष्ठा हुई है। जब से उन्हे नोबेल प्राइज (पुरस्कार)

मिला तब से लोग उनकी गीताजलि की बेतरह नकल करने पर तुले हुए है। हिंदी का वर्तमान रहस्यवाद अब तक नकल ही सा लगता है। सच्चे रहस्यवाद के आविर्भाव के लिये प्रतिभा की अपेक्षा होती है। कबीर इसी प्रतिभा के कारण सफल हुए हैं। पिंगल के नियमो को भग करके खडा किया हुआ निरर्थक शब्दाडबर रहस्यवादी कविता का आसन नही प्राप्त कर सकता है।

कबीर के काव्य के विषय मे बहुत कुछ बाते उनके रहस्यवाद के अतर्गत आ चुकी है, यहाँ पर बहुत कम कहना शेष है। कविता के लिये उन्होने

काव्यत्व

कविता नही की है। उनकी विचारधारा सत्य की खोज मे बही है, उसी का प्रकाश करना उनका ध्येय है। उनकी विचारधारा का प्रवाह जीवनधारा के प्रवाह से भिन्न नही है। उसमे उनका हृदय घुला मिला है, उनकी प्रतिभा हृदयसमन्वित है। उनकी बातो मे बल है जो दूसरे पर प्रभाव डाले बिना नही रह सकता। अक्खड ढंग से कही होने पर भी उनकी बेलाग बातो मे एक और ही मिठास है जो खरी खरी बातें कहनेवाले ही की बातो मे मिल सकती है। उनकी सत्यभाषिता और प्रतिभा का ही फल है कि उनकी बहुत सी उक्तियाँ लोगो की जबान पर चढकर कहावतो के रूप मे चल पडी है। हार्दिक उमग की लपेट मे जो सहज विदग्धता उनकी उक्तियो मे आ गई है, वह अत्यत भावापन्न है। उसी मे उनकी प्रतिभा का चमत्कार है। शब्दो के जोड तोड मे चमत्कार लाने के फेर मे पड़ना उनकी प्रकृति के प्रतिकूल था। दूर की सूझ जिस अर्थ मे केशव, बिहारी आदि कवियो मे मिलती है, उस अर्थ मे उनमे पाना असभव है। प्रयत्न उनकी कविता में कही नही दिखाई देता। अर्थ की जटिलता के लिये उनकी उलटबाँसियाँ केशव की शब्दमाया को मात करती है, परंतु उनमे भी प्रयत्न दृष्टिगत नही होता। गत दिन आंखो मे आनेवाले प्रकृति के सामान्य व्यापारो के उलटे व्यवहार को ही उन्होने सामने रखा है। सत्य के प्रकाश का साधन बनकर, जिसकी प्रगाढ अनुभूति उनको हुई थी, कविता स्वयमेव उनकी जिह्वा पर बैठी है। इसमे सदेह नही कि कबीर मे ऐसी भी उक्तियाँ है जिनमे कविता के दर्शन नही होते—और ऐसे पद्य कम नही है—किंतु उनके कारण कबीर के वास्तविक काव्य का महत्व कम नही हो सकता, जो अत्यत उच्चकोटि का है और जिसका बहुत कुछ माधुर्य रहस्यवाद के प्रकरण के अतर्गत दिखाया जा चुका है।

जैसे कबीर का जीवन ससार से ऊपर उठा था, वैसे ही उनका काव्य भी साधारण कोटि से ऊँचा था। अतएव सीखकर प्राप्त की हुई रसिकता का काव्यानद उनमे नही मिलता। परपरा से बँधे हुए लोगो को काव्यजगत् मे

भी इंद्रियलोलुपता का कीडा वनकर रहना ही भला लगता है। कवीर ऐसे लोगो की परितुष्टि की परवा कैसे कर सकते थे, जिनको निरपेक्षी के प्रति होनेवाला उनका प्रेम भी शुष्क लगता है। प्रेम की पराकाष्ठा ग्रात्मसमर्पण का मानो काव्यजगत् मे कोई मूल्य ही नही है।

कवीर ने ग्रपनी उक्तियो पर वाहर से ग्रलकारों का मुलम्मा नहीं चढाया है। जो ग्रलंकार उनमे मिलते भी है वे उन्होने खोज खोजकर नही वैठाए हैं। मानसिक कलावाजी ग्रौर कारीगरी के ग्रर्थ मे कला का उनमें सर्वथा ग्रभाव है। 'वेसिर पैर की वाते', 'वायवी ग्रवस्तुग्रो' का स्थान ग्रौर नामनिर्देश कर देने को कविकर्म कहकर शेक्सपियर ने कवियो को सन्निपात या पागलपन मे वेसिर पैर की वाते वकनेवालो की श्रेणी मे रख दिया है। जिन कवियो के सवध मे 'कि न जलपति' कहा जा सकता है, उन्हो का उल्लेख 'कि न खादति' वाले वायसो के साथ हो सकता है। सच्ची कला के लिये तथ्य ग्रावश्यक है। भावुकता के दृष्टिकोण से कला ग्राडवरो के वधन से निर्मुक्त तथ्य है। एक विद्वान् कृत इस परिभाषा को यदि काव्यक्षेत्र में प्रयुक्त करे तो कम कवि सच्चे कलाकारो की कोटि मे ग्रा सकेगे। परतु कवीर का ग्रासन उस ऊँचे स्थान पर ग्रविचल दिखाई देता है। यदि सत्य के खोजी कवीर के काव्य मे तथ्य की स्वतत्रता नही मिलती तो ग्रौर कही नही मिल सकती। कवीर के महत्व का ग्रनुमान इसी से हो सकता है।

कवीर के काव्य मे नीचे लिखी हुई खटकनेवाली वाते भी है, जिनकी ग्रोर स्थान स्थान पर सकेत करते ग्राए हैं—

(१) एक ही वात को उन्होने कई वार दुहराया है, जिससे कही कही रोचकता जाती रहती है।

(२) उनके ज्ञानीपन की शुष्कता का प्रतिविव उनकी भाषा पर ग्रक्खडपन होकर पडा है।

(३) उनकी ग्राधी से ग्रधिक रचना दार्शनिक पद्य मात्र है, जिसको कविता नही कहना चाहिए।

(४) उनकी कविता में साहित्यिकता का सर्वथा ग्रभाव है। थोडी सी साहित्यिकता ग्रा जाने से परपरानुवद्ध रसिको के लिये उपालभ का स्थान न रह जाता।

(५) न उनकी भाषा परिमार्जित है ग्रौर न उनके ग्रथ पिंगलशास्त्र के नियम के ग्रनुकूल है।

कवीरदास छंदशास्त्र से ग्रनभिज्ञ थे, यहाँ तक कि वे दोहो को पिंगल की खराद पर न चढा सके। डफली वजाकर गाने मे जो शब्द जिस रूप मे निकल गया, वही ठीक था। मात्राग्रो के घट वढ जाने की चिंता करना

व्यर्थ था। पर साथ ही कबीर मे प्रतिभा थी; मौलिकता थी, उन्हें कुछ संदेश देना था और उसके लिये शब्द की मात्रा गिनने की आवश्यकता न थी, उन्हे तो इस ढग से अपनी बाते कहने की आवश्यकता थी, जो सुननेवालो के हृदय मे पैठ जायँ और पैठ कर जम जायँ। तिसपर वह हिंदी कविता के आरंभ के दिन थे। पर आजकल के रहस्यवादी काव्यो मे न प्रतिभा के दर्शन होते है और न मौलिकता का आभास मिलता है। केवल ऊटपटाँग कह देने और भाषा तथा पिंगल की उपेक्षा दिखाने ही मे उन आवश्यक गुणो के अभावो की पूर्ति नही हो सकती।

कबीर की भाषा का निर्णय करना टेढी खीर है क्योकि वह खिचडी है। कबीर की रचना मे कई भाषाओ के शब्द मिलते है, परतु भाषा का निर्णय अधिकतर शब्दो पर निर्भर नही है। भाषा के आधार क्रियापद, सयोजक शब्द तथा कारक चिह्न हैं जो वाक्यविन्यास की विशेषताओ के लिये उत्तरदायी होते है। कबीर मे केवल शब्द ही नही क्रियापद, कारक चिह्नादि भी कई भाषाओ के मिलते है, क्रियापदो के रूप अधिकतर व्रजभाषा और खडी बोली के है। कारक चिह्नो मे कै, सन, सा आदि अवधी के है, को व्रज का है और थैं राजस्थानी का। यद्यपि उन्होने स्वय कहा है—'मेरी बोली पूरबी', तथापि खडी व्रज, पंजाबी, राजस्थानी, अरबी फारसी आदि अनेक भाषाओ का पुट भी उनकी उक्तियो पर चढा हुआ है। पूरबी से उनका क्या तात्पर्य है, यह नही कह सकते। उनका बनारस निवास पूरबी से अवधी का अर्थ लेने के पक्ष मे है, परतु उनकी रचना मे बिहारी का भी पर्याप्त मेल है; यहाँ तक कि मृत्यु के समय मगहर मे उन्होने जो पद कहा है उसमे मैथिली का भी कुछ ससर्ग दिखाई देता है। यदि 'बोली' का अर्थ मातृभाषा ले और 'पूरब' का बिहारी तो कबीर के जन्म के विषय पर एक नया ही प्रकाश पड जाता है। उनका अपना अर्थ जो कुछ हो, पर पाई जाती हैं उनमे अवधी और बिहारी, दोनो बोलियाँ।

भाषा

इस पंचमेल खिचडी का कारण यह है कि उन्होने दूर दूर के साधुसंतो का सत्सग किया था जिससे स्वाभाविक ही उन पर भिन्न भिन्न प्रातो की बोलियो का प्रभाव पड़ा।

खडी बोली का पुट इस दोहे मे देखिए—

'कबीर कहता जात हूँ सुणता है सब कोइ।
राम कहे भला होइगा नहितर भला न होइ॥'
आऊँगा न जाऊँगा, मरूँगा न जीऊंगा।
गुरु के सबद रमि रमि रहूँगा॥'

इसमें शुद्ध खड़ी बोली के दर्शन होते है।

'जब लगि घसै न आभ' में 'घसै' ब्रजभाषा का है और 'आभ' फारसी के आब का बिगडा हुआ रूप है। आगे लिखे दोहे मे अपडियाँ, जीभडियाँ आदि रूप पजाबी का और पड्या क्रिया राजस्थानी प्रभाव प्रकट करते हैं—

'अपडियाँ झाँई पडी पथ निहारि निहारि।
जीभड़ियाँ छाला पड्या, राम पुकारि पुकारि॥'

पंजाब के केवल बहुत से शब्द नहीं मुहावरे भी उनमें मिलते हैं। जैसे—

१—रलि गया आटे लूंण
२—लूण बिलग्गा पाणियाँ, पाणी लूण विलग्ग।

इनके उच्चारण पर भी पंजाबी का प्रभाव दृष्टिगत होता है। न को ण कहना पंजाबी की ही विशेषता है। पंजाबी विवेक का उच्चारण बवेक करते है। कबीर मे भी वह शब्द इसी रूप मे मिलता है। बँगला के भी इनमें कुछ प्रयोग मिलते है। आछिलो शब्द बँगला का छिलो है जो 'था' अर्थ मे प्रयुक्त होता है—'कहु कबीर कछु आछिलो जहिया।' इसी प्रकार 'सकना' अर्थ मे पारना क्रिया के रूप भी जो अब केवल बँगला में मिलते हैं, पर जिनका प्रयोग जायसी और तुलसी ने भी किया है; इनकी भाषा मे पाए जाते है—

'गॉइ कु ठाकुर खेत कु नेपै, काइथ खरच न पारै।'

संस्कृत वर्ज्य से बिगड़कर बना हुआ एक 'बाज' शब्द तुलसी और जायसी दोनों में मिलता है। जायसी में यह बाझ रूप मे मिलता है। पर आजकल इसका प्रयोग अधिकतर पजाबी मे ही होता है, जहाँ इसका रूप 'बाझों' होता है।

'भिस्त न मेरे चाहिए बाझ पियारे तुज्झ।'

जेम, ससिहर, आदि शुद्ध अपभ्रंश के भी कई शब्दो का उन्होने प्रयोग किया हैं। 'जेम' शब्द सस्कृत 'यद्' से निकला है और ससिहर संस्कृत शशधर से। अपभ्रंश में सस्कृत के क का ग हो जाता है जैसे प्रकट का प्रगट। कबीर ने मनमाने ढंग से भी ऐसे परिवर्तन किए है। उपकारी का उन्होने उपगारी बनाया है। संस्कृत के महाप्राण अक्षर प्राकृत और अपभ्रंश मे प्राय. ह रह जाते है जैसे शशधर से ससिहर। कबीर में इसका विपर्यय भी मिलता है। उन्होंने दहन को दाझन कहा है।

फारसी के एक ही शब्द का हमने ऊपर उदाहरण दिया है। यत्र तत्र

फारसी अरवी के शव्द तो उनमे मिलते ही है, उनके कुछ पद ऐसे भी है जिनमे अरवी और फारसी शव्दो की ही भरमार है। उदाहरण के लिये उनकी पदावली का २५८ वाँ पद ले लीजिए, जिसकी दो पक्तियाँ हम यहाँ उद्धृत करते है—

'हमरकत रहवरहुँ समाँ मैं खुर्दा सुभाँ विसियार।
हमजिमी आसमाँन खलिक, गुद मुसकिल कार॥'

हम कह चुके है कि कवीर पढे लिखे नही थे, इसी से वे वाहरी प्रभावो के वहुत अधिक शिकार हुए। भाषा और व्याकरण की स्थिरता उनमे नही मिलती। या यह भी सभव है कि उन्होने जान वूझकर अनेक प्रातो के शव्दों का प्रयोग किया हो अथवा शव्दभाडार की कमी के कारण जव जिस भाषा का सुना सुनाया शव्द उनके सामने आ गया हो, उन्होने अपनी कविता मे रख दिया हो। शव्दो को उन्होने तोड़ा मरोडा भी वहुत है। सन को सनि सना सूं—चाहे जिस रूप मे तोड मरोडकर उन्होने आवश्यकतानुसार अपनी उक्तियो मे ला वैठाया है। इसके अतिरिक्त उनकी भाषा मे अक्खडपन है और साहित्यिक कोमलता या प्रसाद का सर्वथा अभाव है। कही कही उनकी भाषा विलकुल गँवारू लगती है, पर उनकी वातो मे खरेपन की मिठास है, जो उन्ही की विशेषता है और उसके सामने यह गँवारपन डूव जाता है।

हिंदी के काव्यसाहित्य मे कवीर के स्थान का निर्णय करना कठिन है तुलना के लिये एक ही क्षेत्र के कवियो को लेना चाहिए। कवीर का काव्य मुक्तक क्षेत्र के अंतर्गत है। उसमे भी उन्होने कुछ ज्ञान पर कहा है और कुछ नीति पर। नानक, दादू, सुंदरदास आदि ज्ञानाश्रयी निर्गुण भक्त कवियो मे वे सहज ही सवसे वढकर है। नानक, दादू आदि मे कवीर की ही पुनरावृत्तियाँ है, परतु उस शक्ति के साथ नही। सुदरदास मे साहित्यिकता कवीर से अधिक है, परंतु आँचल मे अस्वाभाविकता भी वे खूव वाँध लाए हैं। नीतिकाव्य की सफलता की कसौटी उसकी सर्वप्रियता है। कवीर के नीतिकाव्य की सर्वप्रियता न वृंद को प्राप्त हुई और न रहीम को। रहीम मे कवीर के भाव ज्यो के त्यो मिलते है। कही कही तो दोहे का दोहा रहीम ने अपना लिया है, यथा—

उपसंहार

'कवीर यह घर प्रेम का खाला का घर नाहि।
सीस उतारै हाथ करि सो पैसे घर माँहि॥'

—कवीर।

'रहिमन घर है प्रेम का खाला का घर नाहि ।
सीस उतारै भुइँ धरै सो जावै घर माँहि ॥'

—रहीम ।

वृंद और कवीर की विदग्धता एक सी है । रहस्यवादी कवियो में भी कवीर का ही आसन सबसे ऊँचा है शुद्ध रहस्यवाद केवल उन्ही का है । प्रेमाख्यानक कवियों का रहस्यवाद तो उनके प्रबंध के बीच बीच मे बहुत जगह थिगली सा लगता है और प्रबंध से अलग उसका अभिप्राय ही नष्ट हो जाता है। अन्य क्षेत्रो के कवियों के साथ कवीर की तुलना की ही नही जा सकती। तुलसी और सूर कविता के साम्राज्य मे सर्वसम्मति से और सव कवियो की पहुँच के वाहर हैं। चंदकृत पृथ्वीराजरासो नामक जो प्रक्षिप्त महाकाव्य प्रसिद्ध है, उसी में उनके महत्व का बहुत कुछ दर्शन हो जाता है। अतएव जब तक उनकी रचना के विषय मे कोई निश्चयात्मक निर्णय नही हो जाता, तब तक उनको किसी के साथ तुलना के लिये खड़ा करना उनपर अन्याय करना है। केशव को काव्यशास्त्र का आचार्य भले ही मान लें, पर उनको नैसर्गिक कवियो में गिनना कवित्व का तिरस्कार करना है। विहारी की कोटि के कवियो की कविता को सच्ची स्वाभाविक कविता मे गिनने मे भी सकोच हो सकता है। मूंड मुंडाकर शृंगार के पीछे पड़नेवाले सव कवि इसी श्रेणी में हैं। पर भूषण, जायसी और कवीर मे कौन वडा है, इसका निर्णय नही हो सकता। तीनो मे सच्चे कवि की आकुलता विद्यमान है, और अपने क्षेत्र में तीनो की पूरी पहुँच है, तीनो एक श्रेणी के हैं, फिर भी यदि आध्यात्मिकता को भौतिकता से श्रेष्ठ ठहराकर कोई कवीर को श्रेष्ठ ठहरावे तो रुचिस्वातंत्र्य के कारण उसे यह अधिकार है। प्रभाव से यदि श्रेष्ठता माने तो तुलसी के बाद कवीर का ही नाम आता है, क्योकि तुलसी को छोडकर हिंदीभाषी जनता पर कवीर के समान या उनसे अधिक प्रभाव किसी कवि का नही पड़ा।

———

कबीर ग्रंथावली

(१) साखी

(१) गुरुदेव कौ अंग

सतगुरु सवाँन को सगा, सोधी सईं न दाति।
हरिजी सवाँन को हितू, हरिजन सईं न जाति॥ १॥

बलिहारी गुर आपणैं द्यौं हाड़ी कै बार।
जिनि मानिष तैं देवता, करत न लागी वार॥ २॥

सतगुरु की महिमा अनँत, अनँत किया उपगार।
लोचन अनँत उघाड़िया, अनँत दिखावणहार॥ ३॥

राम नाम कै पटतरे, देबे कौं कुछ नाँहि।
क्या ले गुर संतोषिए, हौंस रही मन माँहि॥ ४॥

सतगुरु के सदकै करूँ, दिल अपणी का साछ।
कलियुग हम स्यूँ लड़ि पड्या मुहकम मेरा बाछ॥ ५॥

सतगुर लई कमाँण करि, बाँहण लागा तीर।
एक जु बाह्या प्रीति सूँ, भीतरि रह्या सरीर॥ ६॥

सतगुरु साँचा सूरिवाँ, सबद जु बाह्या एक।
लागत ही में मिलि गया, पड्या कलेजै छेक॥ ७॥

सतगुरु मारचा बाण भरि, धरि करि सूधी मूठि।
अगि उघाड़ैं लागिया, गई दवा सूँ फूंटि॥ ८॥

हँसै न बोलै उनमनी, चंचल मेल्ह्या मारि।
कहै कबीर भीतरि भिद्या, सतगुर कै हथियार॥ ९॥

---

(२) क-ख—देवता के आगे 'कया' पाठ है जो अनावश्यक है।
(५) ख-सदकै करौं। ख-साच। तुक मिलाने के लिये 'साछ' 'साक्ष' लिखा है।

गूँगा हूवा बावला, वहरा हूआ कान ।
पाऊँ थैं पगुल भया, सतगुर मारचा बाण ॥ १० ॥

पीछैं लागा जाइ था, लोक वेद के साथि ।
आगैं थैं सतगुर मिल्या, दीपक दीया हाथि ॥ ११ ॥

दीपक दीया तेल भरि, वाती दई अघट्ट ।
पूरा किया विसाहुणाँ, वहुरि न आँवौ हट्ट ॥ १२ ॥

ग्यान प्रकास्या गुर मिल्या, सो जिनि वीसरि जाइ ।
जब गोंविद कृपा करी, तव गुर मिलिया आइ ॥ १३ ॥

कबीर गुर गरवा मिल्या, रलि गया आटैं लूँण ।
जाति पाँति कुल सब मिटे, नाँव धरौगे कौण ॥ १४ ॥

जाका गुर भी अधला, चेला खरा निरध ।
अधा अधा ठेलिया, दून्यूँ कूप पड़त ॥ १५ ॥

नाँ गुर मिल्या न सिष भया, लालच खेल्या डाव ।
दुन्यूँ बूडे धार मैं, चढि पाथर की नाव ॥ १६ ॥

चौंसठि दीवा जोइ करि, चौदह चदा माँहि ।
तिहिं घरि किसकौ चानिणौ जिहि घरि गोंविद नाँहि ॥ १७ ॥

निस अँधियारी कारणैं, चौरासी लख चद ।
अति आतुर ऊदै किया, तऊ दिष्टि नहिं मद ॥ १८ ॥

भली भई जु गुर मिल्या, नही तर होती हाँणि ।
दीपक दिष्टि पतग ज्यूँ, पडता पूरी जाँणि ॥ १९ ॥

माया दीपक नर पतँग, भ्रमि भ्रमि इवैं पडत ।
कहै कबीर गुर ग्यान थैं, एक आध उवरत ॥ २० ॥

सतगुरु वपुरा क्या करै, जे सिपही माँहै चूक ।
भावैं त्यूँ प्रमोधि लै, ज्यूँ वसि वजाई फूक ॥ २१ ॥

ससै खाया सकल जुग, ससा किनहुँ न खद्ध ।
जे वेधे गुर अष्पिरा, तिनि ससा चुणि चुणि खद्ध ॥ २२ ॥

चेतनि चौकी वैसि करि, सतगुर दीन्हाँ धीर ।
निरभै होइ निसक भजि, केवल कहै कबीर ॥ २३ ॥

---

(१२) क—ख—अघट, हट ।
(१३) क—गोव्यद ।
(१५) क—चेला हैजा चद (? है गा अघ) ।
(१७) ख—चाँरिणौं । ख—तिहि...जिहि ।
(२१) ख—प्रमोधिए । जाँणे वास जनाई कूद ।
(२२) ख—सैल जुग ।

सतगुर मिल्या त का भया, जे मनि पाड़ी भोल ।
पासि विनंठा कप्पड़ा, क्या करै विचारी चोल ॥ २४ ॥

बूडे थे परि ऊबरे, गुर की लहरि चमकि ।
भेरा देख्या जरजरा, (तब) ऊतरि पड़े फरंकि ॥ २५ ॥

गुरू गोविंद तौ एक है, दूजा यहु आकार ।
आपा मेट जीवत मरै, तो पावै करतार ॥ २६ ॥

कबीर सतगुर नाँ मिल्या, रही अधूरी सीष ।
स्वाँग जती का पहरि करि, घरि घरि माँगै भीप ॥ २७ ॥

सतगुर साँचा सूरिवाँ, तातैं लोहि लुहार ।
कसणी दे कंचन किया, ताइ लिया ततसार ॥ २८ ॥

थापणि पाई थिति भई, सतगुर दीन्ही धीर ।
कबीर हीरा बणजिया, मानसरोवर तीर ॥ २९ ॥

निहचल निधि मिलाइ तत, सतगुर साहस धीर ।
निपजी मैं साझी घणाँ, बाँटै नहीं कबीर ॥ ३० ॥

चौपड़ि माँडी चौहटै, अरध उरध बाजार ।
कहै कबीरा राम जन, खेलौ संत विचार ॥ ३१ ॥

पासा पकड़या प्रेम का, सारी किया सरीर ।
सतगुर दाव बताइया, खेलै दास कबीर ॥ ३२ ॥

सतगुर हम सूँ रीझि करि, एक कह्या प्रसंग ।
बरस्या बादल प्रेम का भीजि गया सब अंग ॥ ३३ ॥

कबीर बादल प्रेम का, हम परि बरष्या आइ ।
अंतरि भीगी आत्माँ, हरी भई बनराइ ॥ ३४ ॥

---

(२५) ख—जाजरा ।

इस दोहे के आगे ख प्रति मे यह दोहा है—

कबीर सब जग यो भ्रम्या फिरै ज्यूँ रामे का रोज ।
सतगुर थैं सोधी भई, तब पाया हरि का षोज ॥ २७ ॥

(२७) इसके आगे ख प्रति मे यह दोहा है—

कबीर सतगुर ना मिल्या, सुणी अधूरी सीष ।
मूंड मूडावै मुकति कूँ, चालि न सकई वीप ॥ २६ ॥

(२८) ख—सतगुर मेरा सूरिवाँ ।

(२९) इसके आगे ख प्रति मे यह दोहा है—

कबीर हीरा बणजिया हिरदे उकठी खाणि ।
पारब्रह्म क्रिपा करी सतगुर भये सुजांण ॥

पूरे मूँ परचा भया, सब दुख मेल्या दूरि ।
निर्मल कीन्ही आत्माँ ताथैं सदा हजूरि ॥ ३५ ॥

(२) सुमिरण कौ अंग

कबीर कहता जात हूँ, सुणता है सब कोइ ।
राम कहे भला होइगा, नहि तर भला न होइ ॥ १ ॥
कबीर कहै मैं कथि गया, कथि गया ब्रह्म महेस ।
राम नाँव ततसार है, सब काहू उपदेस ॥ २ ॥
तत तिलक तिहूँ लोक मैं राम नाँव निज सार ।
जन कबीर मस्तक दिया सोभा अधिक अपार ॥ ३ ॥
भगति भजन हरि नाँव है, दूजा दुक्ख अपार ।
मनसा वाचा क्रमनाँ, कबीर सुमिरण सार ॥ ४ ॥
कबीर सुमिरण सार है, और सकल जजाल ।
आदि अति सब सोधिया, दूजा देखौं काल ॥ ५ ॥
च्यता तौ हरि नाँव की, और न चिता दास ।
जे कुछ चितवैं राम बिन, सोइ काल कौ पास ॥ ६ ॥
पच सँगी पिव पिव करैं, छटा जु सुमिसे मन ।
आई सूति कबीर की पाया, राम रतन ॥ ७ ॥
मेरा मन सुमिरै राम कूँ, मेरा मन रामहि आहि ।
अब मन रामहि ह्वै रह्या, सीस नवावौं काहि ॥ ८ ॥
तूँ तूँ करता तूँ भया, मुझ मैं रही न हूँ ।
वारी फेरी बलि गई, जित देखो तित तूँ ॥ ९ ॥
कबीर निरभै राम जपि, जब लग दीवै बाति ।
तेल घटया बाती बुझी, (तब) सोवैगा दिन राति ॥ १० ॥
कबीर सूता क्या करै, जागि न जपै मुरारि ।
एक दिनाँ भी सोवणाँ, लबे पाँव पसारि ॥ ११ ॥
कबीर सूता क्या करै, काहे न देखै जागि ।
जाका सँग तैं बीछुड्या, ताही के सँग लागि ॥ १२ ॥
कबीर सूता क्या करै, उठि न रोवै दुक्ख ।
जाका वासा गोर मैं, सो क्यूँ सोवै सुक्ख ॥ १३ ॥

---

(३४) ख—मे नहीं है ।
(३) ख—मे नही है ।

कबीर सूता क्या करै, गुण गोविंद के गाइ।
तेरे सिर परि जम खड़ा, खरच कदे का खाइ॥ १४॥

कबीर सूता क्या करे, सूताँ होइ अकाज।
ब्रह्मा का आसण खिस्या, सुणत काल की गाज॥ १५॥

केसौ कहि कहि कूकिये नाँ सोइयै असरार।
राति दिवस कै कूकणौ, (मत) कबहूँ लगै पुकार॥ १६॥

जिहि घटि प्रीति न प्रेम रस, फुनि रसना नही राम।
ते नर इस ससार मे, उपजि षये बेकाम॥ १७॥

कबीर प्रेम न चाषिया, चषि न लीया साव।
सूने घर का पाहुणाँ, ज्यूँ आया त्यूँ जाव॥ १८॥

पहली बुरा कमाइ करि, बाँधी विष की पोट।
कोटि करम फिल पलक मैं, (जब) आया हरि की वोट॥ १९॥

कोटि क्रम पेलै पलक मैं, जे रंचक आवै नाउँ।
अनेक जुग जे पुन्नि करै, नही राम बिन ठाउँ॥ २०॥

जिहि हरि जैसा जाणियाँ, तिन कूँ तैसा लाभ।
ओसो प्यास न भाजई, जब लग धसै न आभ॥ २१॥

राम पियारा छाड़ि करि, करै आन का जाप।
बेस्वाँ केरा पूत ज्यूँ, कहै कौन सूँ बाप॥ २२॥

कबीर आपण राम कहि, औराँ राम कहाइ।
जिहि मुखि राम न उचरे, तिहि मुख फेरि कहाइ॥ २३॥

जैसें माया मन रमे, यूँ जे राम रमाइ।
(तौ) तारा मंडल छाँड़ि करि, जहाँ के सो तहाँ जाइ॥२४॥

लूटि सकै तौ लूटियौ, राम नाम है लूटि।
पीछैं ही पछिताहुगे, यहु तन जैहै छूटि॥ २५॥

लूटि सकै तौ लूटियौ, राम नाम भडार।
काल कठ तैं गहेगा, रूँधै दसूँ दुवार॥ २६॥

लबा मारग दूरि घर, विकट पंथ बहु मार।
कहौ संतौ क्यूँ पाइये, दुर्लभ हरिदीदार॥ २७॥

गुण गाये गुण ना कटै, रटै न राम बिवोग।
अह निसि हरि ध्यावै नही, क्यूँ पावै द्रुलभ जोग॥ २८॥

---

(१६) ख—मे नही है।
(१७) क—आइ संसार में।
(२३) ख—जा मुष, ता मुष।

कबीर कठिनाई खरी, सुमिरतां हरि नाम ।
सूली ऊपरि नट विद्या, गिरूँ त नाहीं ठाम ॥ २९ ॥

कबीर राम ध्याइ लै, जिभ्या सौं करि मंत ।
हरि सागर जिनि बीसरै, छीलर देखि अनंत ॥ ३० ॥

कबीर राम रिझाइ लै, मुखि अमृत गुण गाइ ।
फूटा नग ज्यूँ जोडि मन, संधे संधि मिलाइ ॥ ३१ ॥

कबीर चित्त चमंकिया, चहुँ दिसि लागी लाइ ।
हरि सुमिरण हाथूँ घडा, बेगे लेहु बुझाइ ॥ ३२ ॥ ६७ ॥

---

(३) बिरह कौ अंग

रात्यूँ रूनी बिरहनी, ज्यूँ बंचौ कूँ कुंज ।
कबीर अंतर प्रजल्या, प्रगट्या बिरहा पुंज ॥ १ ॥

अंबर कुंजाँ कुरलियाँ, गरजि भरे सब ताल ।
जिनि थै गोविंद बीछुटे, तिनके कौण हवाल ॥ २ ॥

चकवी बिछुटी रैणि की, आइ मिली परभाति ।
जे जन बिछुटे राम सूँ, ते दिन मिले न राति ॥ ३ ॥

बासुरि सुख नाँ रैणि सुख, ना सुख सुपिनै माँह ।
कबीर बिछुट्या राम सूं नाँ सुख धूप न छाँह ॥ ४ ॥

बिरहनि ऊभी पंथ सिरि, पंथी बूझै धाइ ।
एक सबद कहि पीव का, कब रे मिलैंगे आइ ॥ ५ ॥

बहुत दिनन की जोवती, बाट तुम्हारी राम ।
जिव तरसै तुझ मिलन कूँ मनि नाहीं विश्राम ॥ ६ ॥

बिरहिन ऊठै भी पडे, दरसन कारनि राम ।
मूवाँ पीछैं देहुगे, सो दरसन किहिं काम ॥ ७ ॥

मूवाँ पीछैं जिनि मिलै, कहै कबीरा राम ।
पाथर घाटा लोह सब, (तब) पारस कौणे काम ॥ ८ ॥

अंदेसड़ा न भाजिसी, संदेसौ कहियाँ ।
कै हरि आयाँ भाजिसी, कै हरि ही पासि गयाँ ॥ ९ ॥

आइ न सकौं तुझ पैं, सकूँ न तुझ बुझाइ ।
जियरा यौंही लेहुगे, बिरह तपाइ तपाइ ॥ १० ॥

यहु तन जालौं मसि करूँ, ज्यूं धूवाँ जाइ सरग्गि ।
मति वै राम दया करैं, बरसि बुझावै अग्गि ॥ ११ ॥

यहु तन जालौं मसि करौं, लिखौं राम का नाउँ ।
लेखणिं करूँ करक की, लिखि लिखि राम पठाउँ ॥ १२ ॥

कबीर पीर पिरावनी, पजर पीड़ न जाइ।
एक ज पीड परीति की, रही कलेजा छाइ॥ १३॥

चोट सताँणी बिरह की, सब तन जरजर होइ।
मारणहारा जाँणिहै, कै जिहि लागी सोइ॥ १४॥

कर कमाण सर साँधि करि, खैचि जु मारया माँहि।
भीतरि भिद्या सुमार ह्वै, जीवै कि जीवै नाँहि॥ १५॥

जबहूँ मारया खैचि करि, तब मैं पाई जाँणि।
लागी चोट मरम्म की, गई कलेजा छाँणि॥ १६॥

जिहि सरि मारी काल्हि, सो सर मेरे मन बस्या।
तिहि सरि अजहूँ मारि, सर बिन सच पाऊँ नही॥ १६॥

बिरह भुवगम तन बसै, मंत्र न लागै कोइ।
राम बियोगी ना जिवै, जिवै त बीरा होइ॥ १८॥

बिरह भुवगम पैसि करि, किया कलेजै घाव।
साधू अंग न मोडही, ज्यूँ भावै त्यूँ खाव॥ १९॥

सब रग तंत रबाब तन, बिरह बजावै नित्त।
और न कोई सुणि सकै, कै साई कै चित्त॥ २०॥

बिरहा बुरहा जिनि कहौ, बिरहा है सुलितान।
जिह घटि बिरह न संचरै, सो घट सदा मसान॥ २१॥

अपडियाँ झाईं पडी, पथ निहारि निहारि।
जीभड़ियाँ छाला पड्या, राम पुकारि पुकारि॥ २२॥

इस तन का दीवा करौ, बाती मेल्यूँ जीव।
लोही सींचौ तेल ज्यूँ, कब मुख देखौं पीव॥ २३॥

नैंना नीझर लाइया, रहट बहै निस जाम।
पपीहा ज्यूँ पिव पिव करौ, कबरु मिलहुगे राम॥ २४॥

अंपडियाँ प्रेम कसाइयाँ, लोग जाँणै दुखड़ियाँ।
साँई अपणै कारणै, रोइ रोइ रतड़ियाँ॥ २५॥

सोई आँसू सजणाँ, सोई लोक बिड़ाँहि।
जे लोइण लोहीं चुवै, तौ जाँणो हेत हियाँहि॥ २६॥

कबीर हसणाँ दूरि करि, करि रोवण सौ चित्त।
बिन रोवाँ क्यूँ पाइये, प्रेम पियारा मित्त॥ २७॥

जौ रोऊ तो बल घटै, हँसौ तौ राम रिसाइ।
मनही माँहि बिसूरणाँ, ज्यूँ घुँण काठहि खाइ॥ २८॥

हँसि हँसि कंत न पाइए, जिनि पाया तिनि रोइ।
जो हाँसेंही हरि मिलै, तौ नहीं दुहागनि कोइ॥ २९॥

हाँसी खेलौं हरि मिलै, कौंण सहै परसान।
काम क्रोध त्रिष्णाँ तजै, ताहि मिलै भगवान ॥ ३० ॥

पूत पियारो पिता कौं, गौंहनि लागा धाइ।
लोभ मिठाई हाथि दे, आपण गया भुलाइ ॥ ३१ ॥

डारी खाँड पटकि करि, अंतरि रोस उपाइ।
रोवत रोवत मिलि गया, पिता पियारे जाइ ॥ ३२ ॥

नैंनाँ अंतरि आंचरूँ, निस दिन निरषौं तोहि।
कब हरि दरसन देहुगे, सो दिन आवै मोहि ॥ ३३ ॥

कबीर देखत दिन गया, निस भी देखत जाइ।
विरहणि पिव पावै नही, जियरा तलपै माइ ॥ ३४ ॥

कै विरहनि कूँ मीच दे, कै आपा दिखलाइ।
आठ पहर का दाझणाँ, मोपै सह्या न जाइ ॥ ३५ ॥

विरहणि थी तौ क्यूँ रही, जली न पीव के नालि।
रहु रहु मुगध गहेलड़ी, प्रेम न लाजूं मारि ॥ ३६ ॥

हौं विरहा की लाकडी, समझि समझि धूंधाउँ।
छूटि पड़ौं यो विरह ते, जे सारीही जलि जाउँ ॥ ३७ ॥

कबीर तन मन यौं जल्या, विरह अगनि सूँ लागि।
मृतक पीड न जाँणई, जाणैगी यहु आगि ॥ ३८ ॥

विरह जलाई मैं जलौं, जलती जल हरि जाउँ।
मो देख्याँ जल हरि जलै, सतौ कहाँ बुझाउँ ॥ ३९ ॥

परवति परवति मैं फिरया, नैन गवाये रोइ।
सो बूटी पाऊँ नही, जातैं जीवनि होइ ॥ ४० ॥

फाडि पुटोला धज करौं, कामलड़ी पहिराउँ।
जिहि जिहि भेषा हरि मिलै, सोइ सोइ भेष कराउँ ॥ ४१ ॥

नैन हमारे जलि गये, छिन छिन लोड़ै तुझ।
नाँ तूँ मिलै न मैं खुसी, ऐसी वेदन मुझ ॥ ४२ ॥

भेला पाया श्रम सौ भौसागर के माँह।
जे छाँडौ तौ डूबिहौं, गहौ त डसिये बाँह ॥ ४३ ॥

---

(३२) ख—मे इसके अनतर यह दोहा है—

मो चित तिलाँ न वीसरौ, तुम्ह हरि दूरि थँयाह।
इहि अगि औलू भाइ जिसी, जदि तदि तुम्ह म्यलियाँह ॥

(४३) ख—मे इसके आगे यह दोहा है—

विरह जलाई मै जलौं, मो विरहिन कै दूष।
छाँह न वैसो डरपती, मति जलि ऊठे रूप ॥ ४६ ॥

रैणा दूर विछोहिया, रहु रे संषम झूरि।
देवलि देवलि धाहड़ी, देसी ऊगे सूरि ॥४४॥
सुखिया सब ससार है खायै अरू सोवै।
दुखिया दास कबीर है, जागै अरू रोवै ॥४५॥ ११२॥

(४) ग्यान बिरह कौ अंग

दीपक पावक आँणिया, तेल भी आँण्या सग।
तीन्यूँ मिलि करि जोइया, (तब) उडि उडि पडै पतग ॥ १ ॥

मारचा है जे मरैगा, विन सर थोथी भालि।
पड्या पुकारै व्रिछ तरि, आजि मरै कै काल्हि ॥ २ ॥

हिरदा भीतरि दौ बलै, धूँवाँ प्रगट न होइ।
जाकै लागी सो लखै, कै जिहि लाई सोइ ॥ ३ ॥

झल ऊठी झोली जली, खपरा फूटिम फूटि।
जोगी था सो रमि गया, आसणि रही विभूति ॥४॥

अगनि जू लागि नीर मैं, कदू जलिया झारि।
उतर दषिण के पंडिता, रहे विचारि विचारि ॥ ५ ॥

दौ लागी साइर जल्या, पंषी वैठे आइ।
दाधी देह न पालवै, सतगुर गया लगाइ ॥ ६ ॥

गुर दाधा चेला जल्या, विरहा लागी आगि।
तिणका वपुडा ऊबरचा, गलि पूरे कै लागि ॥ ७ ॥

आहेड़ी दौ लाइया, मृग पुकारे रोइ।
जा वन मे क्रीड़ा करी, दाझत है वन सोइ ॥ ८ ॥

पाणी माँहै प्रजली, भई अप्रबल आगि।
बहती सलिता रहि गई, मंछ रहे जल त्यागि ॥ ९ ॥

समदर लागी आगि, नदियाँ जलि कोइला भई।
देखि कबीरा जागि, मछी रूषाँ चढि गई ॥ १० ॥१२२॥

(५) परचा को अंग

कबीर तेज अनत का मानौ ऊगी सूरज सेणि।
पति सँगि जागी सुदरी, कौतिग दीठा तेणि ॥ १ ॥

(९) ख—कवल जो फूला फूल विन
(१०) ख—मे इसके आगे यह दोहा है—

विरहा कहै कबीर कौ तू जनि छांड़े मोहि।
पारब्रह्म के तेज मैं, तहाँ ले राखौ तोहि ॥

कौतिग दीठा देह बिन, रवि ससि बिना उजास।
साहिब सेवा माँहि है, बेपरवाँही दास ॥ २ ॥

पारब्रह्म के तेज का, कैसा है उनमान।
कहिबे कूँ सोभा नहीं, देख्या ही परवान ॥ ३ ॥

अगम अगोचर गमि नहीं, तहाँ जगमगै जोति।
जहाँ कबीरा बंदिगी, (तहाँ) पाप पुन्य नहीं छोति ॥ ४ ॥

हदे छाड़ि बेहदि गया, हूवा निरंतर बास।
कवल ज फूल्या फूल बिन, को निरषै निज दास ॥ ५ ॥

कबीर मन मधुकर भया, रह्या निरंतर बास।
कवल ज फूल्या जलह बिन, को देखै निज दास ॥ ६ ॥

अंतरि कवल प्रकासिया, ब्रह्म बास तहाँ होइ।
मन भवरा तहाँ लुबधिया, जाँणैगा जन कोइ ॥ ७ ॥

सायर नाहीं सीप बिन, स्वाति बूँद भी नाँहि।
कबीर मोती नीपजै, सुन्नि सिषर गढ़ माँहि ॥ ८ ॥

घट माँहै औघट लह्या, औघट माँहै घाट।
कहि कबीर परचा भया, गुरू दिखाई बाट ॥ ९ ॥

सूर समाँणाँ चंद मैं, दहूँ किया घर एक।
मनका च्यंता तब भया, कछू पुरबला लेख ॥ १० ॥

हद छाड़ि बेहद गया, किया सुन्नि असनान।
मुनि जन महल न पावई, तहाँ किया बिश्राम ॥ ११ ॥

देखौ कर्म कबीर का, कछू पुरब जनम का लेख।
जाका महल न मुनि लहैं, सो दोसत किया अलेख ॥ १२ ॥

पिंजर प्रेम प्रकासिया, जाग्या जोग अनंत।
संसा खूटा सुख भया, मिल्या पियारा कंत ॥ १३ ॥

प्यंजर प्रेम प्रकासिया, अंतरि भया उजास।
मुख कस्तूरी महमही, बाँणी फूटी बास ॥ १४ ॥

मन लागा उनमन्न सौं, गगन पहूँचा जाइ।
देख्या चंद्रबिहूँणाँ चाँदिणाँ, तहाँ अलख निरंजन राइ ॥ १५ ॥

मन लागा उनमन्न सौं, उनमन मनहि बिलग।
लूँण बिलगा पाँणियाँ, पाँणी लूँण बिलग ॥ १६ ॥

पाँणी ही तैं हिम भया, हिम ह्वै गया बिलाइ।
जो कुछ था सोई भया, अब कछू कह्या न जाइ ॥ १७ ॥

---

(९) क—औघट पाया।

भली भई जु भै पड्या, गई दसा सब भूलि ।
पाला गलि पाँणी भया, ढुलि मिलिया उस कूलि ॥ १८ ॥
चौहटै च्यतामंणि चढी, हाडी मारत हाथि ।
मीरां मुझसूं मिहर करि, इब मिलौं न काहू साथि ॥ १९ ॥
पंषि उडाणी गगन कूँ, प्यड रह्या परदेस ।
पांणी पीया चंच बिन, भूलि गया यहु देस ॥ २० ॥
पषि उडांनी गगन कूँ, उड़ी चढी असमान ।
जिहि सर मडल भेदिया, सो सर लागा कान ॥ २१ ॥
सुरति समांणी निरति मैं, निरति रही निरधार ।
सुरति निरति परचा भया, तब खूले स्यंभ दुवार ॥ २२ ॥
सुरति समांणी निरति मैं, अजपा मांहै जाप ।
लेख समांणां अलेख मैं, यूँ आपा मांहै आप ॥ २३ ॥
आया था संसार मे, देषण कौं बहु रूप ।
कहै कबीरा संत हौं, पडि गया नजरि अनूप ॥ २४ ॥
अंक भरे भरि भेटिया, मन मैं नांही धीर ।
कहै कबीर ते क्यूँ मिलैं, जब लग दोइ सरीर ॥ २५ ॥
सचु पाया सुख ऊपनां अरु दिल दरिया पूरि ।
सकल पाप सहजै गये, जब सांई मिल्या हजूरि ॥ २६ ॥
धरती गगन पवन नहीं होता, नहीं तोया, नहीं तारा ।
तब हरि हरि के जन होते, कहै कबीर विचारा ॥ २७ ॥
जा दिन कृतमना हुता, होता हट न पट ।
हुता कबीरा राम जन, जिनि देखै औघट घट ॥ २८ ॥
थिति पाई मन थिर भया, सतगुर करी सहाइ ।
अनिन कथा तनि आचरी, हिरदै त्रिभुवन राइ ॥ २९ ॥
हरि संगति सीतल भया, मिटा मोह की ताप ।
निसवासुरि सुख निध्य लह्या, जब अंतरि प्रकट्या आप ॥३०॥
तन भीतरि मन मानियाँ, बाहरि कहा न जाइ ।
ज्वाला तैं फिरि जल भया, बुझी बलंती लाइ ॥ ३१ ॥
तत पाया तन बीसरचा, जब मनि धरिया ध्यान ।
तपनि गई सीतल भया, जब सुनि किया असनान ॥ ३२ ॥

(२६) ख—सकल अघ ।

जिनि पाया तिनि सू गहगह्या, रसनाँ लागी स्वादि ।
रतन निराला पाईया, जगत ढंढोल्या बादि ॥ ३३ ॥
कबीर दिल स्याबति भया, पाया फल सम्रथ्थ ।
सायर माँहि ढंढोलताँ, हीरैं पड़ि गया हथ्थ ॥ ३४ ॥
जब मैं था तब हरि नहीं, अब हरि है मैं नाँहि ।
सब अँधियारा मिटि गया, जब दीपक देख्या माँहि ॥ ३५ ॥
जा कारणि मैं ढूंढता, सनमुख मिलिया आइ ।
धन मैली पिव ऊजला, लागि न सकौं पाइ ॥ ३६ ॥
जा कारणि मैं जाइ था, सोई पाई ठौर ।
सोई फिरि आपण भया, जासूँ कहता और ॥ ३७ ॥
कबीर देख्या एक अंग, महिमा कही न जाइ ।
तेज पुंज पारस धणीं, नैंनूं रह्या समाइ ॥ ३८ ॥
मानसरोवर सुभर जल, हंसा केलि कराहिं ।
मुकताहल मुकता चुगैं अब उडि अनत न जाँहि ॥ ३९ ॥
गगन गरजि अमृत चवै, कदली कवल प्रकास ।
तहाँ कबीरा बंदिगी, कै कोई निज दास ॥ ४० ॥
नींव बिहूँणाँ देहुरा, देह बिहूँणाँ देव ।
कबीर तहाँ बिलंबिया, करे अलप की सेव ॥ ४१ ॥
देवल माँहैं देहुरी, तिल जेहै बिसतार ।
माँहे पाती माँहि जल, माँहै पूजणहार ॥ ४२ ॥
कबीर कवल प्रकासिया, ऊग्या निर्मल सूर ।
निस अँधियारी मिटि गई, बाजे अनहद तूर ॥ ४३ ॥
अनहद बाजै नीझर झरै, उपजै ब्रह्म गियान ।
अविगति अंतरि प्रगटै, लागै प्रेम धियान ॥ ४४ ॥
आकासे मुखि औंधा कूवाँ, पाताले पनिहारि ।
ताका पाँणी को हंसा पीवै, बिरला आदि बिचारि ॥ ४५ ॥
सिव सकती दिसि कौंण जु जोवै, पछिम दिसा उठै धूरि ।
जल मैं स्यंघ जु घर करै, मछली चढै खजूरि ॥ ४६ ॥
अमृत बरिसै हीरा निपजै, घटा पड़ै टकसाल ।
कबीर जुलाहा भया पारषू, अनभै उतरया पार ॥ ४७ ॥
ममिता मेरा क्या करै, प्रेम उघाडी पौलि ।
दरसन भया दयाल का, सूल भई सुख सौड़ि ॥४८॥ १७०॥

(६) रस कौ अंग

कबीर हरि रस यौं पिया बाकी रही न थाकि ।
पाका कलस कुँभार का, बहुरि न चढई चाकि ॥ १ ॥

राम रसाइन प्रेम रस पीवत अधिक रसाल ।
कबीर पीवण दुलभ है, माँगै सीस कलाल ॥ २ ॥

कबीर भाठी कलाल की, बहुतक बैठे आइ ।
सिर सौंपै सोई पिवै, नही तौ पिया न जाइ ॥ ३ ॥

हरि रस पीया जाँणिये, जे कबहूँ न जाइ खुमार ।
मैंमंता घूँमत रहै, नाँही तन की सार ॥ ४ ॥

मैंमंता तिण नाँ चरै, सालै चिता सनेह ।
वारि जु बाँध्या प्रेम कै, डारि रह्या सिरि षेह ॥ ५ ॥

मैंमता अविगत रता, अकलप आसा जीति ।
राम अमलि माता रहै, जीवत मुकति अतीति ॥ ६ ॥

जिहि सर घड़ा न डबता, अब मैं गल मलि मलि न्हाइ ।
देवल बूड़ा कलस सूँ, पषि तिसाई जाइ ॥ ७ ॥

सबै रसाँइण मै किया, हरि सा और न कोइ ।
तिल इक घट मै सचरै, तौ सब तन कंचन होइ ॥ ८ ॥ १६८ ॥

—:०:—

(७) लाँबि कौ अंग

कया कमंडल भरि लिया, उज्जल निर्मल नीर ।
तन मन जोबन भरि पिया, प्यास न मिटी सरीर ॥ १ ॥

मन उलट्या दरिया मिल्या, लागा मलि मलि न्हाँन ।
थाहत थाह न आवई, तूँ पूरा रहिमाँन ॥ २ ॥

हेरत हेरत हे सखी, रह्या कबीर हिराइ ।
बूँद समानी समद मैं, सो कत हेरी जाइ ॥ ३ ॥

हेरत हेरत हे सखी, रह्या कबीर हिराइ ।
समंद समाना बूँद मैं, सो कत हेर्या जाइ ॥ ४ ॥ १७२ ॥

—:०:—

(८) जर्णा कौ अंग

भारी कहौं त बहु डरौं, हलका कहूँ तौ झूठ ।
मैं का जाँणौं राम कूँ, नैनूँ कबहूँ न दीठ ॥ १ ॥

(६.८) ख—रिचक घट मैं संचरे ।
(८.१) क—हलवा कहूँ ।

दीठा है तो कस कहूँ, कह्या न को पतियाइ ।
हरि जैसा है तैसा रहो, तूँ हरिषि हरषि गुण गाइ ॥ २ ॥

ऐसा अद्‌भुत जिनि कथै, अद्‌भुत राखि लुकाइ ।
वेद कुरानौ गमि नही कह्याँ न को पतियाइ ॥ ३ ॥

करता की गति अगम है, तूं चलि अपणै उनमान ।
धीरैं धीरैं पाव दे, पहुँचैगे परवान ॥ ४ ॥

पहुँचैंगे तब कहैंगे, अमडैंगे उस ठाँइ ।
अजहूँ बेरा समंद मैं, बोलि बिगूचैं काँइ ॥ ५ ॥१७७॥

(९) हैरान कौ अंग

पडित सेती कहि रहे कह्या न मानै कोइ ।
ओ अगाध एका कहै, भारी अचिरज होइ ॥ १ ॥

बसे अपडी पड मैं, ता गति लषै न कोइ ।
कहै कबीरा सत हो, वडा अचंभा मोहि ॥ २ ॥ १७९॥

(१०) लै कौ अंग

जिहि वन सीह न सचरै, पषि उड़ै नहि जाइ ।
रैंनि दिवस का गमि नही, तहाँ कबीर रह्या ल्यौ लाइ ॥ १ ॥

सुरति ढीकुला ले जल्यौ, मन नित ढोलन हार ।
कवल कुवाँ मै प्रेम रस, पीवै बारबार ॥ २ ॥

गंग जमुन उर अंतरै, सहज सुनि ल्यौ घाट ।
तहाँ कबीरैं मठ रच्या, मुनि जन जोवैं वाट ॥ ३ ॥ १८२ ॥

(११) निहकर्मी पतिब्रता कौ अंग

कबीर प्रीतड़ी तौ तुझ सौं, बहु गुणियाले कत ।
जे हँसि बोलौ और सौं तौ नील रँगाऊँ दत ॥ १ ॥

नैनाँ अतरि आव तूँ, ज्यूँ हौ नैन झँपेउँ ।
नाँ हौ देखौ और कूँ, नाँ तुझ देखन देऊँ ॥ २ ॥

मेरा मुझ मे कुछ नही, जो कुछ है सो तेरा ।
तेरा तुझकौं सौंपता, क्या लागै मेरा ॥ ३ ॥

कबीर रेख स्यदूर की, काजल दिया न जाइ ।
नैंनूं रमइया रमि रह्या, दूजा कहाँ समाइ ॥ ४ ॥

(१०—२) ख—मन चित ।

कबीर सीप समंद की, रटै पियास पियास।
समदहि तिणका बरि गिणै स्वाँति बूंद की आस॥ ५ ॥

कबीर सुख कौ जाइ था, आगै आया दुख।
जाहि सुख घरि आपणैं, हम जाणौं अरु दुख॥ ६ ॥

दो जग तौ हम अंगिया, यहु डर नाहीं मुझ।
भिस्त न मेरे चाहिये, बाझ पियारे तुझ॥ ७ ॥

जे वो एकै जाँणियाँ, तौ जाँण्या सब जाँण।
जे वो एक न जाँणियाँ, तो सबही जाँण अजाँण॥ ८ ॥

कबीर एक न जाँणियाँ, तौ बहु जाँण्याँ क्या होइ।
एक तैं सब होत है, सब तैं एक न होइ॥ ९ ॥

जब लग भगति सकाँमता, तब लग निर्फल सेव।
कहै कबीर वै क्यूं मिलै, निहकामी निज देव॥ १० ॥

आसा एक जु राम की, दूजी आस निरास।
पाँणी माँहै घर करै, ते भी मरै पियास॥ ११ ॥

जे मन लागै एक सूं, तौ निरवाल्या जाइ।
तूरा दुइ मुखि बाजणाँ, न्याइ तमाचे खाइ॥ १२ ॥

कबीर कलिजुग आइ करि, कीये बहुतज मीत।
जिन दिल बधी एक सूं, ते सुखु सोवैं नचींत॥ १३ ॥

कबीर कूता राम का, मुतिया मेरा नाउँ।
गलै राम की जेवड़ी, जित खैंचे तित जाउँ॥ १४ ॥

तो तो करै त बाहुड़ो, दुरि दुरि करै तो जाउँ।
ज्यूं हरि राखै त्यूं रहौं, जो देवै सो खाउँ॥ १५ ॥

मन प्रतीति न प्रेम रस, नाँ इस तन मैं ढंग।
क्या जाणौं उस पीव सूं, कैसैं रहसी रंग॥ १६ ॥

उस सम्रथ का दास हौ, कदे न होइ अकाज।
पतिव्रता नाँगी रहै, तौ उसही पुरिस कौ लाज॥ १७ ॥

घरि परमेसुर पाँहुणाँ सुणौं सनेही दास।
षट रस भोजन भगति करि, ज्यूं कदे न छाड़ै पास॥१८॥२००॥

---

(७) ख—भिमति।
(११) इसके आगे ख में ये दोहे हैं—

आसा एक ज राम की दूजी आस निवारि।
आसा फिरि फिर मारसी, ज्यूं चौपडि का सारि॥ ११ ॥
आसा एक ज राम की जुग जुग पुरवे आस।
जै पाडल क्यो रे करै, बसैंहि जु चंदन पास॥ १२ ॥

(१२) चितावणी कौ अंग

कबीर नौबति आपणी, दिन दस लेहु बजाइ।
ए पुर पटन ए गली, बहुरि न देखै आइ॥ १ ॥

जिनके नौबति बाजती, मैंगल बँधते बारि।
एकै हरि के नांव बिन, गए जन्म सब हारि॥ २ ॥

ढोल दमामा दुडबडी, सहनाई सँगि भेरि।
औसर चल्या बजाइ करि, है कोइ राखै फेरि॥ ३ ॥

सातों सबद जु बाजते, घरि घरि होते राग।
ते मंदिर खाली पडे, बैसण लागे काग॥ ४ ॥

कबीर थोड़ा जीवणाँ, माडै बहुत मडाण।
सबही ऊभा मेल्हि गया, राव रंक सुलितान॥ ५ ॥

इक दिन ऐसा होइगा, सब सूँ पडै बिछोह।
राजा राणा छत्रपति, सावधान किन होह॥ ६ ॥

कबीर पटन कारिवाँ पंच चोर दस द्वार।
जम राँणाँ गढ भेलिसी, सुमिरि लै करतार॥ ७ ॥

कबीर कहा गरबियौ, इस जीवन की आस।
केसू फूले दिवस चारि, खखर भये पलास॥ ८ ॥

कबीर कहा गरबियौ, देही देखि सुरंग।
बीछड़ियाँ मिलिबौ नहीं, ज्यूं काँचली भुवंग॥ ९ ॥

कबीर कहा गरबियौ, ऊँचे देखि अवास।
काल्हि पर्‍यूं भ्वैं लेटणाँ, ऊपरि जामै घास॥ १० ॥

कबीर कहा गरबियौ, चाँम लपेटे हड।
हैवर ऊपरि छत्र सिरि, ते भी देबा खड॥ ११ ॥

कबीर कहा गरबियौ काल गहे कर केस।
नां जाँणौं कहाँ मारिसी, कै घरि कै परदेस॥ १२ ॥

यहु ऐसा संसार है, जैसा सैंबल फूल।
दिन दस के व्यौहार कौं, झूठै रंगि न भूलि॥ १३ ॥

---

(६) ख मे इसके आगे यह दोहा है—

ऊजड खेडै ठीकरी, घड़ि घड़ि गए कुँभार।
रावण सरीखे चलि गए, लंका के सिकदार॥ ७ ॥

(७) ख—जम ··भेलसी, बोल गले गोपाल।

(१२) ख—कत मारसी।

(१३) ख मे इसके आगे ये दोहे हैं—

मौति बिसारी बावरे, अचिरज कीया कौन।
तन माटी मैं मिलि गया, ज्यूं आटे मैं लूण॥ १५ ॥

जाँमण मरण विचारि करि, कूडे कांम निवारि।
जिनि पंथू तुझ चालणाँ, सोई पंथ सँवारि ॥ १४ ॥

बिन रखवाले बाहिरा, चिड़ियैं खाया खेत।
आधा प्रधा ऊवरै, चेति सकै तौ चेति ॥ १५ ॥

हाड़ जलै ज्यूँ लाकड़ी, केस जलै ज्युँ घास।
सब तन जलता देखि करि, भया कबीर उदास ॥ १६ ॥

कबीर मंदिर ढहि पड्या, सैंट भई सैंवार।
कोई चेजारा चिणि गया, मिल्या न दूजी बार ॥ १७ ॥

कबीर देवल ढहि पड्या ईंट भई सैंवार।
करि चिजारा सौ प्रीतिड़ी, ज्यूँ ढहै न दूजी बार ॥ १८ ॥

कबीर मंदिर लाप का, जडिया हीरै लालि।
दिवस चरि का पेषणाँ, बिनस जाइगा कालिह ॥ १९ ॥

कबीर धूलि सकेलि करि, पुड़ी ज बाँधी एह।
दिवस चारि का पेषणाँ, अति षेह की षेह ॥ २० ॥

कबीर जे धंधै तौ धूलि, बिन धंधे धूलै नहीं।
तै नर बिनठे मूलि, जिनि धंधै मैं ध्याया नहीं ॥ २१ ॥

कबीर सुपनैं रैंनि कै, ऊघड़ि आये नैंन।
जीव पड़्या बहु लूटि मैं, जागै तौ लैंण न दैंण ॥ २२ ॥

(१६, १७) नंबर के दोहे 'क' प्रति में २२, २३ नंबर पर है।

आजि कि कालिह कि पचे दिन, जंगल होइगा बास।
ऊपरि ऊपरि फिरहिंगे, ढोर चरंदे घास ॥ १८ ॥

मरहिंगे मरि जाहिंगे, नाँव न लेगा कोइ।
ऊजड जाइ बसाहिंगे, छाडि बसंती लोइ ॥ १९ ॥

कबीर खेति किसाण का, म्रगौ खाया झाड़ि।
खेत बिचारा क्या करे जो खसम न करई वाड़ि ॥ २० ॥

(१६) ख में इसके आगे ये दोहे हैं—

मडा जलै लकडी जलै, जलै जलावणहार।
कौतिगहारे भी जलै, कासनि करौ पुकार ॥ २३ ॥

कबीर देवल हाड का, मारी तणा बधांण।
खड हडताँ पाया नहीं, देवल का रहनांण ॥ २४ ॥

(१७) ख—देवल ढहि।

(२०) ख—धूलि समेटि।

(२२) ख—बहु भूलि मैं।

कबीर सुपनै रैनि कै पारस जीय मै छेक ।
जे सोऊँ तो दोइ जणाँ, जे जागूँ तौ एक ॥ २३ ॥

कबीर इस ससार मे घणे मनिप मतिहीण ।
राम नाम जाँणौ नही, आये टोपा दोन ॥ २४ ॥

कहा कियौ हम आइ करि कहा करैगे जाइ ।
इत के भए न उत के चाले मूल गँवाइ ॥ २५ ॥

आया अणआया भया जे बहुरता ससार ।
पड्या भुलाँवाँ, गफिलाँ, गये कुबुधी हारि ॥ २६ ॥

कबीर हरि की भगति बिन, ध्रिग जीमण ससार ।
धूँवाँ केरा धौलहर जात न लागै वार ॥ २७ ॥

जिहि हरि की चोरी करी, गये राम गुण भूलि ।
ते बिधना वागुल रचे, रहे अरध मुखि झूलि ॥ २८ ॥

माटी मलणि कुँभार की घड़ी सहै सिरि लात ।
इहि औसरि चेत्या नही, चूका अब की घात ॥ २९ ॥

इहि औसरि चेत्या नही, पसु ज्यूँ पाली देह ।
राम नाम जाण्या नही, अति पडी मुख षेह ॥ ३० ॥

राम नाम जाण्यौ नही, लागी मोटी पोड़ि ।
काया हाँडी काठ की, ना ऊ चढै बहोड़ि ॥ ३१ ॥

राम नाम जाण्याँ नही, बात बिनठी मूलि ।
हरत इहाँ ही हारिया, परति पड़ी मुख धूलि ॥ ३२ ॥

---

(२३) इसके आगे ख मे यह दोहा है—
कबीर इहै चितावणी, जिन ससारी जाइ ।
जे पहिली सुख भोगिया, तिन का गूड ले खाइ ॥ ३० ॥

(२४) मे इसके आगे यह दोहा है—
पीपल रूनौ फूल बिन, फल बिन रूनी गाइ ।
एकाँ एकाँ माणसा, टापा दीन्हा आइ ॥ ३२ ॥

(३२) ख मे इसके आगे ये दोहे है—
राम नाम जाण्या नही, मेल्या मनहि बिसारि ।
ते नर हाली बादरी, सदा परा पराए बारि ॥ ४२ ॥
राम नाम जाण्या नही, ता मुखि आनहि आन ।
कै मूसा कै कातरा, खाता गया जनम ॥ ४३ ॥
राम नाम जाण्यौ नही हूवा बहुत अकाज ।
बूडा लौरे बापुड़ा, बड़ा बूटा की लाज ॥ ४४ ॥

राम नाम जाण्यॉं नही, पल्यो कटक कुटुंब ।
धंधा ही में मरि गया, बाहर हुई न बंब ॥ ३३ ॥

मनिषा जनम दुलभ है, देह न बारबार ।
तरवर थैं फल झड़ि पड्या, बहुरि न लागै डार ॥ ३४ ॥

कबीर हरि का भगति करि, तजि बिषिया रस चोज ।
बार बार नही पाइए, मनिषा जन्म की मौज ॥ ३५ ॥

कबीर यहु तन जात है, सकै तो ठाहर लाइ ।
कै सेवा करि साध की, कै गुण गोविंद के गाइ ॥ ३६ ॥

कबीर यह तन जात है, सकै तो लेहु बहोडि ।
नागे हाथूँ ते गए, जिनकै लाख करोडि ॥ ३७ ॥

यह तनु काचा कुंभ है, चोट चहूँ दिसि खाइ ।
एक राम के नाँव बिन, जदि तदि प्रलै जाइ ॥ ३८ ॥

यह तन काचा कुंभ है, लियाँ फिरै था साथि ।
ढबका लागा फूटि गया, कछू न आया हाथि ॥ ३९ ॥

काँची कारी जिनि करै, दिन दिन बधै बियाधि ।
राम कबीरैं रुचि भई, याही ओपदि साधि ॥ ४० ॥

कबीर अपने जीवतैं, ए दोइ बातैं धोइ ।
लोग बड़ाई कारणैं, अछता मूल न खोइ ॥ ४१ ॥

खंभा एक गइंद दोइ, क्यूँ करि बंधिसि बारि ।
मानि करै तौ पीव नही, पीव तौ मानि निवारि ॥ ४२ ॥

दीन गँवाया दुनी सौं, दुनी न चाली साथि ।
पाइ कुहाड़ा मारिया, गाफिल अपणैं हाथि ॥ ४३ ॥

यह तन तौ सब बन भया, करंम भए कुहाड़ि ।
आप आप कूँ काटिहै, कहैं कबीर विचारि ॥ ४४ ॥

---

(३५) ख में इसके आगे यह दोहा है—

पाणी ज्यौर तालाब का, दह दिसि गया बिलाइ ।
यह सब यौंही जायगा, सकै तो ठाहर लाइ ॥४८॥

(३६) ख—के गोविंद का गुण गाइ ।

(३७) ख—नागे पाऊँ ।

(३८) ख मे इसके आगे यह दोहा है—

यह तन काचा कुंभ है, माँहि किया ढिग बास ।
कबीर नैंण निहारियाँ, तौ नहो जीवण की आस ॥ ५२ ॥

कुल खोयाँ कुल ऊबरै, कुल राख्याँ कुल जाइ ।
राम निकुल कुल भेटि लै, सब कुल रह्या समाइ ॥ ४५ ॥

दुनियाँ के धोखैं मुवा, चलै जु कुल की कांणि ।
तब कुल किसका लाजसी, जब ले धरया मसांणि ॥ ४६ ॥

दुनियाँ भांडा दुख का, भरी मुहांमुह भूप ।
ग्रदया ग्रलह राम को, कुरहै ऊंणी कूप ॥ ४७ ॥

जिहि जेवड़ी जग बधिया, तूँ जिनि बँधै कबीर ।
ह्वैसी ग्राटा लूंण ज्यूँ, सोना सँवां शरीर ॥ ४८ ॥

कहत सुनत जग जात है, विषै न सूझै काल ।
कबीर प्यालै प्रेम कै, भरि भरि पिवै रसाल ॥ ४९ ॥

कबीर हद के जीव सूँ, हित करि मुखां न बोलि ।
जे लागे बेहद सूँ, तिन सूँ ग्रतर खोलि ॥ ५० ॥

कबीर केवल राम की, तूँ जिनि छाडै ग्रोट ।
घण ग्रहरणि विचि लोह ज्यूँ, घणी सहै सिर चोट ॥ ५१ ॥

कबीर केवल राम कहि, सुध गरीबी झालि ।
कूड बडाई कूडसी, भारी पडसी काल्हि ॥ ५२ ॥

काया मजन क्या करे, कपड़ धोइम धोइ ।
उजल हूवा न छूटिए, सुख नींदड़ी न सोइ ॥ ५३ ॥

उजल कपडा पहरि करि, पान सुपारी खाँहि ।
एकै हरि का नाँव बिन, बाँधे जमपुरि जाँहि ॥ ५४ ॥

तेरा सगी कोइ नहीं, सब स्वारथ बधी लोइ ।
मनि परतीति न ऊपजै, जीव बेसास न होइ ॥ ५५ ॥

---

(४६) ख—का को लाजसी ।

(४७) इसके ग्रागे ख मे यह दोहा है—

दुनियाँ कै मैं कुछ नही, मेरे दुनी ग्रकथ ।
साहिब दरि देखौ खड़ा, सब दुनियाँ दोजग जत ॥६१॥

(५०) इसके ग्रागे ख प्रति मे यह दोहा है—

कबीर सापत की सभा, तू मत बैठे जाइ ।
एकै वाडै क्यू बड़ै, रोझ गदहड़ा गाइ ॥ ६५ ॥

(५४) इसके ग्रागे ख प्रति मे यह दोहा है—

थली चरतै म्रिघ लै, बीध्या एकज सौण ।
हम तो पथी पथ सिरि, हरचा चरैगा कौण ॥ ७४ ॥

माँइ विड़ाणी वाप विड, हम भी मंझि विडाह।
दरिया केरी नाव ज्यूं: संजोगे मिलियाँह ॥ ५६ ॥

इत प्रघर उत घर, वणजण आए हाट।
करम किराँणा वेचि करि, उठि ज लागे वाट ॥ ५७ ॥

नांन्हाँ काती चित दे, महँगे मोलि विकाइ।
गाहक राजा राम है, और न नेडा आइ ॥ ५८ ॥

डागल उपरि दौड़णाँ, सुख नीदड़ी न सोइ।
पुनैं पाए द्यौहड़े, ओछी ठौर न खोइ ॥ ५९ ॥

मैं मैं वड़ी वलाइ है, सकै तो निकसी भाजि।
कव लग राखौं हे सखी, रूई पलेटी आगि ॥ ६० ॥

मैं मैं मेरी जिनि करै, मेरी मूल विनास।
मेरी पग का पैषड़ा, मेरी गल की पास ॥ ६१ ॥

कवीर नाव जरजरी, कूड़े खेवणहार।
हलके हलके तिरि गए, वूड़े तिनि सिर भार ॥१२॥२६२॥

---

(१३) मन को अंग

मन कै मतै न चालिये, छाड़ि जीव की वाँणि।
ताकू केरे सूत ज्यूं, उलटि अपूठा आँणि ॥

---

(५७) ख—एथि परिघरि उथि घरि जोवण आए हाट।

(५९) ख—पुन पाया देहडी, वोछाँ ठौर न खाइ ॥

(५९) ख मे इसके आगे यह दोहा है—

ज्यूं कोली पेताँ वुणैं, वुणताँ आवै वोड़ि।
ऐसा लेखा मीच का, कछु दौडि सके तौ दौड़ि ॥ ७६ ॥

(६१) ख मे इसके आगे ये दोहे है—

मेर तेर की जिवणी वसि वंध्या संसार।
कहाँ सुकुंणवा सुत कलित, दाझणि वारवार ॥ ७९ ॥
मेर तेर की रासडी. वलि वंध्या संसार।
दास कवीरा किमि वँधै, जाकै राम अधार ॥ ८२ ॥
कवीर नाँव जरजरी, भरी विराणै भारि।
खेवट सौ परचा नही, क्यो करि उतरै पारि ॥ ८३ ॥

(६२) ख मे इसके आगे यह दोहा है—

कवीर पगड़ा दूरि है, जिनकै विचिहै राति।
का जाणौं का होइगा, ऊगवै तै परभाति ॥ ८४ ॥

(१) ख—तेरा तार ज्यूं।

चिंता चिंति निवारिए, फिर बूझिए न कोइ ।
इद्री पसर मिटाइए, सहजि मिलैगा सोइ ॥ १ ॥
आसा का ईंधण करूँ, मनसा करूँ विभूति ।
जोगी फेरी फिल करौ, यौ विनवाॅ वै सूति ॥ ३ ॥
कबीर सेरी साँकडी, चचल मनवाँ चोर ।
गुण गावै लैलीन होइ, कछू एक मन मै और ॥ ४ ॥
कबीर मारूँ मन कूँ, टूक टूक ह्वै जाइ ।
विष की क्यारी बोइ करि, लुणत कहा पछिताइ ॥ ५ ॥
इस मन कौ विसमल करौं दीठा करौ अदीठ ।
जे सिर राखौ आपणाँ, तौ पर सिरिज अँगीठ ॥ ६ ॥
मन जाँणै सब बात, जाणत ही औगुण करै ।
काहे की कुसलात, कर दीपक कूँवै पड़ै ॥ ७ ॥
हिरदा भीतरि आरसी, मुख देपणाँ न जाइ ।
मुख तौ तौपरि देखिए, जे मन की दुविधा जाइ ॥ ८ ॥
मन दीयाँ मन पाइए, मन विन मन नहो होइ ।
मन उनमन उस अड ज्यूँ, अनल अकासाॅ जोइ ॥ ६ ॥
मन गोरख मन गोविंदौ, मन ही औघड़ होइ ।
जे मन राखै जतन करि, तौ आपैं करता सोइ ॥ १० ॥
एक ज दोसत हम किया जिस गलि लाल कवाइ ।
सब जग धोवी धोइ मरै, तौ भी रग न जाइ ॥ ११ ॥
पाँणी ही तै पातला धूँवाँ ही तैं झीण ।
पवनाँ वेगि उतावला, सो दोसत कबीरै कीन्ह ॥ १२ ॥
कबीर तुरी पलाँड़ियाँ, चाबक लीया हाथि ।
दिवस थकाँ साँई मिलौ, पीछैं पडिहै राति ॥ १३ ॥
मनवाॅ तौ अधर वस्या, बहुतक झीणाँ होइ ।
आलोकत सचु पाइया, कबहूँ न न्यारा सोइ ॥ १४ ॥
मन न मारया मन करि, सके न पंच प्रहारि ।
सीला साच सरधा नहीं, इद्री अजहुँ उधारि ॥ १५ ॥

---

(२) ख—परस निवारिए ।

(८) ख मे इसके आगे ये दोहे है—

कबीर मन मृगा भया, खेत विराना खाइ ।
सूलाँ करि करि से क्रिसी, जब खसम पहूँचे आइ ॥ ६ ॥
मन को मन मिलता नही, तौ होता तन का भग ।
अब ह्वै रहु काली काँवली, ज्यौं दूजा चढ़ै न रंग ॥१०॥

कबीर मन विकरै पड्या, गया स्वादि कै साथि।
गलका खाया बरजताँ अब क्यु आवै हाथि ॥ १६ ॥

कबीर मन गाफिल भया, सुमिरण लागै नाहिं।
घणी सहैगा सासनाँ, जम की दरगह माहिं ॥ १७ ॥

कोटि कर्म पल मैं करै, यहु मन विषिया स्वादि।
सतगुर सबद न मानई, जनम गँवाया वादि ॥ १८ ॥

मैमंता मन मारि रे, घटही माँही घेरि।
जबही चालै पीठि दै, अंकुश दे दे फेरि ॥ १९ ॥

मैमंता मन मारि रे, नाँन्हाँ करि करि पीसि।
तब सुख पावै सुंदरी, ब्रह्म झलकै सीसि ॥ २० ॥

कागद केरी नाँव री, पाँणी केरी गंग।
कहै कबीर कैसे तिरूँ, पंच कुसंगी संग ॥ २१ ॥

कबीर यह मन कत गया, जो मन होता काल्हि।
डूँगरि वूठा मेह ज्यूँ, गया निवाँणाँ चालि ॥ २२॥

मृतक कूँ धी जौ नहीं, मेरा मन बी है।
बाजै बाव विकार की, भी मूवा जीवै ॥ २३॥

काटी कूटी मछली, छीकै धरी वहोड़ि।
कोइ एक अषिर मन बस्या, दह मै पड़ी वहोडि ॥ २४ ॥

कबीर मन पषी भया, बहुतक चढ्या अकास।
उहाँ ही तैं गिरि पड्या, मन माया के पास ॥२५ ॥

भगति दुवारा सकड़ा, राई दसवैं भाइ।
मन तौ मैंगल ह्वै रह्यो, क्यूँ करि सकै समाइ ॥२६॥

करता था तौ क्यूँ रह्या, अब करि क्यूँ पछताइ।
बोवै पेड़ बँबूल का, अंब कहाँ तैं खाइ ॥ २७ ॥

काया देवल मन धजा, विषै लहरि फरराइ।
मन चाल्याँ देवल चलै, ताका सर्बस जाइ ॥ २८ ॥

---

(१९) ख में इसके आगे यह दोहा है--

जौ तन काँहै मन धरै, मन धरि निर्मल होइ।
साहिब सौं सनमुख रहै, तौ फिरि बालक होइ ॥

(२४) ख मे इसके आगे ये दोहे है--

मूवा मन हम जीवत देख्या, जैसे मड़िहट भूत।
मूवाँ पीछे उठि उठि लागै, ऐसा मेरा पूत ॥४७॥

मूवैं कौधी गौ नही, मन का किया विनास।
साधू तब लग डर करे, जब लग पंजर सास ॥२८॥

मनह मनोर्थ छाडि दे, तेरा किया न होइ।
पाँणी मै घीव निकसै, तौ रूखा खाइ न कोइ ॥ २६ ॥

काया कसूँ कमाँण ज्यूँ, पचतत्त करि बाँण।
मारौ तौ मन मृग कौं, नही तौ मिथ्या जाँण ॥३०॥२६२॥

—:o·—

(१४) सूषिम मारग कौ अंग

कौंण देस कहाँ आइया, कहु क्यूँ जाण्याँ जाइ।
उहु मार्ग पावै नही, भूलि पडे इस माँहि ॥ १ ॥

उतीथै कोई न आवई, जाकूँ बूझौ धाइ।
इतथै सबै पठाइये, भार लदाइ लदाइ ॥ २ ॥

सबकूँ बूझत मैं फिरौं, रहण कहै नही कोइ।
प्रीति न जोडी राम सूँ, रहण कहाँ थै होइ ॥ ३ ॥

चलौ चलौ सबको कहै, मोहि अँदेसा और।
साहिब सूँ पर्चा नही, ए जाँहिगे किस ठौर ॥ ४ ॥

जाइबै कौ जागा नही, रहिबे कौ नही ठौर।
कहै कबीरा सत हौ, अविगति की गति और ॥ ५ ॥

कबीर मारिग कठिन है, कोइ न सकइ जाइ।
गए ते बहुडे नही, कुसल कहै को आइ ॥ ३ ॥

जन कबीर का सिपर घर, बाट सलैली सैल।
पाव न टिकै पपीलका, लोगनि लादे बैल ॥ ७ ॥

जहाँ न चीटी चढि सकै, राई ना ठहराइ।
मन पवन का गमि नही, तहाँ पहूँचे जाइ ॥ ८ ॥

कबीर मारग अगम है, सब मुनिजन बैठे थाकि।
तहाँ कबीरा चलि गया, गहि सतगुर की साषि ॥ ९ ॥

सुर नर थाके मुनि जनाँ, जहा न कोई जाइ।
मोटे भाग कबीर के, तहाँ रहे घर छाइ ॥१०॥६०२॥

—.o:—

(३०) ख मे इसके आगे यह दोहा है—

कबीर हरि दिवान कै, क्यूकर पावै दादि।
पहली बुरा कमाइ करि, पीछे करै फिलादि ॥ ३५ ॥

(२) ख मे इसके आगे यह दोहा है—

कबीर ससा जीव मै, कोइ न कहै समुझाइ।
नाँनाँ बाणी बोलता, सो कत गया बिलाइ ॥ ३ ॥

(१५) सूषिम जनम कौ अंग

कबीर सूषिम सुरति का, जीव न जाँणै जाल।
कहै कबीरा दूरि करि, आतम अदिष्टि काल ॥ १ ॥

प्राण पंड कौं तजिचलै, मूवा कहै सब कोइ।
जीव छताँ जाँमैं मरै, सूषिम लखै न कोइ ॥ २ ॥३०४॥

---

(१६) माया कौ अंग

जग हटवाड़ा स्वाद ठग, माया वेसाँ लाइ।
रामचरन नीकाँ गही, जिनि जाइ जनम ठगाइ ॥ १ ॥

कबीर माया पापणी, फंध ले बैठी हाटि।
सब जग तौ फंधै पड्या, गया कबीरा काटि ॥ २ ॥

कबीर माया पापणी, लालै लाया लोग।
पूरी किनहूँ न भोगई, इनका इहै बिजोग ॥ ३ ॥

कबीर माया पापणी, हरि सूँ करे हराम।
मुखि कड़ियाली कुमति की, कहण न देई राम ॥ ४ ॥

जाणी जे हरि कौ भजौं, यो मनि माटी आस।
हरि बिचि घालै अंतरा, माया बडी बिसास ॥ ५ ॥

कबीर माया मोहनी, मोहे जाँण सुजाँण।
भागाँ ही छूटै नही, भरि भरि मारै बाँण ॥ ६ ॥

कबीर माया मोहनी, जैसी मीठी खाँड़।
सतगुर की कृपा भई, नही तौ करती भाँड ॥ ७ ॥

कबीर माया मोहनी, सब जग घाल्या घाँणि।
कोइ एक जन ऊबरै, जिनि तोड़ी कुल की काँणि ॥ ८ ॥

(१५-२) ख मे इसके आगे ये दोहे है—

कबीर अंतहकरन मन, करन मनोरथ माँहि।
उपजित उतपति जाँणिए, बिनसै जब बिसराँहि ॥ ३ ॥

कबीर संसा दूरि करि, जाँमण मरन भरम।
पंच तत्त तत्तहि मिलै, सुनि समाना मन ॥ ४ ॥

(१६-१) ख में इसके आगे यह दोहा है—

कबीर जिभ्या स्वाद तें, क्यूँ पल मे ले काम।
अगि अविद्या ऊपजै, जाइ हिरदा मैं राम ॥ २ ॥

(५) ख—हरि क्यौं मिलौं।

कबीर माया मोहनी, माँगी मिलै न हाथि ।
मनह उतारी झूठ करि, तब लागी डोलै साथि ॥ ९ ॥

माया दासी संत की, ऊँभी देइ असीस ।
विलसी अरु लातौ छड़ी, सुमरि सुमरि जगदीस ॥ १० ॥

माया मुई न मन मुवा, मरि मरि गया सरीर ।
आसा त्रिष्णाँ नाँ मुई, यौं कहि गया कबीर ॥ ११ ॥

आसा जीवै जग मरै, लोग मरे मरि जाइ ।
सोइ मूवे धन संचते, सो उबरे जे खाइ ॥ १२ ॥

कबीर सो धन संचिए, जो आगैं कूँ होइ ।
सीस चढाए पोटली, ले जात न देख्या कोइ ॥ १३ ॥

त्रीया त्रिष्णाँ पापणी, तासूँ प्रीति न जोडि ।
पैंडी चढि पाछाँ पडै, लागै मोटी खोडि ॥ १४ ॥

त्रिष्णाँ सींची नाँ बुझै, दिन दिन बढती जाइ ।
जवासा के रूष ज्यूँ, घण मेहाँ कुमिलाइ ॥ १५ ॥

कबीर जग की को कहै, भौ जलि बूडै दास ।
पारब्रह्म पति छाडि करि, करैं मानि की आस ॥ १६ ॥

माया तजी तौ का भया, मानि तजी नही जाइ ।
मानि बड़े मुनियर गिले, मानि सबनि कौ खाइ ॥१७॥

राँमहि थोडा जाँणि करि, दुनियाँ आगैं दीन ।
जीवाँ कौ राजा कहै; माया के आधीन ॥ १८ ॥

रज बीरज की कली, तापरि साज्या रूप ।
राँम नाँम बिन बूड़िहै, कनक काँमणी कूप ॥ १९ ॥

माया तरवर त्रिविध का, साखा दुख संताप ।
सीतलता सुपिनैं नहीं, फल फीको तनि ताप ॥ २० ॥

कबीर माया डाकडी, सब किसहीं कौ खाइ ।
दाँत उपाडौ पापणीं, जे संतौ नेड़ी जाइ ॥ २१ ॥

नलनी सायर घर किया, दौ लागी बहुतेणि ।
जलही माँहै जलि मुई, पूरब जनम लिषेणि ॥ २२ ॥

कबीर गुण की बादली, ती तरवानी छाँहि ।
बाहरि रहे ते ऊबरे, भीगे मंदिर माँहि ॥ २३ ॥

---

(११) ख—यूँ कहै दास कबीर ।
(१२) ख—सोई बूडे जु धन संचते ।

कबीर माया मोह की, भई अँधारी लोइ ।
जे सूते ते मुसि लिये, रहे बसत कूँ रोइ ॥ २४ ॥

संकल ही तै सब लहै, माया इहि संसार ।
ते क्यूँ छूटै बापुड़े बाँधे सिरजनहार ॥ २५ ॥

बाड़ि चढंती बेलि ज्यूँ, उलझी, आसा फंध ।
तूटै पणि छूटै नही, भई ज बाचा बंध ॥ २६ ॥

सब आसण आसा तणाँ; न्रिवर्तिकै को नाँहि ।
न्रिवरति कै निवहै नही, परवर्ति परपंच माँहि ॥ २७ ॥

कबीर इस संसार का, झूठा माया मोह ।
जिहि घरि जिता बँधावणाँ, तिहि घरि तिता अँदोह ॥ २८ ॥

माया हमसौ यो कह्या, तू मति दे रे पूठि ।
और हमारा हम बलू, गया कबीरा रूठि ॥ २९ ॥

बुगली नीर बिटालिया, सायर चढ्या कलंक ।
और पँखेरू पी गए, हंस न बोवै चंच ॥ ३० ॥

कबीर माया जिनि मिलै सौ बरियाँ दे बाँह ।
नारद से मुनियर गिले, किसौ भरोसौ त्याँह ॥ ३१ ॥

माया की झल जग जल्या, कनक काँमणी लागि ।
कहु धौ किहि विधि राखिये, रुई पलेटी आगि ॥ ३२ ॥ ३४६ ॥

(१७) चाँणक कौ अंग

जीव बिलंब्या जीव सौ, अलप न लखिया जाइ ।
गोविंद मिलै न झल बुझै रही बुझाइ बुझाइ ॥ १ ॥

इही उदर कै कारणै, जग जाँच्यौ निस जाम ।
स्वामी पणौ जु सिर चढ्यौ, सर्‌या न एको काम ॥ २ ॥

स्वामी हूँणाँ सोहरा, दोद्धा हूँणाँ दास ।
गाडर आँणीं ऊन कू बाँधी चरै कपास ॥ ३ ॥

---

(२४) ख मे इसके आगे ये दोहे हैं—

माया काल की खाँणि है, धरि त्रिगुणी बपरीति ।
जहाँ जाइ तहाँ सुख नही, यहु माया की रीति ॥

माया मन का मोहनी, सुर नर रहे लुभाइ ।
इहि माया जग खाइया, माया कौं कोई न खाइ ॥ २६ ॥

(२९) ख—गया कबीरा छूटि ।

(३२) ख—रूई लपेटी आगि ।

स्वाँमी हूवा सीतका, पैका कार पचास ।
राम नाँम काँठै रह्या, करैं सिषाँ की आस ॥ ॥ ४ ॥

कबीर तष्टा टोकणी लीए फिरै सुभाइ ।
राम नाँम चीन्है नही, पीतलि ही कै चाइ ॥ ५ ॥

कलि का स्वाँमी लोभिया, पीतलि धरी पटाइ ।
राज दुवाराँ यौ फिरै, ज्यूँ हरिहाई गाइ ॥ ६ ॥

कलि का स्वामी लोभिया, मनसा धरी बधाइ ।
दैहि पईसा व्याज की लेखाँ करताँ जाइ ॥ ७ ॥
कबीर कलि खोटी भई, मुनियर मिलै न कोइ ।
लालच लोभी मसकरा, तिनकूँ आदर होइ ॥ ८ ॥
चारिउ वेद पढाइ करि, हरि सूँ न लाया हेत ।
वालि कबीरा ले गया, पंडित ढूँढै खेत ॥ ९ ॥

बाँम्हण गुरू जगत का साधू का गुरु नाहि ।
उरझि पुरझि करि मरि रह्या, चारिउ वेदाँ माँहि ॥ १० ॥

साषित सण का जेवडा भींगाँ सूँ कठठाइ ।
दोइ अपिर गुरु बाहिरा बाँध्या जमपुरि जाइ ॥ ११ ॥

पाडोसी सू रूसणाँ, तिल तिल सुख की हाँणि ।
पंडित भए सरावगी, पाँणी पीवे छाँणि ॥ १२ ॥

---

(८) ख—कबीर कलिजुग आइया ।

(९) ख—चारि वेद पंडित पढ्या, हरि सो किया न हेत ।

(१०) ख—बाँम्हण गुरु जगत का, भर्म कर्म का पाइ ।
उलझि पुलझि करि मरि गया, चारयौ वेदा माँहि ॥
ख मे इसके आगे ये दोहे है—
कलि का बाम्हण मसकरा ताहि न दीजै दान ।
स्यौ कुटउ नरकहि चलै साथ चल्या जजमान ॥ ११ ॥
बाम्हण बूड़ा बापुड़ा, जेनेऊ कै जोरि ।
लख चौरासी माँ गेलई, पारब्रह्म सो तोड़ि ॥ १२

(११) ख मे इसके आगे ये दोहे है—
कबीर सापत की सभा, तू जिनि बैसे जाइ ।
एक दिवाडै क्यूँ बड़ै, रोझ गदेहडा गाइ ॥ १४ ॥
सापत ते सूकर भला, सूचा राखे गाँव ।
बूडा साषत बापुडा. बैसि समरणी नाँव ॥ १५ ॥
सापत बाम्हण जिनि मिलै, बैसनौ मिली चडाल ।
अक माल दै भेटिए, मानूँ मिले गोपाल ॥ १६ ॥

पंडित सेती कहि रह्या, भीतरि भेद्या नाँहि ।
औरूँ कौ परमोधताँ, गया मुहरकाँ माँहि ॥ १३ ॥

चतुराई, सूवै पढ़ी, सोई पंजर माँहि ।
फिरि प्रमोधै आन कौं, आपण समझै नाँहि ॥ १४ ॥

रासि पराई राषताँ, खाया घर का खेत ।
औरौ कौ प्रमोधताँ, मुख मैं पड़िया रेत ॥ १५ ॥

तारा मडल वैसि करि, चद वड़ाई खाइ ।
उदै भया जव सूर का, स्यूँ ताराँ छिपि जाइ ॥ १६ ॥

देषण के सवको भले, जिमे सीत के कोट ।
रवि कै उदै न दीसही, वँधै न जल की पोट ॥ १७ ॥

तीरथ करि करि जग मूवा, डूँघै पाँणी न्हाइ ।
राँमहि राम जपतडाँ, काल घसीट्याँ जाइ ॥ १८ ॥

कासी काँठै घर करैं, पीवैं निर्मल नीर ।
मुकति नही हरि नाँव विन, यौं कहै दास कवीर ॥ १९ ॥

कवीर इस ससार कौं, समझाऊँ कै वार ।
पूँछ जु पकडै भेड की, उतरया चाहै पार ॥ २० ॥

कवीर मन फूल्या फिरै, करता हूँ मैं ध्रम ।
कोटि क्रम सिरि ले चल्या, चेत न देखै भ्रम ॥ २१ ॥

मोर तोर की जेवडी, वलि वध्या ससार ।
काँ सिकडूँ वासुत कलित, दाझइ वारवार ॥२२॥ ६८ ॥

---

(१८) करणीं विना कथणी कौ अंग

कथणी कथी तौ क्या भया, जे करणी नाँ ठहराइ ।
कालबूत के कोट ज्यूँ, देषतही ढहि जाइ ॥ १ ॥

---

(१३) ख—कवीर व्यास कथा कहै, भीतरि भेदै नाँहि ।

(१५) ख में इसके आगे यह दोहा है—

कवीर कहै पोर कुँ, तूँ समझावै सब कोइ ।
ससा पडगा आपकाँ, तौ और कहै का होइ ॥ २१ ॥

(१७) ख मे इसके आगे यह दोहा है—

सुणत सुणावत दिन गए, उलझि न सुलझ्या मान ।
कहै कवीर चेत्यौ नही, अजहुँ पहलौ दिन ॥ २४ ॥

(२०) ख मे इसके आगे यह दोहा है—

पद गायाँ मन हरषियाँ, साषी कह्याँ आनद ।
सो तत नाँव न जाणियाँ, गल मैं पड़ि गया फंद ॥

जैसी मुख तैं नीकसैं, तैसी चालैं चाल ।
पारब्रह्म नेड़ा रहै, पल मैं करै निहाल ॥ २ ॥

जैसी मुष तैं नीकसै, तैसी चालैं नाँहि ।
मानिप नही ते स्वान गति, बाँध्या जमपुर जाँहि ॥ ३ ॥

पद गाँएँ मन हरषियाँ, साषी कह्याँ अनद ।
सो तन नाँव न जाँणियाँ, गल मैं पड़िया फध ॥ ४ ॥

करता दीसै कीरतन, ऊँचा करि करि तूंड ।
जाँणें बूझे कुछ नही, यौ ही आँधाँ रूंड ॥ ५ ॥३७३॥

---

(१९) कथणी विना करणी कौ अंग

मैं जान्यूँ पढिबौ भलौ, पढिबा थैं भलौ जोग ।
राँम नाँम सूँ प्रीति करि, भल भल नींदौ लोग ॥ १ ॥

कबिरा पढ़िबा दूरि करि, पुस्तक देइ बहाइ ।
बाँवन आषिर सोधि करि, ररै ममैं चित लाइ ॥ २ ॥

कबीर पढिबा दूरि करि, आथि पढ्या संसार ।
पीड़ न उपजी प्रीति सूँ, तौ क्यूँ करि करै पुकार ॥ ३ ॥

पोथी पढि पढि जग मुवा, पडित भया न कोइ ।
एकै अषिर पीव का, पढै सु पडित होइ ॥ ४ ॥३७७॥

---

(२०) कामी नर कौ अंग

काँमणि काली नागणी, तीन्यूँ लोक मँझारि ।
राम सनेही ऊबरे, विषई खाये झारि ॥ १ ॥

काँमणि मीनी पाँणि की, जे छेडौ तौ खाइ ।
जे हरि चरणाँ राचिया, तिनके निकटि न जाइ ॥ २ ॥

परनारी राता फिरै, चोरी विढता खाँहि ।
दिवस चारि सरसा रहै, अति समूला जाँहि ॥ ३ ॥

पर नारी पर सुदरी, विरला वचै कोइ ।
खाताँ मीठी खाँड सी, अति कालि विप होइ ॥ ४ ॥

(२०-४) ख प्रति मे इसके आगे ये दोहे हैं—

जहाँ जलाई सुदरी, तहाँ तूँ जिनि जाइ कबीर ।
भसमी ह्वै करि जासिसी, सो मैं सवाँ सरीर ॥ ५ ॥

नारी नाही नाहरी, करै नैन की चोट ।
कोई एक हरिजन ऊबरै, पारब्रह्म की ओट ॥ ६ ॥

पर नारी कै राचणैं, औगुण है गुण नाँहि ।
पार समद मै मछला, केता वहि वहि जाँहि ॥ ५ ॥
पर नारी को राचणौ, जिसी ल्हसण की पाँनि ।
पूणैं वैसि रषाइए, परगट होइ दिवानि ॥ ६ ॥
नर नारी सब नरक है, जब लग देह सकाम ।
कहै कबीर ते रॉम के, जे सुमिरै निहकाम ॥ ७ ॥
नारी सेती नेह, बुधि ववेक सबही हरै ।
कॉइ गमावै देह कारिज कोई नॉ सरै ॥ ८ ॥
नाना भोजन स्वाद सुख, नारी सेती रग ।
वेगि छाँड़ि पछताइगा, ह्वै है मूरति भंग ॥ ९ ॥
नारि नसावै तीनि सुख, जा नर पासै होइ ।
भगति मुकति निज ग्यान मैं, पैसि न सकई कोइ ॥ १० ॥
एक कनक अरु कॉमनी, विष फल कीएउ पाइ ।
देखै ही थैं विष चढै, खॉयैं सूँ मरि जाइ ॥ ११ ॥
एक कनक अरु काँमनी, दोऊ अगनि की झाल ।
देखें ही तन प्रजलै, परस्यॉ ह्वै पैमाल ॥ १२ ॥
कबीर भग की प्रीतड़ी, केते गए गडत ।
केते अजहूँ जायसी, नरकि हसत हसत ॥ १३ ॥
जोरू जूठणि जगत की, भले बुरे का बीच ।
उत्यम ते अलगे रहै निकटि रहै तें नीच ॥ १४ ॥
नारी कुड नरक का, विरला थभै वाग ।
कोई साधू जन ऊबरै, सब जग मूवा लाग ॥ १५ ॥
सुदरि थैं सूली भली, विरला बचै कोय ।
लोह निहाला अगनि मैं, जलि बलि कोइला होय ॥ १६ ॥
अधा नर चेतै नही, कटै न संसै सूल ।
और गुनह हरि बकससी, कॉमी डाल न मूल ॥ १७ ॥
भगति बिगाडी काँमियाँ, इद्री केरै स्वादि ।
हीरा खोया हाथ थै, जनम गँवाया बादि ॥ १८ ॥
कामी अमी न भावई, विषई कौं ले सोधि ।
कुबधि न जाई जीव की, भावै स्यभ रहो प्रमोधि ॥ १९ ॥

---

(६) क—प्रगट होइ निदानि ।
(१३) ख—गरकि हसत हसत ।

विषै बिलवी आत्माँ, ताका मजकण खाया सोधि ।
ग्याँन अकूर न ऊगई, भावै निज प्रमोध ॥ २० ॥
विषै कर्म की कंचुली, पहरि हुआ नर नाग ।
सिर फोडै सूझै नही, को आगिला अभाग ॥ २१ ॥
कामी कदे न हरि भजै, जपै न कैसौ जाप ।
राँम कह्याँ थै जलि मरै, को पूरिबला पाप ॥ २२ ॥
काँमी लज्या ना करै मन माँहै अहिलाद ।
नीद न माँगै साँथरा, भूप न माँगै स्वाद ॥ २३ ॥
नारि पराई आपणी, भुगत्या, नरकहि जाइ ।
आगि आगि सबरौ कहे, तामैं हाथ न वाहि ॥ २४ ॥
कबीर कहता जात हौ, चेतै नही गँवार ।
बैरागी गिरही कहा, काँमी वार न पार ॥ २५ ॥
ग्याँनी तौ नीडर भया, माँने नाँहीं सक ।
इद्री केरे वसि पडथा, भूँचै विषै निसक ॥ २६ ॥
ग्याँनी मूल गँवाइया, आपण भये करता ।
ताथै ससारी भला, मन मै रहै डरता ॥२७॥४०४॥

---

(२१) सहज कौ अंग

सहज सहज सबको कहै, सहज न चीन्है कोइ ।
जिन्ह सहजै विषिया तजी, सहज कहीजै सोइ ॥ १ ॥
सहज सहज सबको कहै, सहज न चीन्है कोइ ।
पाचू राखै परसती सहज कहीजै सोइ ॥ २ ॥

---

(२२) ख प्रति मे इसके आगे यह दोहा है—
राम कहता जे खिजै, कोढी ह्वै गलि जाँहि ।
सूकर होइ करि औतरै, नाक बूडंते खाँहि ॥ २५ ॥
(२३) ख मे इसके आगे यह दोहा है—
कामी थैं कुतौ भलौ, खोलैं एक जू काछ ।
राम नाम जाणै नही, बावी जेही वाच ॥ २७ ॥
(२७) ख प्रति मे इसके आगे ये यह दोहा है—
काँम काँम सबको कहै, काँम न चीन्है कोइ ।
जेती मन मे कामना, काम कहीजै सोइ ॥ ३२ ॥

सहजैं सहजैं सब गए, सुत वित कामणि कांम।
एकमेक ह्वै मिलि रह्या दास कबीरा राम ॥ ६ ॥
सहज सहज सबको कहै, सहज न चीन्है कोइ।
जिन्ह सहजै हरिजी मिलै, सहज कहीजै सोइ ॥४॥४०८॥

(२२) साँच कौ अंग

कबीर पूँजी साह की, तूँ जिनि खोवै ष्वार।
खरी बिगूचनि होइगी, लेखा देती बार ॥ १ ॥
लेखा देणाँ सोहरा, जे दिल साँचा होइ।
उस चंगे दीवांन मैं, पला न पकड़ै कोइ ॥ २ ॥
कबीर चित्त चमंकिया, किया पयाना दूरि।
काइथि कागद काढ़िया, तब दरिगह लेखा पूरि ॥ ३ ॥
काइथि कागद काढ़िया, तब लेखै वार न पार।
जब लग साँस सरीर मैं, तब लग राम सभार ॥ ४ ॥
यहु सब झूठी बंदिगी, बरियाँ पंच निवाज।
साचै मारै झूठ पढ़ि, काजी करै अकाज ॥ ५ ॥
कबीर काजी स्वादि बसि, ब्रह्म हतै तब दोइ।
चढ़ि मसीति एकै कहै, दरि क्यूँ साचा होइ ॥ ६ ॥
काजी मुलाँ भ्रमियाँ, चल्या दुनी कै साथि।
दिल थैं दीन बिसारिया, करद लई जब हाथि ॥ ७ ॥
जोरी करिर जिहै करै, कहते है ज हलाल।
जब दफतर देखंगा दई, तब ह्वैगा कौण हवाल ॥ ८ ॥
जोरी कीयाँ जुलम है, माँगे न्याव खुदाइ।
ख़ालिक दरि खूनी खडा, मार मुहे मुहि खाइ ॥ ९ ॥
साँईं सेती चोरियाँ, चोराँ सेती गुझ।
जाँणैगा रे जीवडा, मार पड़ैगी तुझ ॥ १० ॥
सेष सबूरी बाहिरा, क्या हज, काबै जाइ।
जिनकी दिल स्यावति नही, तिनकौ कहाँ खुदाइ ॥ ११ ॥
खूब खाँड है खीचड़ी, माँहि पड़ै टुक लूँण।
पेड़ा रोटी खाइ करि, गला कटावै कौण ॥ १२ ॥
पापी पूजा बैसि करि, भषै माँस मद दोइ।
तिनकी दष्या मुकति नही, कोटि नरक फल होइ ॥ १३ ॥

सकल वरण इकत्र ह्वै, सकति पूजि मिलि खाँहि ।
हरि दासनि की भ्राति करि, केवल जमपुरि जाँहि ॥ १४ ॥
कबीर लज्या लोक की, सुमिरै नाँही साच ।
जानि बूझि जिनि कचन तजे, काठा पकड़े काच ॥ १५ ॥
कबीर जिनि जिनि जाँणियाँ, करत केवल सार ।
सो प्राणी काहै चलै, झूठे जग की लार ॥ १६ ॥
झूठे की झूठा मिलै, दूणाँ वधै सनेह ।
झूठे कूँ साचा मिलै, तब ही तूटै नेह ॥१७ ॥ ४२५॥

---

(२३) भ्रम बिधौसण कौ अग

पाँहण केरा पूतला, करि पूजै करतार ।
इही भरोसै जे रहे, ते बूड़े काली धार ॥ १ ॥
काजल केरी कोठरी, मसि के कर्म कपाट ।
पाँहनि बोई पृथमी, पडित पाड़ी वाट ॥ २ ॥
पाँहिन फूँका पूजिए, जे जनम न देई जाव ।
आँधा नर आसामुपी, यौंही खोवै आव ॥ ३ ॥
हम भी पाँहन पूजते, होते रन के रोझ ।
सतगुर की कृपा भई, डारया सिर थैं बोझ ॥ ४ ॥
जेती देषौ आत्मा, तेता सालिगराँम ।
साधू प्रतषि देव है, नही पाथर सू काँम ॥ ५ ॥
सेवैं सालिगराँम कूँ, मन की भ्राति न जाइ ।
सीतलता सुपिनै नही, दिन दिन अधकी लाइ ॥ ६ ॥
सेवै सालिगराँम कूँ, माया सेती हेत ।
वोढें काला कापड़ा, नाँव धरावै सेत ॥ ७ ॥

---

(३) ख प्रति मे इसके आगे ये दोहे हैं—

पाथर ही का देहुरा, पाथर ही का देव ।
पूजणहारा अधला, लागा खोटी सेव ॥ ४ ॥
कबीर गुड कौ गमि नही, पाँपण दिया बनाइ ।
सिप सोधी बिन सेविया, पारि न पहूँच्या जाइ ॥ ५ ॥

(४) ख—होते जगल के रोझ ।

जप तप दीसै थोथरा, तीरथ व्रत बेसास ।
सूवै सैंवल सेविया, यौ जग चल्या निरास ।
तीरथ त सब बेलड़ी, सब जग मेल्या छाइ ।
कबीर मूल निकंदिया, कौण हलाहल खाइ ॥ ९ ॥
मन मथुरा दिल द्वारिका, काया कासी जाँणि ।
दसवाँ द्वारा देहुरा, तामै जोति पिछाँणि ॥ १० ॥
कबीर दुनियाँ देहुरै, सीस नवाँवण जाइ ।
हिरदा भीतर हरि बसै, तूँ ताही सौ ल्यौ लाइ ॥११॥४३६॥

(२४) भेष कौ अंग

कर सेती माला जपै, हिरदै बहे डंडूल ।
पग तौ पाला मैं गिल्या, भाजण लागी सूल ॥ १ ॥
कर पकरै अँगुरी गिनै, मन धावै चहुँ वोर ।
जाहि फिराँयाँ हरि मिलै, सो भया काठ की ठौर ॥ २ ॥
माला पहरैं मनमुषी, ताथै कछू न होइ ।
मन माला कौ फेरताँ, जुग उजियारा सोइ ॥ ३ ॥
माला पहरे मनमुषी, बहुतै फिरै अचेत ।
गाँगी रोले बहि गया, हरि सूँ नाँही हेत ॥ ४ ॥
कबीर माला काठ की, कहि समझावै तोहि ।
मन न फिरावै आपणौं, कहा फिरावै मोहि ॥ ५ ॥
कबीर माला मन की, और संसारी भेष ।
माला पहर्यां हरि मिलै, तौ अरहट कै गलि देष ॥ ६ ॥
माला पहर्‍याँ कुछ नहीं रुल्य मूवा इहि भारि ।
बाहरि ढोल्या हीगलू, भीतरि भरी भँगारि ॥ ७ ॥
माला पहर्‍याँ कुछ नही, काती मन कै साथि ।
जब लग हरि प्रगटै नही, तब लग पड़ता हाथि ॥ ८ ॥

---

(५) ख प्रति मे इसके आगे यह दोहा है—
कबीर माला काठ की, मेल्ही मुगधि झुलाइ ।
सुमिरण की सोधी नही, जाँणै डीगरि घाली जाइ ॥ ६ ॥
(६) ख मे इसके इसके आगे यह दोहा है—
माला फेरत जुग भया, पाय न मन का फेर ।
कर का मन कां छाँड़ि दे, मन का मन का फेर ॥ ८ ॥

माला पहर्‌याँ कुछ नही, गाँठि हिरदा की खोइ ।
हरि चरनूं चित्त राखिये, तौ अमरापुर होइ ॥ ६ ॥
माला पहर्‌या कुछ नही, भगति न आई हाथि ।
माथौ मुँछ मुँडाइ करि, चल्या जगत कै साथि ॥१०॥
साँईं सेती साँच चलि, औराँ सूँ सुध भाइ ।
भावैं लंबे केस करि, भावैं घुरडि मुड़ाइ ॥ ११ ॥
केसौं कहा बिगाडिया, जे मूँड़े सौ बार ।
मन कौं न काहे न मूँडिए, जामैं विषै विकार ॥ १२ ॥
मन मेवासी मूँडि ले केसौ मूँड़े काँइ ।
जे कुछ किया सु मन किया, केसौं कीया नाँहि ॥ १३ ॥
मूँड मुँडावत दिन गए, अजहूँ न मिलिया राम ।
राँम नाम कहु क्या करै, जे मन के औरे काँम ॥ १४ ॥
स्वाँग पहरि सोरहा भया, खाया पीया षूँदि ।
जिहि सेरी साधू नीकले, सो तौ मेल्ही मूँदि ॥ १५ ॥
बेसनो भया तौ का भया, बूझा नही बवेक ।
छापा तिलक बनाइ करि, दगध्या लोक अनेक ॥ १६ ॥
तन कौ जोगी सब करै, मन को बिरला कोइ ।
सब सिधि सहजैं पाइए, जे मन जोगी होइ ॥ १७ ॥
कबीर यहु तौ एक है, पडदा दीया भेष ।
भरम करम सब दूरि करि, सबही माँहि अलेष ॥ १८ ॥
भरम न भागा जीव का, अनंतहि धरिया भेष ।
सतगुर परचे बाहिरा, अतरि रह्या अलेप ॥ १९ ॥
जगत जहंदम राचिया, झूठे कुल की लाज ।
तन बिनसे कुल बिनसि है, गह्यौ न राँम जिहाज ॥ २० ॥
पष ले बूडी पृथमी, झूठी कुल की लार ।
अलष बिसार्‌यौ भेष मैं, बूड़े काली धार ॥ २१ ॥
चतुराई हरि नाँ मिले, ए बाताँ की बात ।
एक निसप्रेही निरधार का, गाहक गोपीनाथ ॥ २२ ॥

---

(९) ख मे इसके आगे यह दोहा है—
माला पहर्‌याँ कुछ नही बाम्हण भगत न जाण ।
ब्याँह सराँधाँ कारटाँ उँभू बैसे ताणि ॥ १२ ॥
(११) ख—साधौ सौं सुध भाइ ।
(१५) ख—जिहि सेरी साधू नीसरै, सो सेरी मेल्ही मूँदि ॥

नवसत साजे काँमनी, तन मन रही सँजोइ ।
पीव कै मन भावे नही, पटम कीये क्या होइ ॥ २३ ॥

जव लग पीव परचा नही, कन्याँ कँवारी जाँणि ।
हथलेवा हौसै लिया, मुसकल पड़ी पिछाँणि ॥ २४ ॥

कवीर हरि की भगति का, मन मैं परा उल्हास ।
मैंवासा भाजै नही, हूँण मतै निज दास ॥ २५ ॥

मैंवासा मोई किया, दुरिजन काढ़े दूरि ।
राज पियारे राँम का, नगर वस्या भरिपूरि ॥ २६ ॥ ४६२ ॥

(२५) कुसंगति कौ अंग

निरमल वूँद अकास की, पड़ि गई भोमि विकार ।
मूल विनठा माँनवी, बिन संगति भठछार ॥ १ ॥

मूरिष सग न कीजिए, लोहा जलि न तिराइ ।
कदली सोप भवंग मुषी, एक वूँद तिहुँ भाइ ॥ २ ॥

हरिजन सेती रूसणाँ, ससारी सूँ हेत ।
ते नर कदे न नीपजै, ज्यूँ कालर का खेत ॥ ३ ॥

मारी मरूँ कुसंग की, केला काँठै वेरि ।
वो हालै वो चीरिये, साषित संग न वेरि ॥ ४ ॥

मेर नीसाँणी मीच की, कुसगति ही काल ।
कवीर कहै रे प्राँणिया, वाँणी ब्रह्म सँभाल ॥ ५ ॥

माषी गुड मैं गडि रही, पंष रही लपटाइ ।
तान्नी पीटै सिरि धुनै, मीठे वोई माइ ॥ ६ ॥

ऊँचे कुल क्या जनमियाँ जे करणी ऊँच न होइ ।
सोवन कलस सुरे भरचा, साधूँ निंद्या सोइ ॥ ७ ॥ २६९ ॥

(२६) संगति कौ अंग

देखा देखी पाकड़े, जाइ अपरचे छूटि ।
विरला कोई ठाहरे सतगुर साँमी मूठि ॥ १ ॥

देखा देखी भगति है, कदे न चढई रग ।
विपति पढ्या यूँ छाड़सी, ज्यूँ कंचुली भवग ॥ २ ॥

(२५-५) ख प्रति मे इसके आगे यह दोहा है—
कवीर केहने क्या वणैं, अणमिलता सौ संग ।
दीपक कै भावै नही, जलि जलि परै पतंग ॥ ६ ॥

करिए तौ करि जाँणिये, सारीपा सूँ संग ।
लीर लीर लोई थई, तऊ न छाडै रंग ॥ ३ ॥
यहु मन दीजे तास कौ, सुठि सेवग भल सोइ ।
सिर ऊपरि आरास है, तऊ न दूजा होइ ॥ ४ ॥
पाँहण टाँकि न तोलिए, हाडि न कीजै वेह ।
माया राता मानवी, तिन सूँ किसा सनेह ॥ ५ ॥
कवीर तासूँ प्रीति करि, जो निरवाहै ओडि ।
वनिता विविध न राचिये, दोपत लागे पोड़ि ॥ ६ ॥
कवीर तन पपी भया, जहाँ मन तहाँ उडि जाइ ।
जो जैसी संगति करे, सो तैसे फल खाइ ॥ ७ ॥
काजल केरी कोठढी, तैसा यहु संसार ।
वलिहारी ता दास की, पैसि रे निकसणहार ॥ ८ ॥ ४७७ ॥

---

(२७) असाध कौ अंग

कवीर भेष अतीत का, करतूति करै अपराध ।
वाहरि दीसै साध गति, माँहै महा असाध ॥ १ ॥
उज्जल देखि न धीजिये, वग ज्यूँ माँडै ध्यान ।
घोरे वैठि चपेटसी, यूँ ले वूडै ग्याँन ॥ २ ॥
जेता मीठा वोलणाँ, तेता साध न जाँणि ।
पहली थाह दिखाइ करि, ऊँडै देसी आँणि ॥ ३ ॥ ४८० ॥

---

(२८) साध कौ अंग

कवीर संगति साध की, कदे न निरफल होइ ।
चंदन होसी वाँवना, नींव न कहसी कोइ ॥ १ ॥
कवीर संगति साध की, वेगि करीजै जाइ ।
दुरमति दूरि गँवाइसी, देसी सुमति वताइ ॥ २ ॥
मथुरा जावै द्वारिका, भावै जावै जगनाथ ।
साध संगति हरि भगति विन, कछु न आवै हाथ ॥ ३ ॥

(२६-४) ख—तऊ न न्यारा होई ।
(२७-३) ख—तेता भगति न जाँणि ।

मेरे संगी दोइ जणाँ एक वैष्णो एक रॉम ।
वो है दाता मुकति का, वो सुमिरावै नाँम ॥ ४ ॥

कबीरा बन बन मे फिरा, कारणि अपणे रॉय ।
राम सरीखे जन मिले, तिन सारे सब कॉम ॥ ५ ॥

कबीर सोई दिन भला, जा दिन संत मिलाहिं ।
अक भरे भरि भेटिया, पाप सरीरौ जॉहि ॥ ६ ॥

कबीर चदन का विडा, बैठ्या आक पलास ।
आप सरीखे करि लिए, जे होते उन पास ॥ ७ ॥

कबीर खाईं कोट की, पांणी पीवे न कोइ ।
आइ मिलै जब गंग मैं, तब सब गंगोदिक होइ ॥ ८ ॥

जॉनि बूझि साचहि तजै, करै झूठ सूँ नेह ।
ताकी सगति राम जी, सुपिनै हो जिनि देहु ॥ ९ ॥

कबीर तास मिलाइ. जास हियाली तूँ बसै ।
वहि तर वेगि उठाइ, नित का गंजन को सहै ॥ १० ॥

केती लहरि समद की, कत उपजै कत जाइ ।
बलिहारी ता दास की, उलटी मॉहि समाइ ॥ ११ ॥

काजल केरी कोठड़ी, काजल ही का कोट ।
बलिहारी ता दास की, जे रहै राँम की ओट ॥ १२ ॥

भगति हजारी कपड़ा, तामें मल न समाइ ।
सापित काली काँवली, भावै तहाँ बिछाइ ॥ १३ ॥ ४९३ ॥

——:o:——

(२९) साध साषीभूत कौ अंग

निरबैरी निहकॉमता, सॉई सेती नेह ।
विषिया सू न्यारा रहै, संतहि का अँग एह ॥ १ ॥

सत न छाडै सतई, जे कोटिक मिलै असंत ।
चँदन भुवंगा बैठिया, तउ सीतलता न तजत ॥ २ ॥

कबीर हरि का भाँवता, दूरै थैं दीसंत ।
तन षीणा मन उनमनाँ, जग रूठड़ा फिरत ॥ ३ ॥

(२८-४) ख—सुमिरावै राम ।
(११) ख प्रति मे इसके आगे ये दोहे हैं—

पच बल धिया फिरि कडी, ऊभड़ ऊजडि जाइ ।
बलिहारी ता दास की, बवकि अणॉवै ठाइ ॥ १२ ॥

काजल केरी कोठडी, तैसा यह संसार ।
बलिहारी ता दास की, पैसि जु निकसण हार ॥ १३ ॥

कवीर हरि का भावता, झीणाँ पजर तास ।
रैंणि न आवै नींदटी, अगि न चढई मास ॥ ४ ॥

अणरता सुख सोवणाँ, रातै नीद न आइ ।
ज्यूँ जल टूटै मछली यूँ वेलत विहाइ ॥ ५ ॥

जिन्य कुछ जांण्या नही तिन्ह, सुख नीदडी विहाइ ।
मैंर अवूझी वूझिया, पूरी पडी वलाइ ॥ ६ ॥

जांण भगत का नित मरण अणजांणे का राज ।
मर अपसर समझै नही, पेट भरण मूं काज ॥ ७ ॥

जिहि घटिजांण विनांण है, तिहि घटि आवटणाँ घणाँ ।
विन पडै सग्राम है नित उठि मन सौं झूझणाँ ॥ ८ ॥

राम वियोगी तन विकल, ताहि न चीन्है कोइ ।
तवोली के पान ज्यूं, दिन दिन पीला होइ ॥ ९ ॥

पीलक दौड़ी साँइयाँ, लोग कहै पिंड रोग ।
छाँनै लंघण नित करै, राँम पियारे जोग ॥ १० ॥

काम मिलावे राम कू, जे कोई जांणै राषि ।
कवीर विचारा क्या करे, जाकी सुखदेव वोले साषि ॥११॥

काँमणि अग विरकत भया, रत भया हरि नाँहि ।
साषी गोरखनाथ ज्यूँ, अमर भए कलि माँहि ॥ १२ ॥

जदि विषै पियारी प्रीति सूँ, तव अतर हरि नाँहि ।
जव अतर हरि जी वसै तव विषिया सू चित नाहि ॥ १३ ॥

जिहि घट मैं ससौ वसै, तिहि घटि राम न जोइ ।
राम सनेही दास विचि, तिणाँ न सचर होइ ॥ १४ ॥

स्वारथ को सवको सगा, सव सगलाही जांणि ।
विन स्वारथ आदर करै, सो हरि की प्रीति पिछांणि ॥१५॥

जिहि हिरदै हरि आइया, सो क्यूँ छाँनाँ होइ ।
जतन जतन करि दाविए, तऊ उजाजा सोइ ॥ १६ ॥

फाटै दीदे मैं फिरौ, नजरि न आवै कोइ ।
जिहि घटि मेरा साँइयाँ, सो क्यूँ छाना होइ ॥ १७ ॥

सव घटि मेरा साँइयाँ, सूनी सेज न कोइ ।
भाग तिन्ही का हे सखी, जिहि धटि परगड होइ ॥ १८ ॥

(२९-४) ख—अगनि वाढै घास ।
(५) ख—तलफत रैंण विहाइ ।
(१२) ख—सिध भए कलि माँहि ।

पावक रूपी राँम है, घटि घटि रह्या समाइ ।
चित चकमक लागै नही, ताथै धूँवाँ ह्वै ह्वै जाइ ॥ १६ ॥
कबीर खालिक जागिया, और न जागै कोइ ।
कै जागै विषई विष भरया, कै दास बदगी होइ ॥ २० ॥
कबीर चाल्या जाइ था, आगै मिल्या खुदाइ ।
मीराँ मुझ सौं यौं कह्या, किनि फुरमाई गाइ ॥२१॥५१४॥

(३०) साध महिमाँ कौ अंग

चंदन की कुटकी भली, नाँ बँबूर की अवरॉउँ ।
बैश्नौ की छपरी भली, नाँ सापत का बड गाउँ ॥ १ ॥
पुरपाटण सूबस बसै, आनँद ठाँये ठाँइ ।
राँम सनेही बाहिरा, ऊजँड मेरे भाँइ ॥ २ ॥
जिहि घरि साध न पूजिये, हरि की सेवा नाँहि ।
ते घर मडहट सारषे, भूत बसै तिन माँहि ॥ ३ ॥
है गै गैवर सघन घन, छत्र धजा फहराइ ।
ता सुख थै भिष्या भली, हरि सुमिरत दिन जाइ ॥ ४ ॥
है गै गैवर सघन घन, छत्रपती की नारि ।
तास पटंतर नाँ तुलै, हरिजन की पनिहारि ॥ ५ ॥
क्यूँ नृप नारी नींदये, क्यूँ पनिहारी कौं माँन ।
वामाँग सँवारै पीव कौ, वा नित उठि सुमिरै राँम ॥ ६ ॥
कबीर धनि ते सुदरी, जिनि जाया वैसनौ पूत ।
राँम सुमरि निरभै हुवा, सब जग गया अऊत ॥ ७ ॥
कबीर कुल तौ सो भला, जिहि कुल उपजै दास ।
जिहि कुल दास न ऊपजै, सो कुल आक पलास ॥ ८ ॥
सापत बाँभण मति मिलै, बैसनौं मिलै चडाल ।
अंक माल दे भेटिये, मॉनों मिले गोपाल ॥ ९ ॥
राँम जपत दालिद भला, टूटी घर की छाँनि ।
ऊँचे मदिर जालि दे, जहाँ भगति न सारँगपाँनि ॥ १० ॥
कबीर भया है केतकी, भवर भये सब दास ।
जहाँ जहाँ भगति कबीर की, तहाँ तहाँ राँम निवास ॥ ११॥५२५॥

(३०-१) ख—चदन की चूरी भली ।
(६) 'वा माग' या 'वामाग' दोनों पाठ हो सकता है ।

(३५) मधि कौ अंग

कबीर मधि अंग जेको रहै, तौ तिरत न लागै वार।
दुइ दुइ अंग सूँ लाग करि, डूबत है संसार ॥ १ ॥
कबीर दुविधा दूरि करि, एक अंग ह्वै लागि।
यहु सीतल वहु तपति है, दोऊ कहिये आगि ॥ २ ॥
अनल अकाँसाँ घर किया, मधि निरंतर वास।
बसुधा व्यौम बिरकत रहै, विनठा हर बिसवास ॥ ३ ॥
बासुरि गमि न रैंणि गमि, नाँ सुपनै तरगम ।
कबीर तहाँ बिलंबिया, जहाँ छाहड़ी न घम ॥ ४ ॥
जिहि पैंडै पंडित गए, दुनिया परी वहीर।
औघट घाटी गुर कही, तिहिं चढि रह्या कबीर ॥ ५ ॥
श्रग नूकथै हूँ रह्या, सतगुर के प्रसादि ।
चरन कवँल की मौज मैं, रहिस्यूँ अंतिरु आदि ॥ ६ ॥
हिंदू मूये राम कहि, मुसलमान खुदाइ ।
कहै कबीर सो जीवता, दुइ मैं कदे न जाइ ॥ ७ ॥
दुखिया मूवा दुख कों, सुखिया सुख कौ झूरि ।
सदा आनंदी राम के, जिनि सुख दुख मेल्हे दूरि ॥ ८ ॥
कबीर हरदी पीयरी, चूना ऊजल भाइ ।
राम सनेही यूँ मिले, दुन्यूँ बरन गँवाइ ॥ ९ ॥
काबा फिर कासी भया, राँम भया रहीम ।
मोट चून मैदा भया, वैठि कबीरा जीम ॥ १० ॥
धरती अरु असमान बिचि, दोइ तूंबडा अबध ।
षट दरसन संसै पड्या, अरु चौरासी सिध ॥ ११॥५२६ ॥

(३२) सारग्राही कौ अंग

षीर रूप हरि नाँव है नीर आन व्यौहार ।
हंस रूप कोइ साध है, तत का जानणहार ॥ १ ॥

(३१–५) ख—दुनियाँ गई वहीर । औघट घाटी नियरा ।
(३२) ख प्रति मे इसके आगे यह दोहा है—

सारू संग्रह सूप ज्यूँ, त्यागै फटकि असार ।
कबीर हरि हरि नाँव ले, पसरै नही बिकार ॥ २ ॥

कबीर सापत को नहीं, सबै बैशनो जाँणि—
जा मुखि राम न उचरै, ताही तन की हाँणि ॥ २ ॥

कबीर औगुंण ना गहै गुंण ही कौ ले बीनि ।
घट घट महु के मधुप ज्यूँ, पर आत्म ले चीन्हि ॥ २ ॥

बसुधा वन बहु भाँति है, फूल्यौ फल्यौ अगाध ।
मिष्ट सुबास कबीर गहि, बिषम कहै किहि साध ॥४॥५४०॥

---

(३३) विचार कौ अंग

राम नाम सब को कहै, कहिबे बहुत विचार ।
सोई राम सती कहै सोई कौतिग हार ॥ १ ॥

आगि कह्याँ दाझै नहीं, जे नहीं चंपै पाइ ।
जब लग लग भेद न जाँणिये, राम कह्या तौ काइ ॥ २ ॥

कबीर सोचि विचारिया, दूजा कोई नाँहि ।
आपा पर जब चीन्हिया, तब उलटि समाना माँहि ॥ ३ ॥

कबीर पाणी केरा पूतला, राख्या पवन सँवारि ।
नाँनाँ बांणी बोलिया, जोति धरी करतारि ॥ ४ ॥

नौ मण सूत अलूझिया, कबीर घर घर बारि ।
तिनि सुलझाया बापुड़े, जिनि जाणी भगति मुरारि ॥ ५ ॥

आधी साषी सिरि कटै, जोर बिचारी जाइ ।
मनि परतीति न ऊपजे, तौ राति दिवस मिलि गाइ ॥ ६ ॥

सोई अपिर सोई बैयन, जन जू जू बाचवंत ।
कोई एक मेलै लवणि अमी रसाइण हुंत ॥ ७ ॥

हरि मोत्यां की माल है, पोई काचै तागि ।
जतन करी झटा घंणा, टूटेगी कहूं लागि ॥ ८ ॥

(३२-४) ख प्रति मे इसके आगे ये दोहे है—

कबीर सब घटि आत्मा, सिरजी सिरजनहार ।
राम कहै सो राम मे, रमिता ब्रह्म विचारि ॥ ५ ॥

तत तिलक तिहू लोक मे, राम नाम निजि सार ।
जन कबीर मसतिकि देया, सोभा अधिक अपार ॥ ६ ॥

(३३-६)—ख—भरि गाइ ।

(७) ख प्रति मे इसके आगे यह दोहा है—

कबीर भूल दग मे लोग कहै यह भूल ।
कै रमइयाँ बाट बताइसी, कै भूलत भूलै भूल ॥ ८ ॥

मन नही छाडै विषै, विषै न छाडै मन कौं ।
इनकौं इहै सुभाव, पूरि लागी जुग जन कौं ॥
खडित मूल विनास कहौ किम विगतह कीजै ।
ज्यूँ जल मे प्रतिव्यव, त्यूँ सकल रामहि जाणीजै ॥
सो मन सो तन सो विषे, सो त्रिभवन पति कहूँ कस ।
कहै कबीर व्यदहु नरा, ज्यूँ जल पूरचा सकल रस ॥६॥५४६॥

(३४) उपदेश कौ अंग

हरि जी यहै विचारिया, साषी कहौ कबीर ।
भौसागर मैं जीव है, जे कोइ पकडै तीर ॥ १ ॥
कली काल ततकाल है, बुरा करौ जिनि कोइ ।
अनवावै लोहा दाहिणैं बोवै सु लुणता होइ ॥ २ ॥
कबीर ससा जीव मैं, कोई न कहै समझाइ ।
विधि विधि बाणी बोलता सो कत गया बिलाइ ॥ ३ ॥
कबीर ससा दूरि करि जाँमण मरण भरम ।
पचतत तत्तहि मिले सुरति समाना मंन ॥ ४ ॥
ग्रिही तौ च्यता घणी, वैरागी तौ भीष ।
दुहुँ कात्यां विचि जीव है, दौ हमैं, सतां सीष ॥ ५ ॥
वैरागी विरकत भला, गिरही चित्त उदार ।
दुहै चूकाँ रीता पडै, ताकूँ वार न पार ॥ ६ ॥
जैसी उपजै पेड मूँ, तैसी निवहै ओरि ।
पैका पैका जोड़ताँ, जुड़िसा लाष करोडि ॥ ७ ॥
कबीर हरि के नाँव सूँ, प्रीति रहे इकतर ।
तौ मुख तैं मोती झडैं, हीरे अत न पार ॥ ८ ॥
ऐसी वॉणी बोलिये, मन का आपा खोइ ।
अपना तन सीतल करै, औरन को सुख होइ ॥ ९ ॥

(३४–२) ख–बुरा न करियो कोइ ।
ख प्रति मे इसके आगे यह दोहा है—
जीवन को समझै नही, मुवा न कहै संदेस ।
जाको तन मन सौ परचा नही, ताकौ कौण धरम उपदेस ॥ ३ ॥
(३) ख— नाना वॉणी बोलता ।
(८) ख–सुरति रहै इकतार । हीरा अनंत अपार ।

कोइ एक राखै सावधान, चेतनि पहरै जागि ।
वस्तन वासन सूँ खिसै, चोर न सकई लागि ॥१०॥५५६॥

---

(३५) बेसास कौ अंग

जिनि नर हरि जठरांहि, उदिकै थैं षड प्रगट कियौ ।
सिरजे श्रवण कर चरन, जीव जीभ मुख तास दीयौ ॥
उरध पाव अरध सीस, वीस पषां इम रषियौ ।
अन पान जहां जरै, तहां तैं अनल न चपियौ ॥
इहि भांति भयानक उद्र में, न कवहू छछरै ।
कृसन कृपाल कवीर कहि, इम प्रतिपालन क्यों करै ॥ १ ॥
भूखा भूखा क्या करै, कहा सुनावै लोग ।
भांडा घड़ि जिनि मुख दिया, सोई पूरण जोग ॥ २ ॥
रचनहार कूँ चीन्हि लै, खैवे कूँ कहा रोइ ।
दिल मंदिर मै पैसि करि, तांणि पछेवडा सोइ ॥ ३ ॥
रांम नांम करि बोहड़ा, वांही वीज अघाइ ।
अति कालि सूका पडै, तौ निरफल कदे न जाइ ॥ ४ ॥
च्यंतामणि मन में वसै, सोई चित मैं आंणि ।
विन च्यता च्यता करै, इहै प्रभू की वांणि ॥ ५ ॥
कवीर का तूँ चितवै, का तेरा च्यत्या होइ ।
अणच्यत्या हरिजी करै, जो तोहि च्यत न होइ ॥ ६ ॥
करम करीमां लिखि रह्या, अब कछू लिख्या न जाइ ।
मासा घट न तिल वधै, जौ कोटिक करै उपाइ ॥ ७ ॥
जाकौ जेता निरमया, ताकौ तेता होइ ।
रती घटै न तिल वधै, जौ सिर कूटै कोइ ॥ ८ ॥
च्यता न करि अच्यंत रहु, सांईं है सम्रथ ।
पसु पंपरू जीव जत, तिनको गांडि किसा ग्रंथ ॥ ९ ॥
संत न बांधै गाँठड़ी, पेट समाता लेइ ।
सांईं सूं सनमुख रहै, जहां माँगै तहाँ देइ ॥ १० ॥

(३५-८) इसके आगे ख प्रति मे यह दोहा है—
करीम कवीर जु विह लिख्या, नरसिर भाग अभाग ।
जेहूँ च्यंता चितवै, तऊ स आगै आग ॥ १० ॥

रांम रांम सूँ दिल मिली, जन हम पड़ी विराइ।
मोहि भरोसा इष्ट का, वदा नरकि न जाइ ॥ ११ ॥

कबीर तूँ काहे डरै, सिर परि हरि का हाथ।
हस्ती चढि नहीं डोलिये, कूकर भुसैं जु लाप ॥ १२ ॥

मीठा खाँण मधूकरी, भाँति भाँति को नाज।
दावा किसही का नहीं, विन विलाइति वड राज ॥ १३ ॥

माँनि महातम प्रेम रस, गरवा तण गुण नेह।
ए सवही ग्रह लागया, जवही कह्या कुछ देह ॥ १४ ॥

माँगण मरण समान है, विरला वचै कोइ।
कहै कवीर रवुनाथ सूँ, मतिर मँगावै मोहि ॥ १५ ॥

पांडल पजर मन भवर, अरथ अनूपम वास।
राँम नाँम सीच्या अँमी, फल लागा वेसास ॥ १६ ॥

मेर मिटी मुकता भया, पाया ब्रह्म विसास।
अव मेरे दूजा को नही, एक तुम्हारी आस ॥ १७ ॥

जाकी दिल मे हरि वसै, सो नर कलपै काँइ।
एक लहरि समद की, दुख दलिद्र सव जाँइ ॥ १८ ॥

पद गाँये लैलीन ह्वै, कटी न ससै पास।
सवै पिछोडे थोथरे, एक विनाँ वेसास ॥ १९ ॥

गावण ही मैं रोज है, रोवण ही मे राग।
इक वैरागी ग्रिह मै, इक गृही मैं वैराग ॥ २० ॥

गाया तिनि पाया नहीं, अणगाँयाँ थैं दूरि।
जिनि गाया विसवास सूँ, तिन राँम रह्या भरिपूरि ॥२१॥५८०॥

---

(१२) ख—शिर परि सिरजणहार।
हस्ती चढि क्या डोलिए। भुसै हजार।
ख प्रति मे इसके आगे यह दोहा है—
हसती चढिया ज्ञान कै, सहज दुलीचा डारि।
स्वान रूप समार है, पड़या भुसौ झपि मारि॥१५॥

(१५) ख—जगनाथ सो।

(१६) ख प्रति मे इसके आगे ये दोहे है—
कवीर मरौ पै मांगौ नहीं, अपणे तन कै काज।
परमारथ कै कारणै, मोहि मांगत न आवै लाज ॥ २० ॥
भगत भरोसै एक कै, निधरक नीची दीठि।
तिनकूं करम न लागसी, राम ठकोरी पीठि ॥ २१ ॥

(३६) पीव पिछाँणन कौ अंग

सुरति माँहि समाइया, सो साहिब नही होइ।
सफल मांड मैं रमि रह्या, साहिब कहिए सोइ ॥ १ ॥

रहै निराला मॉड थै, सकल मॉड ता मॉहि।
कबीर सेवै तास कूँ, दूजा कोई नाँहि ॥ २ ॥

भोलै भूली खसम कैं, बहुत किया बिभचार।
सतगुर गुरू बताइया, पूरिबला भरतार ॥ ३ ॥

जाकै मह माथा नही, नही रूपक रूप।
पुहुप वास थैं पतला, ऐसा तत अनूप ॥४॥५८४॥

---

(३७) बिर्कताई कौ अंग

मेरे मन मैं पड़ि गई, ऐसी एक दरार।
फटा फटक पषाँण ज्यूँ, मिल्या न दूजी वार ॥ १ ॥

मन फाटा बाइक बुरै, मिटी सगाई साक।
जौ परि दूध तिवास का, उकटि हूवा आक ॥ २ ॥

चंदन भाफो गुण करै, जैसे चोली पंन।
दोइ जनाँ भागां न मिलै, मुकताहल अरु मन ॥ ३ ॥

पासि बिनठा कपडा, कदे सुरांग न होइ।
कबीर त्याग्या ग्यान करि, कनक कामनी दोइ ॥ ४ ॥

चित चेतनि मैं गरक ह्वै, चेत्य न देखै मंत।
कत कत की सालि पाडिये, गल बल सहर अनंत ॥ ५ ॥

(३६–४) ख प्रति मे इसके आगे यह दोहा है—

चत्र भुजा कै ध्यान मैं, ब्रिजवासी सब संत।
कबीर मगन ता रूप मै, जाकै भुजा अनंत ॥ ५ ॥

(३७–३) ख प्रति मे इसके आगे ये दोहे है—

मोती भागां बीधतां, मन मै बस्या कबोल।
बहुत सयानाँ पचि गया, पडि गइ गाठि गढोल ॥ ४ ॥

मोती पीवत बीगस्या, सानाँ पाथर आइ राइ।
साजन मेरी नीकल्या, जाँमि बटाऊँ जाइ ॥ ५ ॥

(५) ख प्रति मे इसके आगे यह दोहा है—

वाजण देह बजतणी, कुल जंतडी न बेडि।
तुझै पराई क्या पड़ी, तूँ आपनी निबेडि ॥ ८ ॥

जाता है सो जाँण दे, तेरी दसा न जाइ।
खेवटिया की नाव ज्यूँ घणें मिलेंगे आइ ॥ ६ ॥

नीर पिलावत क्या फिरै, सायर घर घर वारि।
जो त्रिषावत होइगा, तो पीवेगा झख मारि ॥ ७ ॥

सत गंठी कोपीन है, साध न मानैं संक।
रांम अमलि माता रहै, गिणैं इंद्र कौं रंक ॥ ८ ॥

दावै दाझण होत है, निरदावै निरसंक।
जे नर निरदावैं रहैं, ते गणैं इंद्र कौं रंक ॥ ९ ॥

कबीर सब जग हंडिया, मंदिल कंधि चढाइ।
हरि बिन अपनां को नहीं, देखे ठोंकि बजाइ ॥१०॥५१४॥

---

(३८) सम्रथाई कौ अंग

नां कुछ किया न करि सक्या, नां करणे जोग सरीर।
जे कछु किया सु हरि किया, ताथैं भया कबीर कबीर ॥ १ ॥

कबीर किया कछू न होत है, अनकीया सब होइ।
जे किया कछु होत है, तौ करता औरे कोइ ॥ २ ॥

जिसहि न कोई तिसहि तूं, जिस तूं तिस सब कोइ।
दरिगह तेरी सांईयां, नांव हरू मन होइ ॥ ३ ॥

एक खडे ही लहैं, और खडा बिललाइ।
साईं मेरा सुलषना, सूता देइ जगाइ ॥ ४ ॥

सात समद की मसि करौं, लेखनि सब बनराइ।
धरती सब कागद करौं, तऊ हरि गुण लिख्या न जाइ ॥५॥

अबरन कौं का बरनिये, मोपै लख्या न जाइ।
अपना बाना वाहिया, कहि कहि थाके माइ ॥ ६ ॥

झल बांवैं झल दांहिनैं, झलहिं मांहि व्यौहार।
आगैं पीछैं झलमई, राखैं सिरजनहार ॥ ७ ॥

सांईं मेरा बांणियां, सहजि करै व्यौपार।
बिन डांडी बिन पालडै, तोलै सब संसार ॥ ८ ॥

(६८-१) ख प्रति में इस अंग का पहला दोहा यह है—

साईं सौं सब होइगा, बंदे थैं कुछ नांहि।
राई थैं परबत करे, परबत राई मांहि ॥ १ ॥

(८) ख—व्यौहार।

कबीर बारचा नांव परि, कीया राई लूँण।
जिसहि चलावै पंथ तूँ, तिसहि भुलावै कौंण॥ ९ ॥

कबीर करणी क्या करै, जे रॉम न कर सहाइ।
जिहि जिहि डाली पग धरै, सोई नवि नवि जाइ ॥१०॥

जदि का माइ जनमियाँ, कहूँ न पाया सुख।
डाली डाली मैं फिरौं, पातौं पातौं दुख ॥ ११ ॥

सांई सूँ सब होत है, बंदै थैं कुछ नाहि।
राई थैं परवत करै, परवत राई माहि ॥१२॥६०६॥

—:o—

(३९) कुसबद कौ अंग

अणी सुहेली सेल की, पड़ता लेइ उसास।
चोट सहारै सबद की, तास गुरु मैं दास ॥ १ ॥

खँदन तौ धरती सहै, बाढ सहै बनराइ।
कुसबद तौ हरिजन सहै, दूजै सह्या न जाइ ॥ २ ॥

सीतलता तब जाँणिये, समिता रहै समाइ।
पप छाडै निरपष रहै, सबद न दूष्या जाइ ॥ ३ ॥

कबीर सीतलता भई, पाया ब्रह्म गियान।
जिहि बैसदर जग जल्या, सो मेरे उदिक समान ॥४॥६१०॥

—:o:—

(४०) सबद कौ अंग

कबीर सबद सरीर मैं, बिनि गुण बाजै तंति।
बाहरि भीतरि भरि रह्या, ताथैं छूटि भरंति ॥ १ ॥

सती संतोषी सावधान, सबद भेद सुविचार।
सतगुर के प्रसाद थैं, सहज सील मत सार ॥ २ ॥

सतगुर ऐसा चाहिए, जैसा सिकलीगर होइ।
सबद मसकला फेरि करि, देह द्रपन करै सोइ ॥ ३ ॥

---

(१२) ख प्रति मे बारहवे दोहे के स्थान पर यह दोहा है—

रैंणाँ दूरा बिछोहियां, रहु रे संपम झूरि।
देवल देवलि धाहिणी, देसी अगे सूर ॥ १३ ॥

(३९–३) ख—काट सहै। साधू सहै।

(४) ख प्रति मे इसके आगे यह दोहा है—

सहज तराजू आँणि करि, सब रस देख्या तोलि।
सब रस माँहै जीभ रस, जे कोइ जाँणै बोलि ॥ ५ ॥

सतगुर साचा सूरिवाँ, सवद जु वाह्या एक ।
लागत ही मै मिलि गया, पड्या कलेजे छेक ॥ ४ ॥

हरि रस जे जन वेधिया, सतगुण सी गणि नहि ।
लागी चोट सरीर मे, करक कलेजे माँहि ॥ ५ ॥

ज्यूँ ज्यूँ हरिगुण साभलूँ, त्यूँ त्यूँ लागै तीर ।
साँठी साँठी झडि पडी, झलका रह्या सरीर ॥ ६ ॥

ज्यू ज्यू हरिगुण साँभलौ, त्यू त्यू लागै तीर ।
लागै थै भागा नही, साहणहार कवीर ॥ ७ ॥

सारा वहुत पुकारिया, पीड पुकारै और ।
लागी चोट सवद की, रह्या कवीरा ठौर ॥८॥६१८॥

— ० —

(४१) जीवन मृतक कौ अग

जीवन मृतक ह्वै रहै, तजै जगत की आस ।
तव हरि सेवा आपण करै, मति दुख पावै दास ॥ १ ॥

कवीर मन मृतक भया, दुरवल भया सरीर ।
तव पेडे लागा हरि फिरै, कहत कवीर कवीर ॥ २ ॥

कवीर मरि मडहट रह्या, तव कोई न वूझै सार ।
हरि आदर आगै लिया, ज्यूँ गउ वछ की लार ॥ ३ ॥

घर जालौ घर उवरे, घर राखौ घर जाइ ।
एक अचभा देखिया, मडा काल कौ खाइ ॥ ४ ॥

मरतां मरतां जग मुवा, औसर मुवा न कोइ ।
कवीर ऐसै मरि मुवा; ज्यू वहुरि न मरना होइ ॥ ५ ॥

वेद मुवा रोगी मुवा, मुवा सकल ससार ।
एक कवीरा ना मुवा, जिनि के राम अधार ॥ ६ ॥

मन मार्‌या ममिता मुई, अह गई सव छूटि ।
जोगी था सो रमि गया, आसणि रही विभूति ॥ ७ ॥

जीवन थै मरिवौ भलौ, जौ मरि जानै कोइ ।
मरनै पहली जे मरै, तौ कलि अजरावर होइ ॥ ८ ॥

(४०-४) ख प्रति मे यह दोहा नही है ।

(४१-१) ख प्रति मे इस अंग मे पहला दोहा यह है—

जिन पाऊँ सै कतरी हाठत देत वदेस ।
तिन पाऊँ तिथि पाकड़ी, आगण मया व देस ॥ १ ॥

खरी कसौटी राँम की, खोटा टिकै न कोइ ।
राम कसौटी सो टिकै, जौ जीवन मृतक होइ ॥ ९ ॥
आपा मेट्या हरि मिलै, हरि मेट्या सब जाइ ।
अकथ कहाणी प्रेम की, कह्या न को पत्याइ ॥ १० ॥
निगु साँवाँ बहि जायगा, जाकै थाघी नही कोइ ।
दीन गरीबी बंदिगी, करता होइ सु होइ ॥ ११ ॥
दीन गरीबी दीन कौ, दूँदर कौ अभिमान ।
दुदुर दिल विष सूँ भरी, दीन गरीबी राम ॥ १२ ॥
कबीर चेरा संत का, दासनि का परदास ।
कबीर ऐसे ह्वै रह्या, ज्यूँ पाऊँ तलि घास ॥ १३ ॥
रोड़ा ह्वै रहौ बाट का, तजि पाषंड अभिमान ।
ऐसा जे जन ह्वै रहै, ताहि मिले भगवान ॥१४॥६३२॥

---

(४२) चित कपटी कौ अंग

कबीर तहाँ न जाइए, जहाँ कपट का हेत ।
जालूँ कली कनीर की, तन रातौ मन सेत ॥ १ ॥

---

(१२) ख प्रति मे इसके आगे ये दोहे है—
कबीर नवे स आपको, पर कौं नवे न कोइ ।
घालि तराजू तोलिये, नवे स भारी होइ ॥१४॥
बुरा बुरा सब को कहै, बुरा न दीसै कोइ ।
जे दिल खोजौ आपणी, तो मुझसा बुरा न कोइ ॥१५॥
(४) ख प्रति मे इसके आगे ये दोहे है—
रोड़ा भया तो क्या भया, पंथी को दुख देइ ।
हरिजन ऐसा चाहिए, जिसी जिमी की खेह ॥ १८ ॥
खेह भई तौ क्या भया, उडि उड़ि लागे अग ।
हरिजन ऐसा चाहिए, पाँणी जैसा रग ॥ १९ ॥
पाणी भया तो क्या भया, ताता सीता होइ ।
हरिजन ऐसा चाहिए, जैसा हरि ही होइ ॥ २० ॥
हरि भया, तो क्या भया, जासौ सब कुछ होइ ।
हरिजन ऐसा चाहिए, हरि भजि निरमल होइ ॥ २१ ॥
(४२–१) ख प्रति मे इस अग का पहला दोहा यह है—
नवणि नयौ तौ का भयौ, चित्त न सूधौ ज्याँह ।
पारधिया दूणा नवै, मिघ्राटक ताह ॥ १ ॥

ससारी सापत भला, कँवारी कै भाइ ।
दुराचारी वैश्नो बुरा, हरिजन तहाँ न जाइ ॥ २ ॥
निरमल हरि का नाव सो के निरमल सुध भाइ ।
के ले दूणी कालिमा, भावे सो मण साबण लाइ ॥३॥६३५॥

---

(४३) गुरुसिष हेरा कौ अंग

ऐसा कोई ना मिले, हम कौं दे उपदेस ।
भौसागर मैं डूबता, कर गहि काढे केस ॥ १ ॥
ऐसा कोई ना मिले, हम कौं लेइ पिछानि ।
अपना करि किरपा करे, ले उतारै मैदानि ॥ २ ॥
ऐसा कोई ना मिले, राम भगति का गीत ।
तन मन सौपे मृग ज्यूँ, सुने बधिक का गीत ॥ ३ ॥
ऐसा कोई ना मिले, अपना घर देइ जराइ ।
पचूँ लरिका पटिक करि, रहै राम ल्यौ लाइ ॥ ४ ॥
ऐसा कोई ना मिले, जासौ रहिये लागि ।
सब जग जलता देखिये, अपणी अपणी आगि ॥ ५ ॥
ऐसा कोई ना मिले, जासूँ कहूँ निसंक ।
जासूँ हिरदे की कहूँ, सो फिरि माडै कक ॥ ६ ॥
ऐसा कोई ना मिले, सब विधि देइ बताइ ।
सुनि मडल मैं पुरिष एक, ताहि रहै ल्यौ लाइ ॥ ७ ॥
हम देखत जग जात है, जग देखत हम जांह ।
ऐसा कोई ना मिले, पकड़ि छुडावे बाह ॥ ८ ॥
तीनि सनेही बहु मिले, चौथे मिले न कोइ ।
सबै पियारे राम के, बैठे परवसि होइ ॥ ९ ॥
माया मिले महोबंती, कूडे आखै बेउ ।
कोई घाइल बेध्या ना मिलै, साई हदा सैण ॥ १० ॥
मारा सूरा बहु मिलें, घाइला मिले न कोइ ।
घाइल ही घाइल मिले, तब राम भगति दिढ होइ ॥ ११ ॥

(४३–५) ख प्रति मे इसके आगे यह दोहा है—
ऐसा कोई ना मिले, बूझै सैन सुजान ।
ढोल बजता ना सुणौं, सुरति विहूणा कान ॥ ६ ॥
(११) ख–जब घाइल ही घाइल मिलै ।

प्रेमी ढूंढत मैं फिरौ, प्रेमी मिलै न कोइ।
प्रेमी कौं प्रेमी मिलै, तब सब विष अमृत होइ ॥१२॥

हम घर जाल्या आपणाँ, लिया मुराड़ा हाथि।
अब घर जालौं तास का, जे चलै हमारे साथि ॥१३॥३४८॥

(४४) हेत प्रीति सनेह कौ अंग

कमोदनी जलहरि बसै, चंदा बसे अकासि।
जो जाही का भावता, सो ताही कै पास ॥ १ ॥

कबीर गुर बसै बनारसी, सिष समंदाँ तीर।
बिसारचा नहीं बीसरै, जे गुँण होइ सरीर ॥ २ ॥

जो है जाका भावता, जदि तदि मिलसी आइ।
जाकौं तन मन सौंपिया, सो कबहूँ छाँडि न जाइ ॥ ३ ॥

स्वामी सेवक एक मत, मन ही मैं मिलि जाइ।
चतुराई रीझै नहीं, रीझै मन कै भाइ ॥ ४ ॥६५२॥

(४५) सूरा तन कौ अंग

काइर हुवाँ न छूटिये, कछु सूरा तन साहि।
भरम भलका दूरि करि, सुमिरण सेल संबाहि ॥ १ ॥

षूँणै पड़्या न छूटियो, सुणि रे जीव अबूझ।
कबीर मरि मैदान मैं, करि इंद्रचाँ सूँ झूझ ॥ २ ॥

कबीर साईं सूरिवाँ, मन सूँ माँडै झूझ।
पच पयादा पाडि ले, दूरि करै सब दूज ॥ ३ ॥

सूरा झूझै गिरदा सूँ, इक दिसि सूर न होइ।
कबीर यौं बिन सूरिवाँ, भला न कहिसी कोइ ॥ ४ ॥

---

(१२) ख—जब प्रेमी ही प्रेमी मिलें।

(१३) ख प्रति मे इसके आगे ये दोहे हैं—

जाणे ईछूं क्या :नही, बूझि न कीया गौन।
भूलो भूल्या मिल्या, पथ बतावै कौन ॥ १५ ॥
कबीर जानीदा बूझिया, मारग दिया बताइ।
चलता चलता तहाँ गया, जहाँ निरजन राइ ॥ १६ ॥

(५४–१) ख—जो जाही कै मन बसै।

(३) ख—पंच पयादा पकड़ि ले।

कबीर आरणि पैसि करि, पीछैं रहै सु सूर।
साँई सूँ साचा भया, रहसी सदा हजूर॥ ५ ॥

गगन दमाँमाँ बाजिया, पड़ॺा निसानै घाव।
खेत बुहारॺा सूरिवैं, मुझ मरणे का चाव॥ ६ ॥

कबीर मेरै ससा को नही, हरि सूँ लागा हेत।
काँम क्रोध सूँ झूझणाँ, चौड़े माँड्या खेत॥ ७ ॥

सूरै सार सँवाहिया, पहरॺा सहज सजोग।
अब कै ग्याँन गयद चढि, खेत पडन का जोग॥ ८ ॥

सूरा तबही परषिये, लडै धणी कै हेत।
पुरिजा पुरिजा ह्वै पडै, तऊ न छाड़ै खेत॥ ९ ॥

खेत न छाड़ै सूरिवाँ, झूझै द्वै दल माँहि।
आसा जीवन मरण की, मन मैं आँणैं नाँहि॥ १० ॥

अब तौ झूझ्यां ही बणै, मुडि चाल्या घर दूरि।
सिर साहिब कौ सौंपता, सोच न कीजै सूरि॥ ११ ॥

अब तौ ऐसी ह्वै पड़ी, मनकारु चित कीन्ह।
मरनैं कहा डराइये, हाथि स्यँधौरा लीन्ह॥ १२ ॥

जिस मरनैं थै जग डरै, सो मेरे आनद।
कब मारिहूँ कब देखिहूँ, पूरन परमाँनद॥ १३ ॥

कायर बहुत पमाँवही, बहकि न बोलै सूर।
काँम पड्याँ ही जाँणिहै, किसके मुख परि नूर॥ १४ ॥

जाइ पूछौ उस घाइलैं, दिवस पीड निस जाग।
बाँहणहारा जाणिहै, कै जाँणैं जिस लाग॥ १५ ॥

घाइल घूँमै गहि भरॺा, राख्या रहै न ओट।
जतन कियाँ जावै नही, बणी मरम की चोट॥ १६ ॥

ऊँचा बिरष अकासि फल, पंषी मूए झूरि।
बहुत सयाँने पचि रहे, फल निरमल परि दूरि॥१७॥

दूरि भया तौ का भया, सिर दे नेडा होइ।
जब लग सिर सौंपै नही, कारिज सिधि न होइ॥ १८ ॥

कबीर यहु घर प्रेम का, खाला का घर नाँहि।
सीस उतारै हाथि करि, सो पैसे घर माँहि॥ १९ ॥

कबीर निज घर प्रेम का, मारग अगम अगाध।
सीस उतारि पग तलि धरै, तब निकटि प्रेम का स्वाद॥२०॥

---

(४) ख—जाके मुख षटि नूर।

(१७) ख—पथी मूए झूरि।

प्रेम न खेतौ नीपजे, प्रेम न हाटि विकाइ ॥
राजा परजा जिस रुचै, सिर दे सो ले जाइ ॥ २१ ॥

सीस काटि पासंग दिया, जीव सरभरि लीन्ह ।
जाहि भावे सो आइ ल्यौ, प्रेम आट हँम कीन्ह ॥ २२ ॥

सूरै सीस उतारिया, छाडी तन की आस ।
आगै थै हरि मुल किया, आवत देख्या दास ॥ २३ ॥

भगति दुहेली रॉम की, नहि कायर का काम ।
सीस उतारै हाथि करि, सो लेसी हरि नाम ॥ २४ ॥

भगति दुहेली रॉम की, जैसि खाडे की धार ।
जे डोलै तौ कटि पड़ै, नही तौ उतरै पार ॥ २५ ॥

भगति दुहेली रॉम की, जैसी अगनि की झाल ।
डाकि पडे ते ऊबरे, दाधे कौतिगहार ॥ २६ ॥

कवीर घोड़ा प्रेम का, चेतनि चढि असवार ।
ग्यॉन पडग गहि काल सिरि, भली मचाई मार ॥ २७ ॥

कवीर हीरा वणजिया, महँगे मोल अपार ।
हाड़ गला माटी गली, सिर साटै व्यौहार ॥ २८ ॥

जेते तारे रैणि के, तेते वैरी मुझ ।
धड़ सूली सिर कगुरै, तऊ न विसारौ तुझ ॥ २९ ॥

जे हार्‍या तौ हरि सवां, जें जीत्या तो डाव ।
पारब्रह्म कूँ सेवता, जे सिर जाइ त जाव ॥ ३० ॥

सिर साटै हरि सेविए छाड़ि जीव की वाँणि ।
जे सिर दीया हरि मिलै, तव लगि हॉणि न जाणि ॥ ३१ ॥

टूटी वरत अकास थै कोइ न सकै झड झेल ।
साध सती अरु सूर का, अँणी ऊपिला खेल ॥ ३२ ॥

सती पुकारै सलि चढी, सुनि रे मीत मसाँन ।
लोग बटाऊ चलि गए, हँम तुझ रहे निदाँन ॥ ३३ ॥

सती विचारी सत किया, काठी सेज विछाइ ।
ले सूती पिव आपणा, चहुँ दिसि अगनि लगाइ ॥ ३४ ॥

सती सूरा तन साहि करि, तन मन कीया घाँण ।
दिया महौला पीव कूँ, तव मडहट करै वषॉण ॥ ३५ ॥

---

(३१) ख—सिर साटै हरि पाइए ।
(३२) ख प्रति मे इसके आगे यह दोहा है—

ढोल दमामा वाजिया, सवद सुणा सव कोइ ।
जैसल देखि सती भजे, तौ दुहु कुल हासी होइ ॥ ३२ ॥

सती जलन कूँ नीकली, पीव का सुमरि सनेह ।
सवद सुनत जीव निकल्या, भूलि गई सव देह ॥ ३६ ॥

सती जलन कूँ नीकली, चित धरि एकवमेख ।
तन मन सौंप्या पीव कूँ, तव अतर रही न रेख ॥ ३७ ॥

हौ तोहि पूछौ हे सखी, जीवत क्यूँ न मराइ ।
मूँवा पीछै सत करै, जीवत क्यूँ न कराइ ॥ ३८ ॥

कवीर प्रगट राम कहि, छाँनै रॉम न गाइ ।
फूस क जौडा दूरि करि, ज्यूँ वहुरि लागै लाइ ॥ ३९ ॥

कबीर हरि सवकूँ भजै, हरि कूँ भजै न कोइ ।
जव लग आस सरीर की, तव लग दास न होइ ॥ ४० ॥

आप सवारथ मेदनी, भगत सवारथ दास ।
कवीरा रॉम सवारथी, जिनि छाड़ी तन की आस ॥४१॥६६६॥

---

(४६) काल कौ अंग

झूठे सुख कौ सुख कहै, मानत है मन मोद ।
खलक चवींणाँ काल का, कुछ मुख मैं कुछ गोद ॥ १ ॥

आजक काल्हिक निस हमैं, मारगि माल्हंता ।
काल सिचाणाँ नर चिड़ा, औझड औच्यताँ ॥ २ ॥

काल सिहाँणै यौं खड़ा, जागि पियारे म्यत ।
राम सनेही वाहिरा, तूँ क्यूँ सोवै नच्यत ॥ ३ ॥

सव जग सूता नीद भरि, सत न आवै नीद ।
काल खड़ा सिर ऊपरै, ज्यूँ तोरणि आया वीद ॥ ४ ॥

आज कहै हरि काल्हि भजौगा, काल्हि कहै फिरि काल्हि ।
आज ही काल्हि करतड़ाँ, औसर जासी चालि ॥ ५ ॥

कवीर पल की सुधि नही, करैं काल्हि का साज ।
काल अच्यता भडपसी, ज्यूँ तीतर को वाज ॥ ६ ॥

कवीर टग टग चोघताँ, पल पल गई विहाइ ।
जीव जँजाल न छाडई, जम दिया दमामा आइ ॥ ७ ॥

---

(३७) ख—जलन को नीसरी ।
(४६–४) ख—निसह भरि ।
(७) ख प्रति मे इसके आगे यह दोहा है—

जूरा कूती, जोवन सभा, काल अहेडी वार ।
पलक विना मै पाकडै, गरव्यो कहा गँवार ॥ ८ ॥

मैं अकेला ए दोइ जणाँ, छेती नाँहीं काँइ।
जे जम आगैं ऊनरौ, तो जुरा पहूँती आइ ॥ ८ ॥

बारी बारी आपणी, चले पियारे म्यंत।
तेरी बारी रे जिया, नेड़ी आवै नित ॥ ९ ॥

दौं की दाधी लाकड़ी ठाढ़ी करे पुकार।
मति बसि पड़ौं लुहार कै, जालै दूजी बार ॥ १० ॥

जो ऊग्या सो आँथवै, फूल्या सो कुमिलाइ।
जो चिणियाँ सो ढहि पड़ै जो आया सो जाइ ॥ ११ ॥

जो पहरया सो फाटिसी, नाँव धरया सो जाइ।
कबीर सोइ तत्त गहि, जौ गुरि दिया बताइ ॥ १२ ॥

निधड़क बैठा राम बिन, चेतनि करै पुकार।
यहु तन जल का बुदबुदा, बिनसत नाहीं बार ॥ १३ ॥

पाँणी केरा बुदबुदा, इसी हमारी जाति।
एक दिनाँ छिप जाँहिगे, तारे ज्यूँ परभाति ॥ १४ ॥

कबीर यहु जग कुछ नहीं, पिन पारा षिन मीठ।
काल्हि जु बैठा माड़िया, आज मसाँणाँ दीठ ॥ १५ ॥

---

(९) ख प्रति मे इसके आगे ये दोहे है—

मालन आवत देखि करि, कलियाँ करी पुकार।
फूले फूले चुणि लिए, काल्हि हमारी बार ॥ ११ ॥

वाड़ी आवत देखि करि तरवर डोलन लाग।
हँम कटे की कुछ नहीं, पंखेरु घर भाग ॥ १२ ॥

फाँगुण आवत देखि करि, वन रूना मन माँहि।
ऊँची डाली पात हैं, दिन दिन पीले थाँहि ॥ १३ ॥

पात पडता यौं कहै, सुनि तरवर बणराइ।
अब के बिछुड़े ना मिलै, कहि दूर पड़ैगे जाइ ॥ १४ ॥

(१०) ख प्रति मे इसके आगे यह दोहा है—

मेरा वीर लुहारिया, तू जिनि जालै मोहि।
इक दिन ऐसा होइगा, हूँ जालौंगी तोहि ॥ १५ ॥

(१४) ख—एक दिनाँ नटि जांहिगे, ज्यूँ तारा परभाति।

ख प्रति मे इसके आगे यह दोहा है—

कबीर पंच पखेरुवा, राखे पोप लगाइ।
एक जु आया पारधी ले गयो सबै उड़ाइ ॥ २१ ॥

(१५) ख—काल्हि जु दीठा मँड़िया।

कबीर मदिर आपणौं, नित उठि करती आलि ।
मडहट देख्याँ डरपती, चौडे दीन्ही जालि ॥ १६ ॥

मदिर माँहि झबूकती, दीवा केसी जोति ।
हस बटाऊ चलि गया, काढौ घर की छोति ॥ १७ ॥

ऊँचा मदर धौलहर, माटी चित्री पौलि ।
एक राँम के नाँव बिन, जँम पाडगा रौलि ॥ १८ ॥

कबीर कहा गरबियौ, काल गहै कर केस ।
नाँ जाँणौं कहाँ मारिसी, कै घर कै परदेस ॥ १९ ॥

कबीर जत्र न बाजई, टूटि गए सब तार ।
जत्र बिचारा क्या करै, चले बजावणहार ॥ २० ॥

---

(१६) ख—बैठो करतौं आलि ।

(१८) ख प्रति मे इसके आगे ये दोहे है—

काएँ चिणावै मालिया, चुनै माटी लाइ ।
मीच सुणैगी पापणी, उधोरा लैली आइ ॥ २६ ॥

काए चिणावै मालिया, लाँबी भीति उसारि ।
घर तौ साढी तीनि हाथ, घणौ तौ पौणा चारि ॥ २७ ॥

ऊँचा महल चिणाँइयाँ, सोवन कलसु चढाइ ।
ते मदर खाली पड्या, रहे मसाणौ जाइ ॥ २८ ॥

(१९) ख प्रति मे इसके आगे ये दोहे है—

इहर अभागी माँछली, छापरि माँणी आलि ।
डाबरडा छूटै नही, सकै त समँद सभालि ॥ ३० ॥

मँछी हुआ न छूटिए, झीवर मेरा काल ।
जिहिं जिहिं डाबर हूँ फिरौ, तिहिं तिहिं माँडै जाल ॥ ३१ ॥

पाँणी माँहि ला माँछली, सक तौ पाकडि तीरि ।
कडी कदू की काल की आइ पहुँता कीर ॥ ३२ ॥

मछ बिकता देखिया झीवर के करवारि ।
ऊँखडिया रत बालियाँ -तुम क्यूँ बँधे जालि ॥ ३२ ॥

पाँणी माँहै घर किया चेजा किया पतालि ।
पासा पड्या करम का यूँ हम बीधे जालि ॥ ३४ ॥

सूकण लगा केवडा तूटी अरहर माल ।
पाँणी की कल जाणताँ गया ज सीचणहार ॥ ३५ ॥

(२०) ख—कबीर जत्र न बाजई ।

धवणि धवंती रहि गई, बुझि गए अगार।
अहरणि रह्या ठमूकडा, जब उठि चले लुहार ॥ २१ ॥
पंथी ऊभा पंथ सिरि, बुगचा बांध्या पूठि।
मरणाँ मुह आगै खड़ा, जीवण का सब झूठ ॥ २२ ॥
यहु जिव आया दूर थैं, अजौं भी जासी दूरि।
बिच कै बासै रमि रह्या काल रह्या सर पूरि ॥ २३ ॥
राँम कह्या तिनि कहि लिया जुरा पहूँती आइ।
मंदिर लागै द्वार थैं, तब कुछ काढणा न जाइ ॥ २४ ॥
बरियाँ बीती बल गया, बरन पलट्या और।
बिगड़ी बात न बाहुड़ै, कर छिटक्याँ कत ठौर ॥ २५ ॥
बरिया बीती बल गया, अरू बुरा कमाया।
हरि जिन छाड़ै हाथ थैं, दिन नेड़ा आया ॥ २६ ॥
कबीर हरि सूँ हेत करि, कूड़ै चित्त न लाव।
बाँध्या बार षटीक कै, तापसु किती एक आव ॥ २७ ॥
विष के बन मै घर किया, सरप रहे लपटाइ।
ताथैं जियरै डर गह्या, जागत रैणि बिहाइ ॥ २८ ॥
कबीर सब सुख राम है, और दुखाँ की रासि।
सुर नर मुनियर असुर सब, पड़े काल की पासि ॥ २९ ॥

---

(२१) ख—ठमेकडा। उठि गए।

ख प्रति मे इसके आगे यह दोहा है—

कबीर हरणी दूबली, इस हरियालै तालि।
लख अहेडी एक जीव, कित एक टालौं भालि ॥ ३८ ॥

(२२) ख प्रति मे इसके आगे यह दोहा है—

जिनहि न रहणा इत जागि, सी क्यूँ लौडै मीत।
जैसे पर घर पाहुणा, रहै उठाए चीत ॥ ४० ॥

(२५) ख—कर छूटाँ कत ठौर।

(२३) ख प्रति मे इसके आगे ये दोहे है—

कबीर गाफिल क्या फिरै, सोवै कहा न चीत।
एवड माहि तैं ले चल्या, भज्या पकडि परीस ॥ ४५ ॥
साँई सूं मिलि मछीला, के जा सुमिरै लाहूत।
कबही उझकै कटिसी, हुँण ज्यौ बगमंकाहु ॥ ४६ ॥

(२७) ख—कड़वे तन लाव।

काची काया मन अथिर, थिर थिर कांम करत।
ज्यूँ ज्यूँ नर निधडक फिरै, त्यूँ त्यूँ काल हसत ॥ ३० ॥
रोवणहारे भी मुए, मुए जलांवणहार।
हा हा करते ते मुए, कासनि करौ पुकार ॥ ३१ ॥
जिनि हम जाए ते मुए, हम भी चालणहार।
जे हमको आगै मिले, तिन भी बध्या भार ॥ ३२ ॥७२५॥

—:०:—

(४८) सजीवनी कौ अंग

जहाँ जुरा मरण व्यापै नही, मुवा न सुणिये कोइ।
चलि कबीर तिहि देसडै, जहा बैद विधाता होइ ॥ १ ॥
कबीर जोगी बनि बस्या, पणि खाये कंद मूल।
नाँ जाणौ किस जडी थैं, अमर भए असथूल ॥ २ ॥
कबीर हरि चरणौ चल्या, माया मोह थैं टूटि।
गगन मँडल आसण किया, काल गया सिर कूटि ॥ ३ ॥
यहु मन पटकि पछाडि लै, सब आपा मिटि जाइ।
पगलु ह्वै पिव पिव करै, पीछै काल न खाइ ॥ ४ ॥
कबीर मन तीषा किया, विरह लाइ परसांड़।
चित चणूँ मैं चुभि रह्या, तहाँ नही काल का पाण ॥ ५ ॥
तरवर तास बिलबिए, बारह मास फलत।
सीतल छाया गहर फल, पषी केलि करत ॥ ६ ॥
दाता तरवर दया फल, उपगारी जीवंत।
पषी चले दिसावराँ, बिरषा सुफल फलत ॥ ७ ॥७३२॥

—:०:—

(३०) ख प्रति मे इसके आगे यह दोहा है—
बेटा जाया तौ का भया, कहा बजावै थाल।
आवण जाणा ह्वै रहा, ज्यौं कीडी का थाल ॥ ५१ ॥
(४७–१) ख—जुरा मीच।
(५) ख—मन तीषा भया।

(४८) अपारिष को अंग

पाइ पदारथ पेलि करि, ककर लीया हाथि ।
जोडी विछुटी हंस की, पड़्या वगाँ के साथि ॥ १ ॥
एक अचभा देखिया, हीरा हाटि विकाइ ।
परिषणहारे वाहिरा, कोडी वदलै जाइ ॥ २ ॥
कवीर गुदड़ी वीषरी, सौदा गया विकाइ ।
खोटा वाँध्या गाँठड़ी, इव कुछ लिया न जाइ ॥ ३ ॥
पंड़ै मोती विखरया, अंधा निकस्या आइ ।
जोति विनाँ जगदीस की, जगत उलघ्याँ जाइ ॥ ४ ॥
कवीर यहु जग अधला, जैसी अधी गाइ ।
वछा था सो मरि गया, ऊभी चाँम चटाइ ॥ ५ ॥७३०॥

— ०—

(४९) पारिष कौ अंग

जव गुण कूँ गाहक मिलै, तव गुण लाख विकाइ ।
जव गुण कौ गाहक नहीं, तव कौड़ी वदलै जाइ ॥ १ ॥
कवीर लहरि समद की, मोती विखरे आइ ।
वगुला मभ न जाँणई, हस चुणे चुणि खाइ ॥ २ ॥

(४८-१) ख प्रति मे इसके पहिले ये दोहे है—

चंदन रूख वदस गयौ, जण जण कहै पलास ।
ज्यौ ज्यौ चूल्है लोकिए, त्यूँ त्यूँ अधिकी वास ॥ १ ॥
हँसडो तौ महाराण कौ, उड़ि पड्यौ थलियाँह ।
वगुलौ करि करि मारियो, सञ्च न जाँणै त्याँह ॥ २ ॥
हम वगाँ के पाहुणाँ, कही दसा कै केरि ।
वगुला काँई गरवियाँ, वैठा पाँख पषेरि ॥ ३ ॥
वगुला हंस मनाइ लै, नेड़ो थकाँ वहोड़ि ।
त्याँह वैठा तूँ उजला, त्यौ हंस्यौ प्रीति न तोड़ि ॥ ४ ॥

ख—चल्याँ वगाँ के साथि ।

(४९-१) ख प्रति मे इसके आगे यह दोहा है—

कवीर मनमाना तौलिए, सवदाँ मोल न तोल ।
गौहर परषण जाँणही, आपा खोवै वोल ॥ ७ ॥

हरि हीराजन जौहरी, ले ले माँडिय हाटि।
जबर मिलैगा पारिपू, तब हीराँ की साटि ॥ ३ ॥८४०॥

---

(५०) उपजणि कौ अंग

नाव न जाँणौ गाँव का, मारगि लागा जाँउँ।
कालिह जु काटा भाजिसी, पहिली क्यों न खड़ाँउँ ॥ १ ॥

सीप भई मसार थैं चले जु साँई पास।
अविनासी मोहि ले चल्या, पुरई मेरी आस ॥ २ ॥

इंद्रलोक अचरिज भया, ब्रह्मा पड़्या विचार।
कबीर चाल्या राँम पैं, कौतिगहार अपार ॥ ३ ॥

ऊँचा चढ़ि असमान कूँ, मेरु ऊलघे ऊड़ि।
पसू पषेरू जीव जत, सब रहें मेर मे बूडि ॥ ४ ॥

सद पाँणी पाताल का, काढ़ि कबीरा पीव।
वासी पावस पड़ि मुए, विषै बिलबे जीव ॥ ५ ॥

कबीर सुपिनैं हरि मिल्या, सूताँ लिया जगाइ।
आंपि न मींचौं डरपता, मति सुपिनाँ ह्वै जाइ ॥ ६ ॥

गोब्यद के गुण बहुत है, लिखे जु हिरदै माँहि।
डरता पाँणी ना पिऊ, मति वै धोये जाँहि ॥ ७ ॥

कबीर अब तौ ऐसा भया, निरमोलिक निज नाउँ।
पहली काच कथीर था, फिरता ठाँवे ठाउँ ॥ ८ ॥

भौ समद विष जल भर्या, मन नहीं बाँधै धीर।
सबल सनेही हरि मिले, तब उतरे पारि कबीर ॥ ९ ॥

(४९-३) ख प्रति मे इसके आगे ये दोहे हैं—

कबीर सपनहीं साजन मिले, नइ नइ करे जुहार।
बोल्याँ पीछे जाँणिये, जो जाको व्योहार ॥ ४ ॥

मेरी बोली पूरबी, ताइ न चीन्हे कोइ।
मेरी बोली सो लखै, जो पूरब का होइ ॥ ५ ॥

(५०-३) ख—ब्रह्मा भया विचार।

(४) ख—ऊँचा चाल।

(५) ख प्रति मे इसके आगे यह दोहा है—

कबीर हरि का डर्पता, ऊन्हाँ धाँन न खाँउँ।
हिरदय भीतर हरि बसै, ताथैं खरा डराऊँ ॥ ७ ॥

भला सुहेला ऊतरया पूरा मेरा भाग।
रांम नाँव नोका गह्या, तव पाँणी पंक न लाग ॥ १० ॥

कवीर केसौ की दया, ससा घाल्या खोइ।
जे दिन गये भगति विन, ते दिन सालै मोहि ॥ ११ ॥

कवीर जाचरण जाइया, आगैं मिल्या अच।
ले चाल्या घर आपणैं, भारी खाया संच ॥ १२ ॥७५२॥

---

(५१) दया निरवैरता कौ अंग

कवीर दरिया प्रजल्या, दाझै जल थल झल।
वस नाँहीं गोपाल सौं, विनसै रतन अमोल ॥ १ ॥

ऊँनमि विआई वादली; वर्सण लगे अँगार।
उठि कवीरा धाह दे, दाझत है ससार ॥ २ ॥

दाध वली ता सब दुखी, सुखी न देखौं कोइ।
जहाँ कवीरा पग धरै तहाँ टुक धीरज होइ ॥ ३ ॥७५५॥

---

(५२) सुदरि कौ अग

कवीर सुदरि यो कहै, सुणि हो कत सुजाँण।
बेगि मिलो तुम आइ करि, नही तर तजौ पराँण ॥ १ ॥

कवीर जको सुदरी, जाँणि करै विभचार।
ताहि न कवहूँ आदरैं, प्रेम पुरिष भरतार ॥ २ ॥

जे सुदरि साँई भजै, तजै आन की आस।
ताहि न कवहूँ परहरैं, पलक न छाडै पास ॥ ३ ॥

---

(११) ख—सता मेल्हा।

(५२-२) ख प्रति मे इसके आगे यह दोहा है—

दाध वली ता सव दुखो, सुखी न दीसै कोइ।
को पुत्रा को वधवाँ को धणहीना होइ ॥ ३ ॥

(३) ख प्रति में इमके आगे ये दोहे है—

हूँ रोऊं ससार कौ, मुझे न रोवै कोइ।
मुझकौं सोई रोइसी, जे राम सनेही होइ ॥ ५ ॥

मूरो कौं का रोइए, जो अपणै घर जाइ।
रोइए वंदीवान कौ, जो हाटै हाट विकाइ ॥ ६ ॥

वाग विछिटे मिग्र लौ, ति हि जि मारै कोइ।
आपै हौ मरि जाइसी, डावाँ डोला होइ ॥ ७ ॥

पार ब्रह्म बूठा मोतियाँ, बाँधी सिपराँह ।
सगुराँ सगुराँ चुणि लिया, चूक पडी निगुराँह ॥ ३ ॥

कबीर हरि रस बरपिया, गिर डूँगर सिपराँह ।
नीर मिवाणा ठाहरै, नाऊँ छा परड़ाँह ॥ ४ ॥

कबीर मूँडठ करमिया, नप निप पापर ज्याँह ।
बाँहणहारा क्या करै, बाँण न लागै त्याँह ॥ ५ ॥

कहत सुनत सब दिन गए, उरझि न मुरझ्या मन ।
कहि कबीर चेत्या नही, अजहूँ सुपहला दिन ॥ ६ ॥

कह कबीर कठार कै, सबद न लागै सार ।
सुधबुध कै हिरदै भिदै, उपजि बिवेक बिचार ॥ ७ ॥

सा सीतलता के कारणैं, साग बिलबे आइ ।
रोम रोम विप भरि रह्या, अमृत कहा समाइ ॥ ८ ॥

सरपहि दूध पिलाइये, दूधैं विप ह्वै जाइ ।
ऐसा कोई नाँ मिले, स्यूँ सरपै विप खाइ ॥ ९ ॥

जालौं इहै बडपणाँ, सरलै पेडि खजूरि ।
पखी छाँह न बीसवै, फल लागे ते दूरि ॥ १० ॥

ऊँचा कुल के कारणैं, बस बध्या अधिकार ।
चदन बास भेदै नही, जाल्या सब परिवार ॥ ११ ॥

कबीर चदन कै निडै, नीब भि चदन होइ ।
बूडा बस बडाइताँ, यौं जिनि बूडै कोइ ॥१२॥७६०॥

---

(५६) बीनती कौ अंग

कबीर साँई तौ मिलहिगे, पूछहिगे कुसलात ।
आदि अति की कहूँगा, उर अतर की बात ॥ १ ॥

कबीर भूलि बिगाडिया, तूँ नाँ करि मैला चित ।
साहिब गरवा लोडिये, नफर बिगाडै नित ॥ २ ॥

(५५–६) ख प्रति मे यह दोहा नही है ।

(७) ख प्रति मे इसके आगे ये दोहे है—

बेकाँमी को सर जिनि बाहै, साठी खोवै मूल गँवावै ॥
दास कबार ताहि को बाहैं, गलि सनाह सनमुख सरसाहै ॥८॥

पसुवा सौं पानौ पडो, रहि रहि याम खीजि ।
ऊसर बाह्यौ न ऊगसी, भावै दूणाँ बीज ॥ ९ ॥

(५६–१) ख प्रति मे यह दोहा नही है ।

करता करै बहुत गुँण, औगुँण कोई नाँहि।
जे दिल खोजौ आपणी, तौ सब औगुण मुझ माँहि ॥ ३ ॥
औसर बीता अलपतन, पीव रह्या परदेस।
कलक उतारी केसवाँ, भानौ भरंम अँदेस ॥ ४ ॥
कबीर करत है बीनती, भौसागर के ताँई।
बंदे ऊपरि जोर होत है, जँम कूँ बरिज गुसाँई ॥ ५ ॥
हज काबै ह्वै ह्वै गया, केती बार कबीर।
मीराँ मुझ मैं क्या खता, मुखाँ न बोलै पीर ॥ ६ ॥
ज्यूँ मन मेरा तुझ सौं, यौं जे तेरा होइ।
ताता लोहा यौं मिलै, संधि न लखई कोइ ॥ ७ ॥७६६ ॥

(५७) साषीभूत कौ अंग

कबीर पूछै राँम कूँ, सकल भवनपति राइ।
सबही करि अलगा रहौ, सो बिधि हमहिं बताइ ॥ १ ॥
जिहि बरियाँ साँई मिलै, तास न जाँणै और।
सब कूँ सुख दे सबद करि, अपणी अपणी ठौर ॥ २ ॥
कबीर मन का बाहुला, ऊँडा बहै असोस।
देखत ही दह मैं पड़े, दई किसा कौ दोस ॥ ३ ॥ ८०० ॥

(५८) बेली कौ अंग

अब तौ ऐसी ह्वै पड़ी, नाँ तूँ बड़ी न बेलि।
जालण आँणी लाकड़ी, ऊठी कूँपल मेल्हि ॥ १ ॥
आगैं आगैं दौ जलै, पीछैं हरिया होइ।
बलिहारी ता बिरष की, जड़ काट्याँ फल होइ ॥ २ ॥
जे काटौ तौ डहडही, सींचौं तौ कुमिलाइ।
इस गुणवती बेलि का, कुछ गुँण कह्याँ न जाइ ॥ ३ ॥

(५६-३) ख प्रति मे इसके आगे यह दोहा है—
वरियाँ बीती बल गया, अरु बुरा कमाया।
हरि जिनि छाडै हाथ थैं, दिन नेड़ा आया ॥ ३ ॥
(५) ख—कबीर बिचारा करै बिनती।
(५८-२) ख—दौ बलै।

आँगणि वेलि अकासि फल, अण व्यावर का दूध ।
ससा सीग की धूनहड़ी, रमै वाँझ का पूत ॥ ४ ॥
कबीर कडई वेलडी, कडवा ही फल होइ ।
साँध नाँव तव पाइए, जे वेलि विछोहा होइ ॥ ५ ॥
सीध भइ तव का भया, चहूँ दिसि फूटी वास ।
अजहूँ वीज अकूर है, भीऊगण की आस ॥ ६ ॥ ८०६ ॥

---

(५९) अबिहड़ कौ अंग

कबीर साथी सो किया, जाके सुख दुख नही कोइ ।
हिलि मिलि ह्वै करि खेलिस्यूँ कदे विछोह न होइ ॥ १ ॥
कबीर सिरजनहार विन, मेरा हितू न कोइ ।
गुण औगुण विहडै नही, स्वारथ वधी लोई ॥ २ ॥
आदि मधि अरू अंत लौ, अबिहड सदा अभग ।
कबीर उस करता की, सेवग तजै न सग ॥ ३ ॥ ८०९ ॥

---

(६) ख प्रति मे इसके आगे यह दोहा है—
सिधि जु सहजै फूकि गई, आगि लगी वन माँहि ।
वीज वास दून्यूँ जले, ऊगण कौ कुछ नाँहि ॥ ७ ॥

(२) पद

(राग गौड़ी)

दुलहनी गावहु मंगलचार,
हम घरि आए हो राजा रांम भरतार ।। टेक ।।
तन रत करि मैं मन रत करिहूँ, पचतत्त बराती ।
राँमदेव मोरैं पाँहुनैं आये मैं जोवन मैं माती ।।
सरीर सरोवर वेदी करिहूँ, ब्रह्मा वेद उचार ।
राँमदेव सँगि भाँवरी लैहूँ, धनि धनि भाग हमार ।।
सुर तेतीसूं कौतिग आये, मुनिवर सहस अठयासी ।
कहै कबीर हँम ब्याहि चले है, पुरिष एक अविनासी ।। १ ।।

वहुत दिनन थैं मैं प्रीतम पाये,
भाग वड़े घरि वैठें आये ।। टेक ।।
मगलचार माँहि मन राखौ, राम रसाँइण रसना चापौ ।
मदिर माँहि भयो उजियारा, ले सूतो अपनाँ पीव पियारा ।।
मैं रनि राती जे निधि पाई, हमहिं कहाँ यह तुमहि वडाई ।
कहै कबीर मैं कछु न कीन्हा सखी सुहाग राँम मोहि दीन्हा ।। २ ।।

अब तोहि जॉन न देहूँ राम पियारे,
ज्यूं भावै त्यूं होह हमारे ।। टेक ।।
वहुत दिनन के विछुरे हरि पाये, भाग वड़ें घरि वैठे आये ।।
चरननि लागि करी वरियायी, प्रेम प्रीति राखौ उरझाई ।
इत मन मंदिर रहौ नित चोपैं, कहै कबीर परहु मति धोपै ।। ३ ।।

मन के मोहन वीठुला, यह मन लागौ तोहि रे ।
चरन कँवल मन मॉनियाँ, और न भावै मोहि रे ।। टेक ।।
पट दल कँवल निवासिया, चहु कौ फेरि मिलाइ रे ।
दहुँ के वीचि समाधियाँ, तहाँ काल न पासै आइ रे ।।
अष्ट कँवल दल भीतरा, तहाँ श्रीरंग केलि कराइ रे ।
सतगुर मिलैं तौ पाइये, नहिं तौ जन्म अक्यारथ जाइ रे ।।
कदली कुसुम दल भीतराँ, तहाँ दस आँगुल का वीच रे ।
तहाँ दुवादस खोजि ले जनम होत नही मीच रे ।।
वक नालि के अंतरैं, पछिम दिसाँ की वाट रे ।
नीझर झरैं रस पीजिये, तहाँ भँवर गुफा के घाट रे ।।

त्रिवेणी मनाइ न्हवाइए सुरति मिलै जौ हाथि रे।
तहाँ न फिरि मघ जोइए सनकादिक मिलिहै साथि रे॥

गगन गरजि मघ जोइये, तहाँ दीसै तार अनत रे।
बिजुरी चमकि घन वरषिहै, तहाँ भीजत हैं सब सत रे॥

षोडस कँवल जब चेतिया, तब मिलि गये श्री बनवारि रे।
जुरामरण भ्रम भाजिया, पुनरपि जनम निवारि रे॥

गुर गमि तै पाइए झपि मरै जिनि कोइ रे।
तही कबीरा रमि रह्या सहज समाधी सोइ रे॥ ४॥

गोकल नाइक बीठुला, मेरौ मन लागौ तोहि रे।
बहुतक दिन बिछुरैं भये, तेरी औसेरि आवै मोहि रे॥ टेक॥

करम कोटि कौ ग्रेह रच्यौ रे, नेह कये की आस रे।
आपहि आप बँधाइया, द्वै लोचन मरहि पियास रे॥

आपा पर समि चीन्हिये, दीसै सरब समान।
इहि पद नरहरि भेटिये, तूं छाडि कपट अभिमांन रे॥

नाँ कलहूँ चलि जाइये नाँ सिर लीजै भार।
रसनाँ रसहि बिचारिये, सारग श्रीरग धार रे॥

साधै सिधि ऐसी पाइये, किवा होइ महोइ।
जे दिठ ग्यांन न ऊपजै, तौ अहुटि रहै जिनि कोइ रे॥

एक जुगति एकै मिलै किवा जोग कि भोग।
इन दून्यूं फल पाइये, रॉम नाम सिधि जोग रे॥
प्रेम भगति ऐसी कीजिये, मुखि अमृत वरिषै चद रे।
आपही आप बिचारिये, तब केता होइ अनद रे॥

तुम्ह जिनि जानौ गीत है, यहू निज ब्रह्म बिचार।
केवल कहि समझाइया, आतम साधन सार रे॥

चरन कँवल चित लाइये, रॉम नॉम गुन गाइ।
कहै कबीर मसा नही, भगति मुकति गति पाइ रे॥ ५॥

---

(४) ख—जन्म अमोलिक।

(५) ख प्रति मे इसके आगे यह पद है—

अब मैं राम सकल सिधि पाई
आन कहूँ तौ राम दुहाई॥ टेक॥

इह बिधि बसि सबै रस दीठा, राम नॉम सा और न मीठा।
और रस ह्वै कफगाता, हरिरस अधिक अधिक सुखराता॥

दूजाँ बणज नही कछु बाषर, रॉम नॉम दोऊ तत आषर।
कहै कबीर हरिरस भोगी, ताकौ मिलया निरजन जोगी॥ ६॥

अब मैं पाइबौ रे पाइबो ब्रह्म गियान,
सहज समाधें सुख मे रहिबौ, कोटि कलप विश्राम ।। टेक ।।
गुर कृपाल कृपा जब कीन्ही, हिरदै कँवल बिगासा ।
भागा भ्रम दसौ दिस सूझ्या, परम जोति प्रकासा ।।
मृतक उठ्या धनक कर लीयैं, काल अहेड़ी भाषा ।
उदय सूर निस किया पयाँनाँ, सोवत थैं जब जागा ।।
अविगत अकल अनूपम देख्या, कहताँ कह्या न जाई ।
सैंन करैं मन ही मन रहसैं, गूंगैं जाँनि मिठाई ।।
पहुप विनाँ एक तरवर फलिया, विन कर तूर बजाया ।
नारी विना नीर घट भरिया, सहज रूप सो पाया ।
देखत काँच भया तन कंचन, विना बानी मन माँनाँ ।
उड़्या विहंगम खोज न पाया, ज्यूँ जल जलहि समाँनाँ ।।
पूज्या देव बहुरि नहीं पूजौ, न्हाये उदिक न नाँउँ ।
भागा भ्रम ये कही कहताँ, आये बहुरि न आँउँ ।।
आपैं मैं तब आया निरष्या, अपन पैं आपा सूझ्या ।
आपैं कहत सुनत पुनि अपनाँ, अपन पैं आपा बूझ्या ।।
अपनैं परचै लागी तारी, अपन पैं आप समाँनाँ ।
कहै कबीर जे आप विचारे, मिटि गया आवन जाँनाँ ।। ६ ।।

नरहरि सहजैं ही जिनि जाँना ।
गत फल फूल तत तर पलव, अंकूर बीज नसाँनाँ ।। टेक ।।
प्रकट प्रकास ग्याँन गुरगमि थैं, ब्रह्म अगनि प्रजारी ।
ससि हरि सूर दूर दूरंतर, लागी जोग जुग तारी ।
उलटे पवन चक्र षट वेधा, मेर डंड सरपूरा ।।
गगन गरजि मन सुंनि समाँनाँ, बाजे अनहद तूरा ।
सुमति सरीर कबीर विचारी, त्रिकुटी संगम स्वामी ।।
पद आनंद काल थैं छूटै, सुख मैं सुरति समाँनी ।। ७ ।।

मन रे मन ही उलटि समाँना ।
गुर प्रसादि अकलि भई तोकौं नहीं तर था बेगाँनाँ ।। टेक ।।
नेड़ैं थैं दूरि दूर थैं नियरा, जिनि जैसा करि जाना ।
औ लौ ठीका चढ्या बलीडै, जिनि पीया तिनि माना ।।
उलटे पवन चक्र षट वेधा, सुनि सुरति लै लागी ।
अमर न मरै मरै नहीं जीवै, ताहि खोजि वैरागी ।।
अनभै कथा कवन सो कहिये, है कोई चतुर विवेकी ।
कहै कबीर गुर दिया पलीता, सो झल विरलै देखी ।। ८ ।।

इहि तत राम जपहु रे प्रांनी, बुझौ अकथ कहांणी।
हरि का भाव होइ जा ऊपरि जाग्रत रैंनि बिहानी ॥ टेक ॥
डाँइन डारै, सुनहाँ डोरै, स्यघ रहै बन घेरै।
पंच कुटब मिलि झुझन लागे, बाजत सबद सघेरै ॥
रोहै मृग ससा बन घेरे, पारधी बांण न मेलै।
सायर जलै सकल बन दाझै, मछ अहेरा खेलै ॥
सोई पंडित सो तत ज्ञाता, जो इहि पदहि बिचारै।
कहै कबीर सोइ गुर मेरा, आप तिरै मोहि तारै ॥ ९ ॥

अवधू ग्यान लहरि धुनि मांडी रे।
सबद अतीत अनाहद राता, इहि बिधि त्रिष्णां षांडी ॥ टेक ॥
बन कै ससै समंद घर कीया मंछा बसै पहाड़ी।
सुई पीवै ब्राम्हण मतवाला, फल लागा बिन बाड़ी।
षाड बुणैं कोली मैं बैठी, मैं खूंटा मैं गाढी।
ताणे वाणे पड़ी अनँवासी, सूत कहै बुणि गाढी ॥
कहै कबीर सुनहु रे संतो, अगम ग्यांन पद मांही।
गुर प्रसाद सुई कै नाकै, हस्ती आवै जांही ॥ १० ॥

एक अचंभा देखा रे भाई,

ठाढा सिंघ चरावै गाई ॥ टेक ॥
पहलै पूत पीछे भई माई, चेला कै गुरु लागै पाई।
जल की मछली तरवर ब्याई, पकरि बिलाई मुरगै खाई ॥
बैलहि डारि गूनि घरि आई, कुत्ता कूं लै गई बिलाई ॥
तलिकरि साप। ऊपरिकरि मूल बहुतभांति जड लागे फूल।
कहै कबीर या पद को बूझै, ताँकूं तीन्यूं त्रिभुवन सूझै ॥ ११ ॥

हरि के षारे बडे पकाये, जिनि जारे तिनि पाये।
ग्यांन अचेत फिरै नर लोई, ता जनमि जनमि डहकाए ॥ टेक ॥
धौल मंदलिया बैल रबाबी, कऊवा ताल बजावै।
पहरि चोलना गादह नाचै, भैसा निरति कहावै ॥
स्यंघ बैठा पान कतरै, घूंस गिलौरा लावै।
उदरी बपुरी मंगल गावै, कछू एक आनंद सुनावै ॥
कहै कबीर सुनहुं रे संतो, गडरी पर्बत खावा।
चकवा बैसि अंगारे निगले, समंद आकासा धावा ॥ १२ ॥

चरखा जिनि जरे।
कतौंगी हजरी का सूत, नणद के भइया की सौं ॥ टेक ॥
जलि जाई थलि ऊपजी, आई नगर मैं आप।
एक अचंभा देखिया, बिटिया जायौ बाप ॥

बाबल मेरा व्याह करि, वर उत्यम ले चाहि।
जब लगि वर पावै नहीं, तब लग तूं ही व्याहि ॥
सुबधी कै घरि लुबधी आयौ, आंन बहु कै भाइ।
चूल्हे अगनि बताइ करि, फल सौं दीयौ ठठाइ ॥
सब जगही मर जाइयौ, एक बड़इया जिनि मरै।
सब रांडनि कौ साथ चरषा को धरै ॥
कहै कबीर सो पंडित ग्याता जो या पदही बिचारै।
पहलैं परच गुर मिलैं तौ पीछै सतगुर तारै ॥१३॥

अब मोहि ले चलि नणद के बीर, अपनैं देसा।
इन पंचनि मिलि लूटी हूँ, कुसंग आहि बदेसा ॥टेक॥
गंग तीर मोरी खेती बारी, जमुन तीर खरिहानां।
सातौं बिरही मेरे नीपजैं, पचूं मोर किसानां ॥
कहै कबीर यह अकथ कथा है कहतां कही न जाई।
सहज भाइ जिहि ऊपजै, ते रमि रहे समाई ॥१४॥

अब हम सकल कुसल करि मांनां,
स्वांति भई तब गोव्यंद जांनां ॥टेक॥
तन मैं होती कोटि उपाधि, भई सुख सहज समाधि ॥
जम थैं उलटि भये है रांम, दुख सुख किया बिश्रांम ॥
बैरी उलटि भये हैं मीता साषत उलटि सजन भये चीता ॥
आपा जानि उलटि ले आप, तौ नहीं व्यापै तीन्यूं ताप ॥
अब मन उलटि सनातन हूवा, तब हम जांनां जीवत मूवा ॥
कहै कबीर सुख सहज समाऊं, आप न डरौं न और डराऊं ॥१५॥

संतौ भाई आई ग्यांन की आंधी रे।
भ्रम की टाटी सबै उडांणी; माया रहै न बांधी ॥टेक॥
हिति चित की द्वै थूंनी गिरांनी, मोह बलिंडा तूटा।
त्रिस्नां छांनि परि घर ऊपरि, कुबधि का भांडां फूटा ॥
जोग जुगति करि संतौं बांधी, निरचू चुवै न पांणी।
कूड़कपट काया का निकस्या, हरि की गति जब जांणी।
आंधी पीछैं जो जल बूठा, प्रेम हरि जन भींनां।
कहै कबीर भांन के प्रगटे उदित भया तम षीनां ॥१६॥

अब घटि प्रगट भये रांम राई, सोधि सरीर कनक की नांईं ॥टेक॥
कनक कसौटी जैसे कसि लेइ सुनारा; सोधि सरीर भयो तन सारा ॥
उपजत उपजत बहुत उपाई, मन थिर भयो तबै तिथि पाई ॥

वाहरि पोजत जनम गँवाया, उनमनी ध्याँन घट भीतरि पाया।
विन परचै तन कांच कवीरा, परचै कचन भया कवीरा ।।१७।।

हिंडोलनाँ तहाँ झूलैं आतम राँम ।
प्रेम भगति हिंडोलनाँ, सव संतनि कौ विश्राम ।।टेक।।
चंद सूर दोइ खंभवा, वक नालि की डोरि ।
झूलें पच पियारियाँ; तहाँ झूलैं जीय मोर ।।
द्वादस गम के अतरा, तहाँ अमृत कौं ग्रास ।
जिनि यह अमृत चापिया, सो ठाकुर हँम दास ।।
सहज सुंनि कौ नेहरौ गगन मडल सिरिमौर ।
दोऊ कुल हम आगरी, जो हम झूलैं हिंडोल ।।
अरध उरध की गगा जमुना, मूल कवल कौ घाट ।
पट चक्र की गागरी, त्रिवेणी सगम वाट ।।
नाद व्यंद की नावरी, राँम नाम कनिहार ।
कहै कवीर गुंण गाइ ले, गुर गँमि उतरौ पार ।।१८।।

कौ वीनै प्रेम लागी री, माई कौ वीन ।
राँम रसाँइण मातेरी, माई को वीनै ।।टेक।।
पाई पाई तूं पुतिहाई, पाई की तुरियाँ वेचि खाई री, माई को वीनै ।।
ऐसै पाई पर विथुराई, त्यूं रस आँनि वनायौ री, माई को वीनै ।
नाचै ताँनाँ नाचै वाँनाँ, नाचै कूंच पुराना री, माई को वीनै ।।१९।।

मैं वुनि करि सिराँनाँ हो राम,
नालि करम नही, ऊवरे ।।टेक।।
दखिन कूट जव सुनहाँ झूका, तव हम सुगन विचारा।
लरके परके सव जागत हैं हम घरि चोर पसारा हो राँम ।।
ताँनाँ लीन्हाँ वाँनाँ लीन्हाँ, लीन्हे गोड के पऊवा।
इत उत चितवत कठवन लीन्हाँ, माँस चलवना डऊवा हो राम।
एक पग दोई पग त्रेपग, सँध सधि मिलाई ।
करि परपंच मोट वँधि आये, किलिकिलि सवै मिटाई हो राँम ।।
ताँनाँ तनि करि वाँनाँ वुनि करि, छाक परी मोहि ध्याँन ।
कहै कवीर मैं वुनि सिराँना जानत है भगवाँनाँ हो राम ।।

तननाँ वुनना तज्या कवीर,
राँम नाँम लिखि लिया शरीर ।।टेक।।
जव लग भरौं नली का वेह, तव लग टूटै राँम सनेह ।।

ठाढ़ी रोवै कबीर की माइ, ए लरिका क्यूं जीवैं खुदाइ ।
कहैं कबीर सुनहुँ री माई, पूरणहारा त्रिभुवन राई ॥ २१ ॥

जुगिया न्याइ मरैं मरि जाइ ।
घर जाजरौ बलीडौ टेढ़ौ, ऑलोती डर राइ ॥ टेक ॥
मगरी तजौ प्रीति पापें सूँ डाँडी देहु लगाइ ।
छीको छोडि उपरहि डौ बाँधा, ज्यूँ जुगि जुगि रहौ समाइ ।
बैंमि परहडी द्वार मुँदावौ, ल्यावों पूत घर घेरो ।
जेठी धीय सासरे पठवौ ज्यूँ बहुरि न आवैं फेरी ॥
लहुरी धीइ सबै कुश धोयौ, तब ढिग बैठन पाई ।
कहैं कबीर भाग बपरी कौ, किलिकिलि सबै चुकाँई ॥ २२ ॥

मन रे जागत रहिये भाई ।
गाफिल होइ बसत मति खोवै, चोर मुसैं घर जाई ॥टेक॥
षट चक की कनक कोठडी बस्त भाव है सोई ।
ताला कूँचो कुलफ के लागे, उघडत बार न होई ॥
पच पहरवा सोइ गये हैं, बसतैं जागण लागी ।
करत विचार मनही मन उपजी नाँ कहीं गया न आया ॥
कहै कबीर ससा सब छूटा राँम रतन धन पाया ॥ २३ ॥

चलन चलन सब को कहत है
नाँ जाँनौं बैकुंठ कहाँ है ॥ टेक ॥
जोजन एक प्रमिति नहिं जानैं, बातन ही बैकुंठ बपानैं ।
जब लग हैं बैकुंठ की आसा, तब लग नही हरि चरन निवासा ॥
कहें मुने कैसे पतिअइये, जब लग तहाँ आप नहिं जइये ।
कहै कबीर वहु कहिये काहि, साध संगति बैकुंठहि आहि ॥ २४ ॥

अपनें विचारि असवारी कीजे,
सहज कैं पाइडे पाव जब दीजे ॥ टेक ॥
दे मुहरा लगाँम पहिराँऊँ, सिकली जीन गगन दौराऊँ ।
चलि बैकुठ तोहि लै तारौं, थकहि त प्रेम ताजनैं मारूँ ॥
जन कबीर ऐसा असवारा, वेद कतेब दहूँ थैं न्यारा ॥ २५ ॥

अपनैं मैं रँगि आपनपो जानूँ,
जिहि रंगि जाँनि ताही कूँ माँनूँ ॥ टेक ॥
अभि अंतरि मन रंग समानां, लोग कहै कबीर बौरानां ।
रंग न चीन्है मूरखि लोई, जिह रँगि रंग रह्या सब कोई ॥
जे रँग कबहुँ न आवै न जाई, कहै कबीर तिहि रह्या समाई ॥ २६ ॥

झगरा एक नबेरो राँम

जे तुम्ह अपने जन सूं काँम ।। टेक ।।

ब्रह्म बडा कि जिनि रू उपाया, वेद बडा कि जहाँ थैं आया ।।
यह मन बडा कि जहाँ मन मानै, राम बडा कि राँमहि जानै ।
कहै कबीर हूँ खरा उदास, तीरथ बडे कि हरि के दास ।। २७ ।।

दास राँमहि जानि है रे

औौर न जानै कोइ ।। टेक ।।

काजल देइ सबै कोई, चपि चाहन माँहि बिनांन ।
जिन लोइनि मन मोहिया, ते लोइन परवांन ।।

बहुत भगति भौसागरा नानाँ विधि नांनाँ भाव ।
जिहि हिरदै श्रीहरि भेटिया, सो भेद कहूँ कहूँ ठाउँ ।।

तरसन संमि का कीजिये, जौ गुन हिं होत समांन ।
सींधव नीर कबीर मिल्यौ है, फटक न मिल पखांन ।। २८ ।।

कैसे होइगा मिलावा हरि सनाँ,

रे तू विषै विकार न तजि मनाँ ।। टेक ।।

रे तैं जोग जुगति जान्याँ नही, तैं गुर का सबद मान्याँ नहीं ।।
गंदी देही देखि न फूलिये, संसार देखि न भूलिये ।।
कहै कबीर मम बहु गुंनि, हरि भगति बिनाँ दुख फुनफुनी ।। २९ ।।

कासूं कहिये सुनि रामाँ, तेरा मरम न जानैं कोई जी ।
दास बबेकी सब भले, परि भेद न छानाँ होई जी ।। टेक ।।

ए सकल ब्रह्मंड तैं पूरिया, अरु दूजा महि थांन जी ।
मैं सब घटि अंतरि पेषिया, जब देख्या नैंन समांन जी ।।

राँम रसाइन रसिक है, अद्भुत गति बिस्तार जी ।
भ्रम निसा जो गत करे, ताहि सूझै संसार जी ।।

सिव सनकादिक नारदा, ब्रह्म लिया निज बास जी ।
कहै कबीर पद पंकयजा, अप नेडा चरण निवास जी ।। ३० ।।

मैं डोरै डोरै जाँऊंगा

तौ मैं बहुरि न भौजलि आँऊंगा ।। टेक ।।

सूत बहुत कुछ थोरा, ताथै लाइ ले कथा डोरा ।
कंथा डोरा लागा, तब जुरा मरण भौ भागा ।।

जहाँ सूत कपास न पूनी, तहाँ बसै इक मूनी ।
उस मूनी सूं चित लाऊंगा, तो मै बहुरि न भौजलि आऊंगा ।।

मेरे डंड इक छाजा, तहाँ बसै इक राजा ।
तिस राजा सूं चित लाँऊंगा, तौ मैं बहुरि न भौजलि आँऊंगा ।।

जहाँ वहु हीरा धन मोती, तहाँ तत लाइ लै जोती।
तिस जोतिहि जोति मिलाऊँगा, तौ मैं बहुरि न भौजलि आऊँगा॥
जहाँ ऊगै सूर न चंदा, तहाँ देख्या एक अनंदा।
उस आनँद मूँ लौ लाऊँगा, तौ मैं बहुरि न भौजलि आऊँगा॥
मूल वध इक पावा, तहाँ सिध गणेश्वर रावाँ।
तिस मूलहि मूल मिलाऊँगा, तौ मै बहुरि न भौजलि आऊँगा॥
कबीरा तालिब तेरा, तहाँ गोपत हरी गुर मोरा।
तहाँ हेत हरि चित लाऊँगा, तौ मै बहुरि न भौजलि आऊँगा॥३१॥

संतौ धागा टूटा गगन विनसि गया, सबद जु कहाँ समाई।
ए ससा मोहि निस दिन व्यापै, कोइ न कहै समझाई॥टेक॥
नही ब्रह्मंड प्यंड पुनि नाँही, पंचतत भी नाही।
इला प्यगुला सुखमन नाँही, ए गुण कहाँ समाँही॥
नही ग्रिह द्वार कछू नही, तहियाँ, रचन हार पुनि नाँही।
जोवनहार अतीत सदा संगि, ये गुण तहाँ समाँही॥
तूटै बंधै बंधै पुनि तूटै, तब तब होइ विनासा।
तब को ठाकुर अब को सेवग, को काकै विसवासा॥
कहै कबीर यहु गगन न विनसै, जौ धागा उनमाँनाँ।
सीखे सुने पढे का होई, जौं नही पदहि समाँना॥३२॥

ता मन कौ खोजहु रे भाई,
तन छूटे मन कहाँ समाई॥टेक॥
सनक सनदन जै देवनामी भगति करी मन उनहुँ न जानी।
सिव विरंचि नारद मुनि ग्यानी, मन की गति उनहूँ नही जानी॥
ध्रू प्रहिलाद वभीषन सेषा, तन भीतर मन उनहुँ न देषा।
ता मन का कोइ जानै भेव रंचक लीन भया सुषदेव॥
गोरष भरथरी गोपीचंदा, ता मन सौ मिलि करै अनदा।
अकल निरजन सकल सरीरा, ता मन सौ मिलि रहा कबीरा॥३३॥

भाई रे विरले दोसत कबीरा के, यहु तत बार बार कासो कहिए।
भानण घडण सँवारण सवारण सम्रथ, ज्यूँ राषै त्यूँ रहिए॥टेक॥
आलम दुनो सबै फिरि खोजी, हरि बिन सकल अयानाँ।
छह दरसन छयानवै पाषंड, आकुल किनहुँ न जानाँ॥
जप तप संजम पूजा अरचा, जोतिग जग बौरानाँ।
कागद लिखि लिखि जगत भुलानाँ, मनही मन न समानाँ॥

कहै कबीर जोगी अरु जंगम, ए सब झूठी आसा।
गुर प्रसादि रटी चात्रिग ज्यूँ, निहचै भगति निवासा ॥३४॥

कितेक सिव संकर गए ऊठि,
राँम सँमाधि अजहूँ नहिं छूटि ॥ टेक ॥

प्रलै काल कहुँ कितेक भाप, गये इंद्र से अगणित लाप।
ब्रह्मा खोजि परचो गहि नाल, कहै कबीर वै राँम निराल ॥ ३५ ॥

अच्यत च्यत ए माधौ, सो सब माँहिं रुमाँनाँ।
ताहि छाडि जे आँन भजत है, ते सब भ्रमि भुलाँनाँ ॥ टेक ॥

ईस कहै मैं ध्यान न जानूँ, दुरलभ निज पद मोहीं।
रंचक करुणाँ कारणि केसो, नाम धरण कौं तोहीं ॥

कहौ धौ सबद कहाँ थैं आवै, अरु फिर कहाँ समाई।
सबद अतीत का मरम न जानैं, भ्रमि भूली दुनियाई ॥

प्यंड मुकति कहाँ ले कीजै जौ पद मुकति न होई।
प्यंडै मुकति कहत है मुनि जन, सबद अतीत था सोई ॥

प्रगट गुपत गुपत पुनि प्रगट, सो कत रहै लुकाई।
कबीर परमानंद मनाये, अकथ कथ्यौ नहीं जाई ॥ ३६ ॥

सो कछू विचारहु पंडित लोई,
जाकै रूप न रेप बरण नहीं कोई ॥ टेक ॥

उपजै प्यंड प्रान कहाँ थैं आवै, मूवा जीव जाइ कहाँ समावै।
इंद्री कहाँ करिहि विश्रामा, सो कत गया जो कहता रामाँ ॥
पंचतत तहाँ सबद न स्वाद, अलख निरंजन विद्या न वाद।
कहै कबीर मन मनहि समानाँ, तब आगम निगम झूठ करि जानाँ ॥३७॥

जौ पैं बीज रूप भगवाना,
तौ पंडित का कथिसि गियाना ॥ टेक ॥

नहीं तन नहीं मन नहीं अहंकारा, नहीं सत रज तम तीनि प्रकारा ॥
विष अमृत फल फले अनेक, वेद रु बोधक है तरु एक ॥
कहै कबीर इहै मन माना, कहिधूँ छूट कवन उरझाना ॥ ३८ ॥

पांडे कौन कुमति तोहि लागी,
तूँ राम न जपहि अभागी ॥ टेक ॥

वेद पुरान पढत अस पाँडे, खर चंदन जैसै भारा।
राँम नाँम तत समझत नाँहीं, अति पड़ै मुखि छारा ॥

वेद पढ्याँ का यहु फल पांडे, सब घटि देखै राँमाँ।
जन्म मरन थैं तौ तूँ छूटै, सुफल हूँहि सब काँमाँ ॥

जीव वधत अरु धरम कहत हौ, अधरम कहाँ है भाई ।
आपन तौ मुनिजन ह्वै बैठे, का सनि कहौ कसाई ॥
नारद कहै व्यास यौ भाषै, सुखदेव पूछौ जाई ।
कहै कबीर कुमति तब छूटै, जे रहौ राँम ल्यौ लाई ॥३९॥

पंडित वाद वदते झूठा ।
राँम कह्याँ दुनियाँ गति पावै, पाँड कह्याँ मुख मीठा ॥ टेक ॥
पावक कह्याँ पाव जे दाझै, जल कहि त्रिषा बुझाई ।
भोजन कह्याँ भूष जे भाजै, तौ सब कोई तिरि जाई ॥
नर कै साथि सूवा हरि बोलै, हरि परताप न जानै ।
जो कबहूँ उडि जाइ जँगल मे, बहुरि न सुरतै आनै ॥
साची प्रीति विषै माया सूँ, हरि भगतनि सूँ हासी ।
कहै कबीर प्रेम नही उपज्यौ, बाँध्यौ जमपुरि जासी ॥४०॥

जौ पै करता बरण विचारै,
तौ जनमत तीनि डाँडि किन सारै ॥ टेक ॥
उतपति ब्यंद कहाँ थै आया, जो धरी अरु लागी माया ।
नही को ऊँचा नही को नीचा, जाका प्यंड ताही का सीचा ॥
जे तूँ बाँभन बभनी जाया, तो आँन बाट ह्वै काहे न आया ।
जे तूं तुरक तुरकनी जाया, तौ भीतरि खतनाँ क्यूं न कराया ॥
कहै कबीर मधिम नही कोई, सो मधिम जा मुखि राम न होई ॥ ३ ॥

कथता बकता सुरता सोई,
आप विचारै सो ग्यानी होई ॥ टेक ॥
जैसे अगिन पवन का मेला, चंचल बुधि का खेला ।
नव दरवाजे दसूं दुवार, बूझि रे ग्याँनी ग्याँन विचार ॥

---

(४०) ख प्रति मे इसके आगे यह पद है—

काहे को कीजै पाँडे छोति विचारा ।
छोतिहीं तै उपना सब ससारा ॥ टेक ॥
हमारे कैसे लोहू तुम्हारै कैसे दूध ।
तुम्ह कैसे बाँम्हण पाँडे हम कैसे सूद ॥
छोति छाति करता तुम्हही जाए ।
तौ ग्रभवास काहे कौ आए ॥
जनमत छोत मरत ही छोति ।
कहै कबीर हरि की विमल जोति ॥ ४२ ॥

देही माटी बोलै पवनाँ, बूझि रे ग्यानी मूवा स कौनाँ।
मुई सुरति वाद अहंकार, वह न मुवा जो बोलणहार।
जिस कारनि तटि तीरथि जाँही, रतन पदारथ घटही माही।
पढि पढि पडित बेद बर्षाणै, भीतरि हूती बसत न जाँणै।।
हूँ न मूवा मेरी मुई बलाइ, सो न मुवा जो रह्या समाइ।
कहै कबीर गुर ब्रह्म दिखाया, मरता जाता नजरि न आया ।।४२।।

हम न मरै मरिहै ससारा,
　　हँम कूँ मिल्या जियावनहारा ।। टेक ।।
अब न मरौं मरनै मन माँना, ते मूए जिनि राँम न जाँना।
साकत मरै सत जन जीवै, भरि भरि राम रसाँइन पीवै ।।
हरि मरिहै तौ हमहूँ मरिहै, हरि न मरै हँम काहे कूँ मरिहै।
कहै कबीर मन मनहि मिलावा, अमर भये सुख सागर पावा ।। ४३ ।।

　　कौन मरै कौन जनमै आई,
　　सरग नरक कौने गति पाई ।। टेक ।।
पचतत अविगत थैं उतपनाँ, एकै किया निवासा।
बिछुरे तत फिरि सहजि समाँनाँ, रेख रही नही आसा ।।
जल मैं कुभ कुभ मैं जल है, बाहरि भीतरि पानी।
फूटा कुभ जल जलहि समानाँ, यह तत कथौ गियानी ।।
आदै गगनाँ अतै गगनाँ मधे गगनाँ माई।
कहै कबीर करम किस लागै, झूठी संक उपाई ।। ४४ ।।

कौन मरै कहु पडित जनाँ,
　　सो समझाइ कहौ हम सनाँ ।।टेक।।
माटी माटी रही समाइ, पवनै पवन लिया संग लाइ।
कहै कबीर सुनि पडित गुनी, रूप मूवा सब देखै दुनी ।।४५।।

जे को मरै मरन है मीठा,
　　गुरु प्रसादि जिनही मरि दीठा ।। टेक ।।
मुवा करता मुई ज करनी, मुई नारि सुरति बहु धरनी।
मूवा आपा मूवा माँन, परपच लेइ मूवा अभिमाँन ।।
राँम रमे रमि जे जन मूवा, कहै कबीर अविनासी हूआ ।।४६।।

जस तूँ तस तोहि कोई न जान,
　　लोग कहै सब आनहि आँन ।। टेक ।।
चारि बेद चहुँ मत का विचार, इहि भ्रँमि भूलि पर्यो ससार।
सुरित सुमृति दोइ कौ विसवास, बाझि परयौ सब आसा पास ।।

ब्रह्मादिक सनकादिक सुर नर, मैं वपुरो धूंका मैं का कर।
जिहि तुम्ह तारौ सोई पैं तिरई, कहै कबीर नाँतर बाँध्यौ मरई ॥४७॥

लोका तुम्ह ज कहत हौ नंद कौ नदन नद कहौ धु काकौ रे।
धरनि अकास दोऊ नही होते, तब यहु नंद कहाँ थौ रे ॥टेक॥

जाँमैं मरै न संकुटि आवै, नाँव निरजन जाकौ रे।
अविनासी उपजै नहि विनसै; सत सुजस कहैं ताकौ रे॥

लष चौरासी जीव जंत मैं भ्रमत नंद थाकौ रे।
दास कबीर कौ ठाकुर ऐसो, भगति करै हरि ताकौ रे ॥४८॥

निरगुण राँम निरगुण राँम जपहु रे भाई,

अविगति की गति लखी न जाई ॥ टेक ॥

चारि वेद जाकै सुमृत पुराँनाँ नौ व्याकरनाँ मरम न जाँनाँ ॥

चारि वेद जाकै गरड समाँनाँ, चरन कवल कँवला नही जाँनाँ ॥

कहै कबीर जाकै भेदै नाँही, निज जन बैठे हरि की छाहीं ॥४९॥

मैं सवनि मै औरनि मै हूं सब।

मेरी विलगि विलगि विलगाई हो,

कोई कहौ कबीर कहौ राँम राई हो ॥ टेक ॥

नाँ हम वार बूढ नाही हम ना हमरै चिलकाई हो।
पठए न जाऊँ अरवा नही आऊँ सहजि रहूँ हरिआई हो ॥

वोढन हमरे एक पछेवरा, लोक बोलैं इकताई हो ॥
जुलहे तनि बुनि पाँनि न पावल, फार बुनि दस ठाँई हो ॥

त्रिगुँण रहित फल रमि हम राखल, तव हमारौ नाँउ राँम राई हो ॥

जग मैं देखौं जग न देखै मोहि, इहि कबीर कछु पाई हो ॥५०॥

लोका जानि न भूलौ भाई।

खालिक खलक खलक मैं खालिक, सब घट रह्यौ समाई ॥ टेक ॥

अला एकै नूर उपनाया, ताकी कैसी निंदा।
ता नूर थैं सब जग कीया, कौन भला कौन मदा ॥

ता अला की गति नहीं जाँनी गुरि गुड दीया मीठा ॥
कहै कबीर मैं पूरा पाया, सब घटि साहिब दीठा ॥ ५१ ॥

राँम मोही तारि कहाँ लै जैहो।
सो वैकुंठ कहौ धूं कैसा, करि पसाव मोहि दैहो ॥ टेक ॥
जे मेरे जीव दोइ जाँनत हौ, तौ मोहि मुकति बताओ।
एकमेक रमि रह्या सबनि मैं, तो काहे भरमावौ ॥

---

(५०) ख—ना हम वार बूढ़ पुनि नाँही।

यहु रस पीवै गूंगा गहिला, ताकी कोई न बूझै सार रे।
कहै कबीर महा रस महँगा, कोई पीवेगा पीवणहार रे ॥७१॥

अवधू मेरा मन मतिवारा।
उन्मनि चढ्या मगन रस पीवै त्रिभवन भया उजियारा ॥ टेक ॥
गुड़ करि ग्यान ध्यांन कर महुवा भव भाठी करि भारा।
सुषमन नारी सहजि समानी, पीयै पीवनहारा ॥
दोइ पुड जोड़ि चिगाई भाठी, चुया महा रस भारी।
काम क्रोध दोइ किया पलीता, छूटि गई संसारी ॥
सुनि मंडल मैं मंदला बाजै, तहाँ मेरा मन नाचै।
गुर प्रसादि अमृत फल पाया, सहजि सुषमनाँ काछै ॥
पूरा मिल्या तबै सुष उपज्यौ, तन की तपनि बुझानी।
कहै कबीर भवबंधन छूटै, जोतिहि जोति समानी ॥७२॥

छाकि परयो आतम मतिवारा,
पीवत रांम रस करत बिचारा ॥ टेक ॥
बहुत मोलि महँगे गुड पावा, लै कसाब रस रांम चुवावा ॥
तन पाटन मैं कीन्ह पसारा, माँगि माँगि रस पीवै बिचारा।
कहै कबीर फाबी मतिवारी, पीवत राम रस लगी खुमारी ॥७३॥

बोलौ भाई राम की दुहाई।
इहि रसि सिव सनकादिक माते, पीवत अजहूँ न अघाई ॥ टेक ॥
इला प्यंगुला भाठी कीन्ही ब्रह्म अगनि परजारी।
ससि हर सूर द्वार दस मूंदे, लागी जोग जुग तारी ॥
मन मतिवाला पीवै रांम रस, दूजा कछू न सुहाई।
उलटी गंग नीर बहि आया, अमृत धार चुवाई ॥
पंच जने सो संग करि लीन्हे, चलत खुमारी लागी।
प्रेम पियालै पीवन लागे, सोवत नागिनी जागी ॥
सहज सुंनि में जिनि रस चाष्या; सतगुर थैं सुधि पाई।
दास कबीर इही रसि माता, कबहूँ उछकि न जाई ॥७४॥

---

(७१) ख—चंद सूर दोइ किया पयाना।
उनमनि चढ्या महारस पीवै,
(७२) ख—पूरा मिल्या तबै सुष उपनाँ।

रांम रस पाईया रे,
ताथैं विसरि गये रस और ।।टेक।।
रे मन तेरा को नही खैंचि लेइ जिनि भार ।
विरषि वसेरा पषि का, ऐसा माया जाल ।।
और मरत का रोइए जो आया थिर न रहाइ ।।
जो उपज्या सो विनसिहै ताथैं दुख करि मरै वलाइ ।।
जहाँ उपज्या तहाँ फिरि रच्या रे, पीवत मरदन लाग ।।
कहै कवीर चित चेतिया, ताथैं रांम सुमरि वैराग ।।७५।।

रॉम चरन मनि भाए रे ।
अस ढरि जाहु राँय के करहा, प्रेम प्रीति ल्यौ लाये रे ।।टेक।।
आंब चढी अवली रे अवली ववूर चढी नगवेली रे ।
द्वै रथ चढि गयौ रॉड कौ करहा मनह पाट की सैली रे ।।
ककर कूई पताालि पनियाँ, सूनैं वूंद विकाई रे ।
वजर परौ इति मथुरा नगरी, काँन्ह पियासा जाई रे ।।
एक दहिड़िया दही जमायौ, दुसरी परि गई साई रे ।
न्यूँति जिमाऊँ अपनौं करहा, छार मुनिस कौ डारी रे ।।
इहि वँनि वाजै मदन भेरि रे, उहि वँनि वाजै तूरा रे ।
इहि वँनि खेले राही रुकमनि, उहि वनि कान्ह अहीरा रे ।।
आसि पासि तुरमी कौ विरवा, माँहि द्वारिका गाँऊँ रे ।
तहाँ मेरौ ठाकुर रांम राइ है, भगत कवीरा नाऊँ रे ।।७६।।

थिर न रहै चित थिर न रहै, च्यतामणि तुम्ह कारणि हौ ।
मन मैंले मै फिर फिर आहौ, तुम सुनहुँ न दुख विसरावन हो ।।टेक।।
प्रेम खटोलवा कसि कसि वाँध्यो, विरह वान तिहि लागू हो ।
तिहि चढि इंदऊ करत गवँसिया, अतरि जमवा जागू हो ।।
महरू मछा मारि न जानै, गहरे पैठा धाई हो ।।
दिन इक मगरमछ लै खैहै, तव को रखिहै वधन भाई हो ।।
महरू नाँम हरइये जॉनैं सवद न वूझै वौरा हो ।
चारैं लाइ सकल जग खायो, तऊ न भेटि निसहुरा हो ।।
जौ महराज चाहौ महरईये, तौ नाथौ ए मन वौरा हो ।
तारी लाइकैं सिष्टि विचारौ, तव गहि भेटि निसहुरा हो ।।
टिकुटी भइ काँन्ह के कारणि, भ्रमि भ्रमि तीरथ कीन्हाँ हो ।
सो पद देहु मोरि मदन मनोहर, जिहि पदि हरि मै चीन्हाँ हो ।।
दास कवीर कीन्ह अस गहरा, वूझै कोई महरा हो ।
यह ससार जात मे देखौ, ठाढ़ौ रहौ कि निहुरा हो ।।७७

तारण तिरण जबै लग कहिये, तब लग तत न जांनां।
एक राँम देख्या सबहिन मैं कहै कबीर मन मांनां ॥ ५२ ॥

सोहं हंसा एक समान, काया के गुंण आँनही आन ॥ टेक ॥
माटी एक सकल संसारा, बहुविधि भांडे घड़ै कुंभारा।
पंच वरन दस दुहिये गाइ, एक दूध देखौ पतिआइ ॥
कहै कबीर संसा करि दूरि त्रिभवननाथ रह्या भरपूर ॥ ५३ ॥

प्यारे राँम मनही मनां।
कासूं कहूँ कहन कौ नांही, दूसरा और जनां ॥ टेक ॥
ज्यूं दरपन प्रतिब्यंब देखिये आप दवासूं सोई।
संसौ मिट्यौ एक कौ एकै, महा प्रलै जब होई ॥
जौ रिझऊँ तौ महा कठिन है, बिन रिझयैं थैं सब खोटी।
कहै कबीर तरक दोइ साधैं, ताकी मति है मोटी ॥ ५४ ॥

हँम तौ एक एक करि जाँनाँ।
दोइ कहै तिनही कौं दोजग, जिन नाँहिन पहिचाँनाँ ॥ टेक ॥
एकै पवन एक ही पानी, एक जोति संसारा ॥
एक ही खाक घडे सब भांडे, एक ही सिरजनहारा ॥
जैसै बाढी काष्ट ही काटै, अगिनि न काटै कोई ॥
सब घटि अंतरि तूंही व्यापक, धरै सरूपै सोई।
माया मोहे अर्थ देखि करि, काहै कूं गरबाँनाँ ॥
निरभै भया कछू नांहि व्यापै, कहै कबीर दिवाँनाँ ॥ ५५ ॥

अरे भाई दोइ कहा सो मोहि बतावौ,
बिचिही भरम का भेद लगावौ ॥ टेक ॥
जोनि उपाइ रची द्वै धरनी दीन एक बीच भई करनी।
राँम रहीम जपत सुधि गई, उनि माला उनि तसबी लई ॥
कहै कबीर चेतहु रे भौंदू, बोलनहारा तुरक न हिंदू ॥ ५६ ॥

ऐसा भेद बिगूचन भारी।
वेद कतेब दीन अरु दुनियाँ, कौन पुरिष कौन नारी ॥ टेक ॥
एक बूंद एकै मल मूतर, एक चाँम एक चाँम एक गूदा।
एक जोति थैं सब उतपनां, कौन बाँम्हन कौन सूदा ॥
माटी का प्यंड सहजि उतपनाँ, नाद रु ब्यंद समाँनाँ।
बिनसि गयाँ थैं का नाँव धरिहौ, पढ़ि गुनि हरि भ्रँन जाँना ॥
रज गुन ब्रह्मा तम गुन संकर, सत गुन हरि है सोई।
कहै कबीर एक राँम जपहु रे, हिंदू तुरक न कोई ॥ ५७ ॥

हँमारैं राँम रहीम करीमा केसो, अलाह राँम सति सोई।
विसमिल मेटि विसभर एकै, और न दूजा कोई।।टेक।।
इनकै काजी मूलाँ पीर पैकंवर, रोजा. पछिम निवाजा।
इनकै पूरब दिसा देव दिज पूजा, ग्यारसि गग दिवाजा।।
तुरक मसीति देहुरैं हिंदू, दहूँठा राँम खुदाई।
जहाँ मसीति देहुरा नाँही, तहाँ काकी ठकुराई।।
हिंदू तुरक दोऊ रह तूटी, फूटी अरु कनराई।
अरध उरध दसहूँ दिस जित तित, पूरि रह्या राम राई।।
कहै कबीरा दास फकीरा, अपनी रहि चलि भाई।
हिंदू तुरक का करता एकै, ता गति लखी न जाई।।५८।।
काजी कौन कतेब बषांनै।
पढ़त पढत केते दिन बीते, गति एकै नही जानै।।टेक।।
सकति से नेह पकरि करि सुंनति, वहु नबदूं रे भाई।
जौर षुदाइ तुरक मोहि करता, तौ आपैं कटि किन जाई।।
हौं तौ तुरक किया करि सुनति, औरति सौ का कहिये।
अरध सरीरी नारि न छूटै, आधा हिंदू रहिये।।
छाँड़ि कतेब राँम कहि काजी, खून करत हौ भारी।
पकरी टेक कबीर भगति की, काजी रहै झष मारी।।५९।।
मुलाँ कहाँ पुकारै दूरि,
राँम रहीम रह्या भरपूरि।।टेक।।
यहु तौ अलह गूंगा नाँही, देखै खलक दुनी दिल माँही।।
हरि गुँन गाइ बग मैं दीन्हाँ, काम क्रोध दोऊ विसमल कीन्हाँ।
कहै कबीर यह मुलना झूठा, राम रहीम सबनि मैं दीठा।।६०।।
पढि ले काजी बग निवाजा,
एक मसीति दसौ दरवाजा।।टेक।।
मन करि मका कबिला करि देही, बोलनहार जगत गुर येही।।
उहाँ न दोजग भिस्त मुकाँमाँ, इहाँ ही राँम इहाँ रहिमाँनाँ।।
विसमल ताँमस भरम कै दूरी, पंचूँ भयि ज्यूँ होइ सबूरी।।
कहै कबीर मैं भया दिवाँनाँ, मनवाँ मुसि मुसि सहजि समानाँ।।६१।।

---

(३१) ख—मन करि मका कबिला कर देही।
राजी समझि राह गति येही।

मुलाँ करि ल्यौ न्याव खुदाई,
इहि विधि जीव का भरम न जाई ॥टेक॥
सरजी आँनै देह विनासै, माटी विसमल कीता ।
जोति सरूपी हाथि न आया, कहौ हलाल क्या कीता ॥
वेद कतेव कहौ क्यूं झूठा, झूठा जोनि विचारै ।
सव घटि एक एक करि जाँनै, भौ दूजा करि मारै ॥
कुकड़ी मारै वकरी मारै, हक हक हक करि वोलै ।
सवै जीव साँई के प्यारे, उवरहुगे किस वोलै ॥
दिल नही पाक पाक नही चीन्हां, उसदा पोजन जांनां ।
कहे कवीर भिसति छिटकाई, दोजग ही मन मांनां ॥६२॥

या करीम वलि हिकमति तेरी ।
खाक एक सूरति वहु तेरी ॥टेक॥
अर्ध गगन मे नीर जमाया, वहुत भाति करि नूरनि पाया ॥
अवलि आदम पीर मुलांनां, तेरी सिफति करि भये दिवाना ॥
कहे कवीर यहु हत विचारा, या रव या रव यार हमारा ॥६२॥

काहे री नलनी तूं कुम्हिलांनी
तेरे ही नालि सरोवर पांनी ॥टेक॥
जल मैं उतपति जल मे वास, जल मे नलनी तोर निवास ॥
ना तलि तपति न ऊपरि आगि, तोर हेतु कहु कामनि लागि ॥
कहै कवीर जे उदिक समान, ते नही मूए हँमरें जान ॥६५॥

इव तूं हसि प्रभू मे कुछ नाँही,
पडित पढि अभिमाँन नसाँही ॥टेक॥
मैं मै मैं जव लग मैं कीन्हा, तव लग मैं करता नही चीन्हाँ ।
कहै कवीर मुनहु नरनाहा, नाँ हम जीवत न मूंवाले माहाँ ॥६५॥

अव का डरौं डर डरहि समाँनाँ
जव थै मोर तोर पहिचाँनाँ ॥ टेक ॥
जव लग मोर तोर करि लीन्हा, भै भै जनमि जनमि दुख दीन्हा ॥
अगम निगम एक करि जाँनाँ, ते मनवाँ मन माँहि समाना ॥
जव लग ऊँच नीच करि जनाँ, ते पसुवा भूले भ्रंम नाँना ।
कहि कवीर मैं मेरी खोई, तवहि राँम अवर नही कोई ॥६६॥

---

(३२) ख—उसका खोज न जाँनाँ ।

बोलनाँ का कहिये रे भाई

बोलत बोलत तत नसाई ॥ टेक ॥

बोलत बोलत बढ़ै विकारा, बिन बोल्याँ क्यूँ होइ विचारा ॥
संत मिलै कछु कहिये कहिये, मिलै असंत मुष्टि करि रहिये ॥
ग्याँनी सूँ बोल्या हितकारी मूरिख सूँ बोल्याँ झष मारी ॥
कहै कबीर आधा घट डोलै, भर्‌या होइ तौ मुषाँ न बोलै ॥६७॥

बागड देस लूचन का घर है,

तहाँ जिनि जाइ दाझन का डर है ॥ टेक ॥

सब जग देखौं कोई न धीरा, परत धूरि सिरि कहत अबीरा ॥
न तहाँ तरवर न तहाँ पाँणी, न तहाँ सतगुरु साधू बाँणी ॥
न तहाँ कोकिला न तहाँ सूवा, ऊँचै चढि चढ़ि हंसा मूवा ॥
देश मालवा गहर गभीर डग डग रोटी पग पग नीर ॥
कहै कबीर घरही मन मानाँ, गूँगै का गुड गूँगै जानाँ ॥६८॥

अवधू जोगी जग थै न्यारा ।
मुद्रा निरति सुरति करि सींगी, नाद न षंडै धारा ॥ टेक ॥
बसै गगन मैं दुनी न देखै, चेतनि चौकी बैठा ।
चढि अकास आसण नही छाड़ै, पीवै महा रस मीठा ॥
परगट कंथाँ माहै जोगी दिल मैं दरपन जोवै ।
सहँस इकीस छ सै धागा, निहचल नाकै पोवै ॥
ब्रह्म अगनि मैं काया जारै; त्रिकुटी संगम जागै ।
कहै कबीर सोई जोगेश्वर, सहज सुंनि ल्यौ लागै ॥६९॥

अवधू गगन मंडल घर कीजै ।
अमृत झरै सदा सुख उपजै, बंक नालि रस पीजै ॥ टेक ॥
मूल बाँधि सर गगन समाना, सुखमन यों तन लागी ।
काम क्रोध दोऊ भया पलीता, तहाँ जोगणी जागी ॥
मनवाँ जाइ दरीबै बैठा, मगन भया रसि लागा ।
कहै कबीर जिय संसा नाँही, सबद अनाहद बागा ॥७०॥

कोई पीवै रे रस राम नाम का, जो पीवै सो जोगी रे ।
संतौ सेवा करौ राम की, और न दूजा भोगी रे ॥ टेक ॥
यहु रस तौ सब फीका भया, ब्रह्म अगनि परजारी रे ।
ईश्वर गौरी पीवन लागे, राँम तनी मतिवारी रे ॥
चंद सूर दोइ भाठी कीन्ही सुषमनि चिगवा लागी रे ।
अमृत कूँ पी साँचा पुरया, मेरी त्रिष्णाँ भागी रे ॥

यहु रस पीवै गूंगा गहिला, ताकी कोई न बूझै सार रे।
कहै कबीर महा रस महँगा, कोई पीवेगा पीवणहार रे ॥७१॥

अवधू मेरा मन मतिवारा।
उन्मनि चढ्या मगन रस पीवै त्रिभवन भया उजियारा ॥ टेक ॥
गुड़ करि ग्यान ध्यांन कर महुवा भव भाठी करि भारा।
सुषमन नारी सहजि समानी, पीयै पीवनहारा ॥
दोइ पुड़ जोड़ि चिगाई भाठी, चुया महा रस भारी।
काम क्रोध दोइ किया पलीता, छूटि गई संसारी ॥
सुनि मंडल मैं मंदला बाजै, तहाँ मेरा मन नाचै।
गुर प्रसादि अमृत फल पाया, सहजि सुषमनां काछै ॥
पूरा मिल्या तबै सुष उपज्यौ, तन की तपनि बुझानी।
कहै कबीर भवबंधन छूटै, जोतिहि जोति समानी ॥७२॥

छाकि परचो आतम मतिवारा,
पीवत रांम रस करत बिचारा ॥ टेक ॥
बहुत मोलि महँगे गुड़ पावा, लै कसाब रस रांम चुवावा ॥
तन पाटन मैं कीन्ह पसारा, माँगि माँगि रस पीवै बिचारा।
कहै कबीर फाबी मतिवारी, पीवत राम रस लगी खुमारी ॥७३॥

बोलौ भाई राम की दुहाई।
इहि रसि सिव सनकादिक माते, पीवत अजहूँ न अघाई ॥ टेक ॥
इला प्यंगुला भाठी कीन्हीं ब्रह्म अगनि परजारी।
ससि हर सूर द्वार दस मूंदे, लागी जोग जुग तारी ॥
मन मतिवाला पीवै रांम रस, दूजा कछू न सुहाई।
उलटी गंग नीर बहि आया, अमृत धार चुवाई ॥
पंच जने सो सँग करि लीन्हे, चलत खुमारी लागी।
प्रेम पियालै पीवन लागे, सोवत नागिनी जागी ॥
सहज सुंनि में जिनि रस चाप्या; सतगुर थै सुधि पाई।
दास कबीर इही रसि माता, कबहूँ उछकि न जाई ॥७४॥

---

(७१) ख—चंद सूर दोइ किया पयाना।
उनमनि चढ्या महारस पीवै,
(७२) ख—पूरा मिल्या तबै सुष उपनां।

रांम रस पाईया रे,
ताथै विसरि गये रस और ।।टेक ।।
रे मन तेरा को नही खैचि लेइ जिनि भार ।
विरषि वसेरा पषि का, ऐसा माया जाल ।।
और मरत का रोइए जो आया थिर न रहाइ ।।
जो उपज्या सो विनसिहै ताथै दुख करि मरै वलाइ ।।
जहाँ उपज्या तहाँ फिरि रच्या रे, पीवत मरदन लाग ।।
कहै कवीर चित चेतिया, ताथै रांम सुमरि वैराग ।।७५।।

रांम चरन मनि भाए रे ।
अस ढरि जाहु रांय के करहा, प्रेम प्रीति ल्यौ लाये रे ।।टेक।।
आंव चढी अवली रे अवली ववूर चढी नगवेली रे ।
द्वै रथ चढि गयौ रांड कौ करहा. मनह पाट की सैली रे ।।
ककर कूई पतालि पनियाँ, सूनै वूंद विकाई रे ।
वजर परौ इति मथुरा नगरी, कान्ह पियासा जाई रे ।।
एक दहिडिया दही जमायौ, दुसरी परि गई साई रे ।
न्यूंति जिमाऊँ अपनां करहा, छार मुनिस कौ डारी रे ।।
इहि वँनि वाजै मदन भेरि रे, उहि वँनि वाजे तूरा रे ।
इहि वँनि खेले राही रुकमनि, उहि बनि कान्ह अहीरा रे ।।
आसि पासि तुरमी कौ विरवा, मांहि द्वारिका गाऊँ रे ।
तहाँ मेरो ठाकुर रांम राइ है, भगत कवीरा नाऊँ रे ।।७६।।

थिर न रहै चित थिर न रहै, च्यतामणि तुम्ह कारणि हो ।
मन मैले मैं फिर फिर आहौ, तुम सुनहुँ न दुख विसरावन हो ।।टेक।।
प्रेम खटोलवा कसि कसि वाँध्यो, विरह वान तिहि लागू हो ।
तिहि चढि इदऊ करत गवैंसिया, अतरि जमवा जागू हो ।।
महरू मछा मारि न जानै, गहरे पैठा धाई हो ।।
दिन इक मगरमछ लै खैहै, तव को रखिहै वधन भाई हो ।।
महरू नॉम हरइये जांनै सवद न वूझै वौरा हो ।
चारै लाइ सकल जग खायो, तऊ न भेटि निसहुरा हो ।।
जौ महराज चाहौ महरईये, तौ नाथौ ए मन वौरा हो ।
तारी लाइकै सिष्टि विचारौ, तव गहि भेटि निसहुरा हो ।।
टिकुटी भइ कॉन्ह के कारणि, भ्रमि भ्रमि तीरथ कीन्हाँ हो ।
सो पद देहु मोरि मदन मनोहर, जिहि पदि हरि मै चीन्हाँ हो ।।
दास कवीर कीन्ह अस गहरा, वूझै कोई महरा हो ।
यह ससार जात मे देखौ, ठाढ़ौ रहौ कि निहुरा हो ।।७७

बीनती एक राँम सुनि थोरी,
अब न बचाइ राखि पति मोरी ॥ टेक ॥
जैसैं मदला तुमहि बजावा, तैसैं नाचत मैं दुख पावा ॥
जे मसि लागी सबै छुड़ावौ, अब मोहि जनि बहु रूप कछावौ ॥
कहै कबीर मेरी नाच उठावौ, तुम्हारे चरन कवल दिखलावौ ॥७८॥

मन थिर रहै न घर ह्वै मेरा,
इन मन घर जारे बहुतेरा ॥ टेक ॥
घर तजि बन बाहरि कियौ बास, घर बन देखौं दोऊ निरास ॥
जहाँ जाँऊँ तहाँ सोग संताप, जुरा मरण कौ अधिक बियाप ॥
कहै कबीर चरन तोहि बंदा, घर मैं घर दे परमानंदा ॥७९॥

कैसे नगरि करौं कुटवारी,
चंचल पुरिष बिचषन नारी ॥ टेक ॥
बैल बियाइ गाइ भई बांझ, बछरा दूहै तीन्यूं सांझ ॥
मकड़ी घरि माषी छछिहारी, मास पसारि चील्ह रखवारी ॥
मूसा खेवट नाव बिलइया, मींडक सोवै सांप पहरइया ॥
निति उठि स्याल स्यंघ सूं झूझै, कहै कबीर कोई बिरला बूझै ॥८०॥

माई रे चूंन बिलूंटा खाई,
बाघनि संगि भई सबहिन कै, खसम न भेद लहाई ॥टेक॥
सब घर फोरि बिलूंटा खायौं, कोई न जानैं भेव ।
खसम निपूतौ आँगणि सूतौ, राँड न देई लेव ॥
पाड़ोसनि पनि भई बिराँनी, माँहि हुई घर घालैं ।
पंच सखी मिली मंगल गांवैं, यह दुख याकौं सालैं ॥
द्वै द्वै दीपक घरि घरि जोया, मंदिर सदा अँधारा ।
घर घेहर सब आप सवारथ, बाहरि किया पसारा ॥
होत उजाड़ सबै कोई जानैं, सब काहू मनि भावै ॥
कहै कबीर मिलै जौ सतगुरु, तौ यहु चून छुड़ावै ॥८१॥

बिषिया अजहू सुख आसा,
हूँण न देइ हरि के चरन निवासा ॥ टेक ॥
सुख माँगै दुख पहली आवै, तातैं सुख माँग्यां नहीं भावै ।
जा सुख थैं सिव बिरंचि डराँनाँ, सो सुख हमहु साच करि जाना ।
सुखि छचाड्या तब सब दुख भागा, गुर के सबद मेरा मन लागा ॥

---

(८१) ख—खसम न भेद लपाई ॥

निस वासुरि विषैतनाँ उपगार, विषई नरकि न जाताँ बार ॥
कहै कबीर चंचल मति त्यागी, तब केवल राँम नाँम ल्यौ लागी ॥८२॥

तुम्ह गारड़ मैं विष का माता,
काहै न जिवावौ मेरे अंमृतदाता ॥ टेक ॥
संसार भवगम डसिले काया, अरु दुखदारन व्यापै तेरी माया ॥
सापनि एक पिटारै जागै, अह निसि रोवै ताकूँ फिरि फिरि लागै ।
कहै कबीर को को नही राखै, राम रसाँइन जिनि जिनि चाखै ॥८३॥

माया तजूँ तजी नही जाइ,
फिर फिर माय मोहि लपटाइ ॥ टेक ॥
माया आदर माया माँन, माया नही तहाँ ब्रह्म गियाँन ॥
माया रस माया कर जाँन, माया कारनि तजै परान ॥
माया जप तप माया जोग, माया बाँधे सबही लोग ॥
माया जल थलि माया आकासि, माया व्यापि रही चहूँ पासि ॥
माया माता माया पिता, असि माया अस्तरी सुता ॥
माया मारि करै व्यौहार, कहै कबीर मेरे राँम अधार ॥८४॥

ग्रिह जिनि जाँनौ रूड़ौ रे ।
कंचन कलस उठाइ लै मंदिर, राम कहे बिन धूरौ रे ॥ टेक ॥
इन ग्रिह मन डहके सबहिन के, काहू कौ परचौ न पूरौ रे ॥
राजा राँणाँ राव छत्रपति, जरि भये भसम कौ कूरौ रे ॥
सबथैं नीकी संत मँडलिया, हरि भगतनि कौ भेरौ रे ॥
गोविंद के गुन बैठे गेहै, खैहै टूकौ टेरौ रे ॥
ऐसौ जानि जाँपौ जगजीवन, जग सूँ तिनका तोरौ रे ॥
कहै कबीर राम भजबे कौ, एक आध कोई सूरौ रे ॥८५॥

रजसि मीन देखी बहु पानी,
काल जाल की खबरि न जानी ॥ टेक ॥
गारै गरब्यौ औघट घाट, सो जल छाड़ि बिकानौ हाट ॥
बँध्यौ न जानै जल उदमादि, कहै कबीर सब मोहे स्वादि ॥८६॥

काहे रे मन दह दिस धावै,
विषिया संगि संतोष न पावै ॥टेक॥
जहाँ जहाँ कलपै तहाँ बधनाँ, रतन कौ थाल कियौ तैं रंधनाँ ॥
जौ पै सुख पइयत इन माँही, तौ राज छाड़ि कत बन कौ जाँही ॥

(८२) ख—हौंन न देई हरि के चरन निवास ॥

आनँद सहत तजौ विष नारी, अब क्या झीषै पतित भिपारी ॥
कहै कबीर यहु सुख दिन चारि, तजि विषिया भजि चरन मुरारि ॥८७॥

जियरा जाहिगौ मैं जाँनाँ ।
जो देखा सो वहुरि न पेष्या, माटी सूँ लपटांनाँ ॥ टेक ॥
वाकुल बसतर किया पहरिबा, का तप वनखंडि वासा ॥
कहा मुगध रे पाँहन पूजै, काजल डारै गाता ॥
कहै कबीर सुर मुनि उपदेसा, लोका पंथि लगाई ।
सुनौ संतौ सुमिरौ भगत जन, हरि बिन जनम गवाई ॥८८॥

हरि ठग जग कौ ठगौरी लाई,
हरि कै वियोग कैसै जीऊँ मेरी माई ॥ टेक ॥
कौन पुरिष को काकी नारी, अभिअंतरि तुम्ह लेहु बिचारी ॥
कौन पूत को काको बाप, कौन मरै कौन करै संताप ॥
कहै कबीर ठग सौं मन माना, गई ठगौरी ठग पहिचाना ॥८९॥

साईं मेरे साजि दई एक डोली,
हस्त लोक अरु मैं तैं बोली ॥ टेक ॥
इक झंझर सम सूत खटोला, त्रिस्ना बाव चहूँ दिसि डोला ॥
पाँच कहार का भरम न जाना, एकै कह्या एक नहीं माना ॥
भूमर घाम उहार न छावा, नैहर जात बहुत दुख पावा ॥
कहै कबीर वर बहु दुख सहिये, राम प्रीति करि संगही रहिये ॥९०॥

बिनसि जाइ कागद की गुड़िया,
जब लग पवन तबै लग उडिया ॥टेक॥
गुडिया कौ सबद अनाहद बोलै, खसम लियें कर डोरी डोलै ।
पवन थक्यो गुडिया ठहरानी, सीस धुनैं धुनि रोवै प्रांनी ॥
कहै कबीर भजि सारगपानी, नाहीं तर ह्वैहै खैंचा तानी ॥९१॥

मन रे तन कागद का पुतला ।
लागै बूंद बिनसि जाइ छिन मे, गरब करै क्या इतना ॥टेक॥
माटी खोदहिं भीत उसारैं, अंध कहै घर मेरा ।
आवै तलब बाँधि लै चालै, बहुरि न करिहै फेरा ॥
खोट कपट करि यहु धन जोर्‌यो, लै धरती मैं गाड़्यौ ।
रोक्यो घटि साँस नही निकसै, ठौर ठौर सब छाड़्यौ ॥
कहै कबीर नट नाटिक थाके, मदला कौन बजावै ॥
गये पपनियाँ उझरी बाजी, को काहू कै आवै ॥९२॥

---

(९०)—कहै कबीर बहुत दुख सहिए ।

झूठे तन कौ कहा रखइये]

मरिये तौ पल भरि रहण न पइये ॥ टेक ॥

षीर षांढ घृत प्यंड सँवारा, प्रांन गयें ले वाहरि जारा ॥
चोवा चंदन चरचत अंगा, सो तन जरै काठ के संगा ॥
दास कवीर यहु कीन्ह विचारा, इक दिन ह्वैहै हाल हमारा ॥६३॥

देखहु यह तन जरता है;

घडी पहर विलँवौ रे भाई जरता है ॥टेक॥

काहे कौ एता किया पसारा, यह तन जरि वरि ह्वैहै छारा ॥
नव तन द्वादस लागी आगी, मुगध न चेतै नख सिख जागी ॥
काँम क्रोध घट भरे विकारा, आपहि आप जरै संसारा ॥
कहै कवीर हम मृतक समाँनां, राम नाम छूटै अभिमाना ॥६४॥

तन राखनहारा को नाही,

तुम्ह सोच विचारि देखौ मन माँही ॥टेक॥

जोर कुटंव आपनौ करि पारचौ, मुड ठोकि ले वाहरि जारचौ ॥
दगाबाज लूटै अरु रोवै, जारि गाडि पुर षोजहि षोवै ॥
कहत कवीर सुनहुँ रे लोई, हरि विन राखनहार न कोई ॥६५॥

अव क्या सोचै आइ वनी,

सिर पर साहिव राम धनी ॥टेक॥

दिन दिन पाप वहुत मैं कीन्हा, नही गोव्यंद की सक मनी ॥
लेटचो भोमि वहुत पछितानौ, लालचि लागौ करत धनी ॥
छूटी फौज आँनि गढ घेरचौ, उडि गयौ गूडर छाडि तनी ॥
पकरचौ हंस जम ले चाल्यौ, मंदिर रोवै नारि घनी ॥
कहै कवीर राम किन सुमिरत, चीन्हत नाहिन एक चिनी ॥
जव जाइ आइ पड़ोसी घेरचौ, छाँडि चल्यौ तजि पुरिष पनी ॥६६॥

सुवटा डरपत रहु मेरे भाई, तोहि डराई देत विलाई ॥
तीनि वार रूँधै इक दिन मैं, कवहुँ कै खता खवाई ॥टेक॥
या मंजारी मुगध न माँनै, सव दुनियाँ डहकाई ॥
राणाँ राव रंक कौं व्यापै, करि करि प्रीति सवाई ॥
कहत कवीर सुनहु रे सुवटा, उवरै हरि सरनाई ।
लापौं माँहि तैं लेत अचानक, काहू न देत दिखाई ॥६७॥

का माँगू कुछ थिर न रहाई,

देखत नैंन चल्या जग जाई ॥टेक॥

इक लप पूत सवा लष नाती, ता रावन घरि दिया न वाती ॥

लका सी कोट समद सी खाई, ता रावन की खबरि न पाई ॥
आवत सग न जात संगाती, कहा भयौ दरि बाँधे हाथी ॥
कहै कबीर अत की बारी, हाथ झाडि जैसै चले जुवारी ॥९८॥

राम थोरे दिन कौं का धन करना,
धधा बहुत निहाइति मरना ॥टेक॥
कोटी धज साह हस्ती बँध राजा, क्रिपन को धन कौंनैं काजा ॥
धन कै गरवि राम नही जाना, नागा ह्वै जम पै गुदरांनां ॥
कहै कबीर चेतहु रे भाई, हस गया कछु सगि न जाई ॥९९॥

काह कूँ माया दुख करि जोरी
हाथि चूँन गज पाँच पछेवरी ॥टेक॥
नाँ को बध न भाई साँथी, बाँधे रहे तुरगम हाथी ॥
मैडी महल बावडी छाजा, छाडि गये सब भूपति राजा ॥
कहै कबीर राम ल्यौ लाई, धरी रही माया काहू खाई ॥१००॥

माया का रस पाण न पावा,
तब लग जम बिलवा ह्वै धावा ॥टेक॥
अनेक जतन करि गाडि दुराई, काहू सांची काहू खाई ॥
तिल तिल करि यहु माया जोरी, चलति बेर तिणां ज्यूँ तोरी ॥
कहै कबीर हूँ ताका दास, माया माँहै रहै उदास ॥१०१॥

मेरी मेरी दुनियाँ करते, मोह मछर तन धरते,
आगै पीर मुकदम होते, वै भी गये यौं करते ॥टेक॥
किसकी ममा चचा पुनि किसका, किसका पगड़ा जोई ॥
यहु ससार बजार मड्या है, जानैगा जग कोई ॥
मैं परदेसी काहि पुकारौं, इहाँ नही को मेरा ॥
यहु ससार ढूँढि सब देख्या, एक भरोसा तेरा ॥
खाँहि हलाल हरांम निवारैं, भिस्त तिनहु कौं होई ॥
पच तत का मरम न जानै दो जगि पडिहै सोई ॥
कुटब कारणि पाप कमावै, तू जांणै घर मेरा ॥
ए सब मिले आप सवारथ, इहाँ नही को तेरा ॥
सायर उतरौ पथ सँवारौ, बुरा न किसी का करणाँ ॥
कहै कबीर सुनहु रे सतौ, ज्वाब खसम कूँ भरणा ॥१०२॥

---

(१००) ख—मैंडी महल अरु सोभित छाजा ।
(१०२) ख—मेरी मेरी सब जग करता ।

रे यामैं क्या मेरा क्या तेरा,
लाज न मरहि कहत घर मेरा ॥ टेक ॥
चारि पहर निस भोरा, जैसे तरवर पखि बसेरा ॥
जैसैं बनिये हाट पसारा, सब जग का सो सिरजनहारा ॥
ये ले जारे वैं ले गाडे, इनि दुखिइनि दोऊ घर छाडे ।
कहत कबीर सुनहु रे लोई, हम तुम्ह बिनसि रहैगा सोई ॥१०३॥

नर जाँणै अमर मेरी काया,
घर घर बात दुपहरी छाया ॥ टेक ॥
मारग छाड़ि कुमारग जोवै, आपण मरै और कूँ रोवै ।
कछू एक किया कछू एक करणा, मुगध न चेतै निहचैं मरणाँ ॥
ज्यूँ जल बूँद तैसा संसारा उपजत बिनसत लागै न बारा ।
पंच पपुरिया एक सरीरा, कृष्ण कवल दल भवर कबीरा ॥१०४॥

मन रे अहरपि वाद न कीजै

अपनाँ सुकृत भरि भरि लीजै ॥ टेक ॥
कुँभरा एक कमाई माटी, बहु विधि जुगति बणाई ।
एकनि मैं मुकताहल मोती, एकनि व्याधि लगाई ॥
एकनि दीना पाट पटबर एकनि सेज निवारा ।
एकनि दीनी गरैं गूदरी, एकनि सेज पयारा ॥
साची रही सूँम की सपति, मुगध कहै यहु मेरी ॥
अत काल जब आइ पहूँचा, छिन मे कीन्ह न बेरी ।
कहत कबीर सुनी रे सतों, मेरी मेरी सब झूठी ॥
चड़ा चीथडा चूहड़ा ले गया तणी तणगती टूटी ॥१०५॥

हड़ हड हड हड हसती है, दीवाँनपनाँ क्या करती है ।
आडी तिरछी फिरती है, क्या च्यौंच्यौ म्यौंम्यौ करती है ॥
क्या तू रगी क्या तूँ चंगी, क्या सुख लौड़ै कीन्हाँ ।
मीर मुकदम सेर दिवाँनी, जगल केर पजीना ॥
भूले भरमि कहा तुम्ह राते, क्या मदुमाते माया ।
राँम रगि सदा मतिवाले, काया होइ निकाया ॥
कहत कबीर सुहाग सुंदरी, हरि भजि ह्वै निस्तारा ।
सारा षलक खराब किया है, माँनस कहा बिचारा । १०६॥

---

(१०४) ख—मुगध न देखे ।

हरि के नांइ गहर जिनि करऊँ,

राँम नाँम चित मूषाँ न धरऊँ ॥ टेक ॥

जैसे सती तजै स्यगार, ऐसैं जियरा करम निवार ॥

राग दोषदहूँ मैं एक न भाषि, कदाचि ऊपजै चिता न राषि ।

भूले बिसरय गहर जौ होई, कहै कबीर क्या करिहौ मोही ॥१०७॥

मन रे कागद कीर पराया ।

कहा भयौ व्यौपार तुम्हारे, कल तर बढै सवाया ॥ टेक ॥

बडे बौहरे साँठो दीन्हौं कलतर काढ्यो खोटै ।

चार लाख अरु असी ठीक दे जनम लिष्यो सब चोटै ॥

अबकी बेर न कागद कीर्‌यौ, तौ धर्म राई सूं तूटै ।

पूंजी बितडि बंदि ले दैहै, तब कहे कौन के छूटै ॥

गुरुदेव ग्याँनी भयौ लगनियाँ, सुमिरन दीन्हौं हीरा ।

बड़ी निसरना नांव राम कौ, चढि गयौ कीर कबीरा ॥१०८॥

धागा ज्यूं टूटै त्यूं जोरि,

तूटै तूटनि होयगी, नाँ ऊँ मिलै बहोरि ॥टेक॥

उरझ्यो सूत पाँन नही लागै, कूच फिरै सब लाई ।

छिटकै पवन तार जब छूटै, तब मेरौ कहा बसाई ।

सुरझ्यौ सूत गुढी सब भागी, पवन राखि मन धीरा ॥

पचूं भईया भये सनमुखा, तब यहु पान करीला ॥

नान्ही मैदा पीसि लई है, छाँणि लई द्वै बारा ।

कहै कबीर तेल जब मेल्या, बुनत न लागी बारा ॥१०९॥

ऐसा औसर बहुरि न आवै,

राम मिलै पूरा जन पावै ॥ टेक ॥

जनम अनेक गया अरु आया की बेगारि न भाड़ा पाया ॥

भेष अनेक एकधूं कैसा, नाँनाँ रूप धरै नट जैसा ।

दाँन एक मागो कवलाकत, कबीर के दुख हरन अनत ॥११०॥

हरि जननी मैं बालिक तेरा,

काहे न औगुण बकसहु मेरा ॥ टेक ॥

सुत अपराध करै दिन केते, जननी कै चित रहै न तेते ॥

कर गहि केस करे जौ घाता, तऊ न हेत उतारै माता ॥

कहैं कबीर एक बुधि बिचारी, बालक दुखी दुखी महतारी ॥१११॥

गोव्यदे तुम्ह थैं डरपो भारी ।
सरणाई आयाँ क्यूँ गहिये, यहु कौंन बात तुम्हारी ॥टेक॥

धूप दाझतैं छाँह तकाई, मति तरवर सचपाऊँ ।
तरवर माँहे ज्वाला निकसै, तौ क्या लेइ बुझाऊँ ॥

जे वन जलै त जल कूँ धावै, मति जल सीतल होई ।
जलही माँहि अगनि जे निकसै, और न दूजा कोई ॥

तारण तिरण तिरण तूँ तारण, और न दूजा जानौं ।
कहै कबीर सरनाँई आयौ, अपनाँ देव नहीं मानौं ॥११२॥

मैं गुलाँम मोहि बेचि गुसाँई,
तन मन धन मेरा रामजी के ताँई ॥टेक॥

आँनि कबीरा हाटि उतारा, सोई गाहक बेचनहारा ॥

बेचै राँम तो राखै कौंन, राखै राँम तो बेचै कौन ।

कहै कबीर मैं तन मन जारचा, साहिब अपनाँ छिन न बिसारचा ॥११३

अब मोहि राम भरोसा तेरा,
जाके राँम सरीखा साहिब भाई, सो क्यूँ अनत पुकारन जाई ॥

जा सिरि तीनि लोक का भारा, सो क्यू न करै जन की प्रतिपारा ॥

कहै कबीर सेवौ बनवारी, सींचौ पेड पीवै सब डारी ॥११४॥

जियरा मेरा फिरै रे उदास ।
राम बिन निकसि न जाई साँस, अजहूँ कौन आस ॥टेक॥

जहाँ जहाँ जाँऊँ राँम मिलावै न कोई, कहौ संतो कैसे जीवन होई ॥

जरै सरीर यहु तन कोई न बुझावै, अनल दहै निस नींद न आवै ॥

चंदन घसि घसि अंग लगाऊँ, राँम बिनाँ दारुन दुख पाऊँ ॥

सतसंगति मति मनकरि धीरा, सहज जाँनि राँमहि भजै कबीरा ॥११५॥

राँम कहौ न अजहूँ केते दिनाँ,
जब ह्वै है प्राँन प्रभु तुम्ह लीनाँ ॥टेक॥

भौ भ्रमत अनेक जन्म गया, तुम्ह दरसन गोब्यद छिन न भया ॥

भ्रम्य भूलि परचौ भव सागर, कछू न बसाइ बसोधरा ॥

कहै कबीर दुखभंजना, करौ दया दुरत निकंदनाँ ॥११६॥

हरि मेरा पीव भाई, हरि मेरा पीव,
हरि बिन रहि न सकै मेरा जीव ॥टेक॥

हरि मेरा पीव मैं हरि की बहुरिया, राँम बड़े मैं छुटक लहुरिया ॥

किया स्यंगार मिलन कै ताँई, काहे न मिलौ राजा राँम गुसाँई ॥

अब की बेर मिलन जो पाँऊँ, कहै कबीर भौ जलि नहीं आँऊँ ॥११७॥

राम बांन अन्ययाले तीर,
जाहि लागे सो जांनै पीर ॥टेक॥
तन मन खोजौं चोट न पाऊँ ओषद मूलीं कहां घसि लाऊँ ॥
एकही रूप दीसै सब नारी, नां जानी को पियहि पियारी ॥
कहै कबीर जा मस्तिक भाग, नां जांनूं काहू देइ सुहाग ॥११८॥

आस नहीं पूरिया रे,
राम बिन को कर्म काटणहार ॥टेक॥
जद सर जल परिपूरता, चात्रिग चितह उदास।
मेरी विषम कर्म गति ह्वै परी, ताथैं पियास पियास ॥
सिध मिलै सुधि नां मिलै, मिलै मिलावै सोइ।
सूर सिध जब भेटिये, तब दुख न व्यापै कोइ ॥
बोछै जलि जैसै मछिका, उदर न भरई नीर।
त्यूं तुम्ह कारनि केसवा, जन ताला बेली कबीर ॥११९॥

रांम बिन तन की ताप न जाई,
जल मैं अगनि उठी अधिकाई ॥टेक॥
तुम्ह जलनिधि मैं जल कर मींनां, जल मैं रहौं जलहि बिन षींनां ॥
तुम्ह प्यजरा मैं सुवनां तोरा, दरसन देहु भाग बड़ मोरा ॥
तुम्ह सतगुर मैं नौतम चेला, कहै कबीर रांम रमूं अकेला ॥१२०॥

गोब्यंदा गुंण गाईये रे
ताथैं भाई पाईये परम निधांन ॥टेक॥
ऊंकारे जग ऊपजै, विकारे जग जाइ।
अनहद बेन बजाइ करि, रह्यो गगन मठ छाइ ॥
झूठै जग डहकाइया रे, क्या जीवण की आस।
रांम रसांइण जिनि पीया, तिनकौ बहुरि न लागी रे पियास ॥
अरध षिन जीवन भला, भगवत भगति सहेत।
कोटि कलप जीवन ब्रिथा, नांहिन हरि सूं हेत ॥
संपति देखि न हरषिये, बिपति देखि न रोइ।
ज्यूं संपति त्यूं बिपति है, करता करै सु होइ ॥
सरग लोक न बांछिये, डरिये न नरक निवास।
हूंणां थां सो ह्वै रह्या, मनहु न कीजै झूठी आस ॥
क्या जप क्या तप संजमां, क्या तीरथ ब्रत स्नान।
जो पै जुगति न जांनियै, भाव भगति भगवान ॥

सुनि मंडल मैं सोधि लै, परम जोति परकास।
तहूँवा रूप न रेष है, विन फूलनि फूल्यौ रे आकास ॥
कहै कबीर हरि गुंण गाइ लै, सत संगति रिदा मँझारि।
जो सेवग सेवा करै, ता संगि रमै रे मुरारि ॥१२१॥

मन रे हरि भजि हरि भजि हरि भज भाई।
जा दिन तेरो कोई नाँही, ता दिन राँम सहाई ॥ टेक ॥
तंत न जानूं मत न जाँनूं, जाँनूं सुदर काया।
मीर मलीक छत्रपति राजा, ते भी खाये माया ॥
वेद न जाँनूं, भेद न जानूं, जानूँ एकहि राँमाँ।
पडित दिसि पछिवारा कीन्हाँ, मुख कीन्हौ जित नाँमा ॥
राजा अवरीक कै कारणि, चक्र सुदरसन जारै।
दास कबीर कौ ठाकुर ऐसौ, भगत की सरन उबारै ॥१२२॥

राम भणि राँम भणि राँम चिंतामणि,
भाग बडे पायौ छाडै जिनि ॥ टेक ॥
असंत सगति जिनि जाइ रे भुलाइ, साध सगति मिलि हरि गुंण गाइ।
रिदा कवल मे राखि लुकाइ, प्रेम गाँठि दे ज्यूँ छूटि न जाइ ॥
अठ सिधि नव निधि नाँव मँझारि, कहै कबीर भजि चरन मुरारि ॥१२३॥

निरमल निरमल राँम गुंण गावै,
सो भगता मेरे मनि भावै ॥ टेक ॥
जे जन लेहिं राँम को नाँउँ, ताकी मैं वलिहारी जाँउँ ॥
जिहि घटि राँम रहे भरपूरि, ताकी मैं चरनन की धूरि ॥
जाति जुलाहा मति कौ धीर, हरषि हरषि गुंण रमै कबीर ॥१२४॥

जा नरि राँम भगति नही साधी,
सो जनमत काहे न मूवौ अपराधी ॥ टेक ॥
गरभ मुचे मुचि भई किन वाँझ, सूकर रूप फिरै कलि माँझ ॥
जिहि कुलि पुत्र न ग्याँन विचारी, वाकी बिधवा काहे न भई महतारी।
कहै कबीर नर सुदर सरूप, राम भगति विन कुचल करूप ॥१२५॥

राँम विनाँ ध्रिग ध्रिग नर नारी,
कहा तै आइ कियौ संसारी ॥ टेक ॥
रज विनाँ कैसौ रजपूत, ग्याँन विना फोकट अवधूत ॥

---

(१२१) ख—भगवंत भजन सहेत ॥

गनिका कौ पूत कासौ कहै, गुर बिन चेला ग्याँन न लहै ॥
कबीर कन्याँ करै स्यंगार, सोभ न पावै बिन भरतार ॥
कहै कबीर हूँ कहता डरूँ, सुषदेव कहै तौ मैं क्या करौं ॥१२६॥

जरि जाव ऐसा जीवनाँ, राजा राँम सूं प्रीति न होई ।
जन्म अमोलिक जात है, चेति न देखै कोई ॥ टेक ॥
मधुमाषी धन संग्रहै, मधुवा मधु ले जाई रे ।
गयौ गयौ धन मूंढ जनाँ, फिरि पीछैं पछिताई रे ॥
विषिया सुख कै कारनैं, जाइ गनिका सूं प्रीति लगाई रे ।
अंधै आगि न सूझई, पढि पढि लोग बुझाई रे ॥
एक जनम कै कारणैं, कत पूजौ देव सहँसौ रे ।
काहे न पूजौ राँम जी, जाकौ भगत महेसौ रे ॥
कहै कबीर चित चचला, सुनहु मूढ मति मोरी ।
विषिया फिर फिरि आवई, राजा राँम न मिले बहोरी ॥१२७॥

राँम न जपहु कहा भयौ अंधा,
राँम बिना जँम मेलै फंधा ॥ टेक ॥
सुत दारा का किया पसारा, अंत की बेर भये बटपारा ॥
माया ऊपरि माया माडी, साथ न चले पोषरी हाँडी ॥
जपौ राँम ज्यूँ अंति उबारै, ठाढ़ौ बाँह कबीर पुकारै ॥१२८॥

डगमग छाडि दे मन बौरा ।
अब तौ जरे बरे बनि आवै, लीन्हो हाथ सिंधौरा ॥ टेक ॥
होइ निसंक मगन ह्वै नाचौ, लोभ मोह भ्रम छाड़ौ ॥
सूरौ कहा मरन थैं डरपै, सती न सचै भाडौ ॥
लोक वेद कुल की मरजादा, इहै कलै मैं पासी ।
आधा चलि करि पीछा फिरिहै ह्वैहै जग मैं हाँसी ॥

---

(१२७) ख प्रति मे इसके आगे यह पद है—
राम न जपहु कवन भ्रम लाँगैं ।
मरि जाहहुगे कहा कहा करहु अभागे ॥ टेक ॥
राँम राँम जपहु कहा करौ वैसे, भेड कसाई कै घरि जैसे ।
राँम न जपहु कहा गरवाना, जम के घर आगै है जाना ॥
राँम न जपहु कहा मुसकौ रे, जम के मुदगरि गणि गणि खहुरे ।
कहै कबीर चतुर के राइ, चतुर बिना को नरकहि जाइ ॥१३०॥

यह ससार सकल है मैला, रॉम कहै ते सूचा।
कहै कबीर नाव नही छांड़ौं, गिरत परत चढि ऊँचा ॥१२६॥

का सिधि साधि करौं कुछ नाही,
राँम रसाँइन मेरी रसना माँही ॥टेक॥

नही कुछ ग्याँन ध्याँन सिधि जोग, ताथैं उपजैं नाँनाँ रोग।
का वन मै वसि भये उदास, जे मन नही छाडै आसा पास ॥
सव कृत काच हरी हित सार, कहै कवीर तजि जग व्यौहार ॥१३०॥

जौ तै रसनाँ राम न कहियो,
तौ उपजत विनसत भरमत रहियौ ॥ टेक ॥

जैसी देखि तरवर की छाया, प्राँन गये कहु काकी माया ॥
जीवत कछू न कीया प्रवानाँ, मूवा मरम को काँकर जाना ॥
संधि काल सुख कोई न सोवै, राजा रंक दोऊ मिलि रोवै ॥
हंस सरोवर कँवल सरीरा, राम रसाइन पीवै कवीरा ॥१३१॥

का नाँगे का वाँधे चाँम,
जौ नही चीन्हसि आतम राँम ॥टेक॥

नागे फिरें जोग जे होई, वन का मृग मुकुति गया कोई ॥
मूँड मूड़ाये जौ सिधि होई, स्वर्ग हीं भेड न पहुँची कोई ॥
व्यद राखि जे खेलैं है भाई, तौ पुसरै कौंण परँम गति पाई ॥
पढे गुने उपजैं अहकारा, अधधर डूबे वार न पारा ॥
कहै कवीर सुनहु रे भाई, राँम नाँम विन किन सिधि पाई ॥१३२॥

हरि विन भरमि विगूते गदा।
जापै जाऊँ आपनपौ छुडावण, ते वीधे वहु फधा ॥टेक॥

जोगी कहै जोग सिधि नीकी, और न दूजी भाई ॥
लुचित मुंडित मोनि जटाधर, ऐ जु कहै सिधि पाई ॥
जहाँ का उपज्या तहाँ विलाना, हरि पद विसर्‍या जवही॥
पडित गुँनी सूर कवि दाता, ऐ जु कहैं वड हँमही ॥
वार पार की खवरि न जाँनी, फिरचौ सकल वन ऐसैं ॥
यहु मन वोहि थके कउवा ज्यूं, रह्यौ ठग्यौ सो वैसैं ॥
तजि वावैं दाँहिणैं विकार, हरि पद दिढ करि गहिये ॥
कहै कवीर गूँगे गुड खाया, वूझै तौ का कहिये ॥१३३॥

चलौ विचारीं रहौं सँभारी, कहता हूँ ज पुकारी।
राँम नाँम अतर गति नाही, तौ जनम जुवा ज्यूँ हारी ॥टेक॥

मूँड़ मुडाइ फूलि का वैठे, काँननि पहरि मजूसा।
वाहरि देह पेह लपटानी, भीतरि तौ घर मूसा ॥

गालिब नगरी गाँव बसाया, हाँम काँम हकारी।
घालि रसरिया जब जँम खैंचे, तब का पति रहै तुम्हारी॥
छाँडि कपूर गाँठि विष बाँध्यौ, मूल हूवा ना लाहा।
मेरे राँम की अभौ पद नगरी, कहै कबीर जुलाहा॥१३४॥

कौन विचारि करत हौ पूजा,
आतम राँम अवर नहीं दूजा॥टेक॥
बिन प्रतीतै पाती तोडै, ग्याँन बिनाँ देवलि सिर फोडै॥
लुचरी लपसी आप सघारै, द्वारै ठाढा राम पुकारै॥
पर आतम जो तत विचारै, कहि कबीर ताकै बलिहारै॥१३५॥

कहा भयौ तिलक गरै जपमाला,
मरम न जानै मिलन गोपाला॥टेक॥
दिन प्रति पसू करै हरिहाई, गरै काठ वाकी बाँनि न जाई।
स्वाग सेत करणी मनि काली, कहा भयौ गलि माला घाली॥
बिन ही प्रेम कहा भयौ रोये भीतरि मैल बाहरि का धोये॥
गल गल स्वाद भगति नहीं धीर, चीकन चँदवा कहै कबीर॥

ते हरि आवेहि किहि काँमाँ,
जे नहीं चीन्है आतम राँमाँ॥ टेक॥
थोरी भगति बहुत अहंकारा, ऐसे भगता मिलैं अपारा॥
भाव न चीन्है हरि गोपाला, जानि क अरहट कै गलि माला॥
कहै कबीर जिनि गया अभिमाना, सो भगता भगवत समानाँ॥१३७॥

कहा भयौ रचि स्वाँग बनायौ,
अंतरिजामी निकट न आयौ॥टेक॥
विषई विषे ढिढावै गावै, राँम नाँम मनि कबहूँ न भावै॥
पापी परलै जाहि अभागै, अमृत छाडि विषै रसि लागै॥
कहै कबीर हरि भगति न साधी, भग मुषि लागि मूये अपराधी॥१३८॥

जौ पै पिय के मनि नाही भाये,
तौ का परोसनि कै हुलराये॥टेक॥
का चूरा पाइल झमकाये, कहा भयो बिछुवा ठमकाँये॥
का काजल स्यदूर कै दीयै, सोलह स्यगार कहा भयौ कीयै।
अंजन मंजन करै ठगौरी, का पचि मरै निगौड़ी बौरी॥
जौ पै पतिब्रता ह्वै नारी, कैसे ही रहौ सो पियहि पियारी।
तन मन जीवन सौंपि सरीरा, ताहि सुहागिन कहै कबीरा॥१३९॥

दूभर पनियाँ भर्या न जाई,
अधिक त्रिपा हरि बिन न बुझाई ॥ टेक ॥
उपरि नीर ले ज तलि हारी, कैंसे नीर भरे पनिहारी ॥
उधर्यो कूप घाट भयौ भारी, चली निरास पंच पनिहारी ॥
गुर उपदेश भरी ले नीरा, हरपि हरपि जल पीवै कबिरा ॥१४०॥

कहाँ भइया अंबर कासूँ लागा,
कोई जाँणैगा जाँननहारा ॥ टेक ॥
अंबरि दीसे केता तारा कौंन चतुर ऐसा चितरनहारा ॥
जे तुम्ह देखौ सो यहु नाँही, यहु पद अगम अगोचर माँही ॥
तीनि हाथ एक अरधाई, ऐसा अंबर चीन्हौं रे भाई ॥
कहै कबीर जे अंबर जाने ताही सूँ मेरा मन माँनै ॥१४१॥

तन खोजौ नर करौ बड़ाई
जुगति बिना भगति किनि पाई ॥ टेक ॥
एक कहावत मुलाँ काजी; राम बिना सब फोकटबाजी ॥
नव ग्रिह बाँभण भणता रासी, तिनहुँ न काटी जम कौ पासी ॥
कहै कबीर यहु तन काचा, सबद निरंजन राँम नाँम साचा ॥१४२॥

जाइ परौ हमरौ का करिहै,
आप करै आपै दुख भरिहै ॥ टेक ॥
ऊभड़ जाताँ बाट बतावै जौ न चलै तौ बहुत दुख पावै ॥
अंधे कूप क दिया बताई, तरकि पड़े पुनि हरि न पत्याई ॥
इंद्री स्वादि विषै रसि बहिहै, नरकि पड़े पुनि राम न कहिहै ॥
पंच सखी मिलि मतौ उपायौ, जंम की पासी हंस बँधायौ ॥
कहै कबीर प्रतीति न आवै, पापंड कपट इहै जिय भावै ॥ टेक ॥

ऐसे लोगनि सूँ का कहिये।
जे नर भये भगति थैं न्यारे, तिनथैं सदा डराते रहिये ॥ टेक ॥
आपण देही चरवाँ पाँनी ताहि निंदै जिनि गंगा आनी।
आपण बूड़ैं औंर को बोड़ै, अगनि लगाइ मंदिर मैं सोवै ॥
आपण अंध औंर कूँ काँनाँ, तिनकौ देखि कबीर डराँनाँ ॥१४४॥

है हरि जन सूँ जगत लरत है,
फुनिगा कैंसे गरड़ भषत हैं ॥ टेक ॥
अचिरज एक देखहु संसारा सुनहाँ खेदै कुंजर असवारा ॥

(१४०) ख—जल बिन न बुझाई।

ऐसा एक अचभा देखा जंवक करै केहरि सूं लेखा ॥
कहै कवीर रॉम भजि भाई, दास अधम गति कवहुँ न जाई ॥१४५॥

है हरिजन थै चूक परी,
जे कछु आहि तुम्हारो हरी ॥ टेक ॥
मोर तोर जव लग मै कीन्हा, तव लग त्रास वहुत दुख दीन्हाँ ॥
सिध साधिक कहैं हम सिधि पाई, राम नाम विन सवै गँवाई ॥
जे वैरागी आस पियासी, तिनको माया कदे न नासी ॥
कहै कवीर मै दास तुम्हारा, माया खडन करहु हमारा ॥१४६॥

सव दुनी सयाँनी मै वौरा,
हँम विगरे विगरौ जिनि औरा ॥ टेक ॥
मै नही वौरा राम कियो वौरा, सतगुरु जारि गयौ भ्रम मोरा ॥
विद्या न पढूं वाद नही जानूं, हरि गुँन कथत सुनत वौरांनूं ॥
कांम क्रोध दोऊ भये विकारा, आपहि आप जरे ससारा ॥
मीठो कहा जाहि जो भावै, दास कवीर रांम गुँन गावै ॥१४७॥

अव मैं राम सकल सिधि पाई ।
आँन कहूँ तौ राँम दुहाई ॥ टेक ॥
इहि चिति चापि सवै रस दीठा, राँम नाँम सा और न मीठा ।
औरे रसि ह्वै है कफ गाता, हरि रस अधिक अधिक सुखदाता ॥
दूजा वणिज नही कछू वापर, राँम नाँम दोऊ तत आषर ।
कहै कवीर जे हरि रस भोगी, ताकूं मिल्या निरंजन जोगी ॥ १४८॥

रे मन जाहि जहाँ तोहि भावै,
अव न कोई तेरे अकुस लावै ॥ टेक ॥
जहाँ जहाँ जाइ तहाँ तहाँ राँमा, हरि पद चीन्हि कियौ विश्रामा ।
तन रंजित तव देखियत दोई, प्रगट्यौ ग्यांन जहाँ तहाँ सोई ॥
लीन निरतर वपु विसराया, कहै कवीर सुख सागर पाया ॥१४९॥

वहुरि हम काहे कूँ आवहिगे ।
विछुरे पचतत्त की रचना, तव हम राँमहि पाँवहिगे ॥ टेक ॥
पृथी का गुण पाँणी सोष्या, पाँनी तेज मिलावहिगे ।
तेज पवन मिलि पवन सवद मिलि, सहज समाधि लगाँवहिगे ॥
जैसे वहु कंचन के भूषन, ये कहि गालि तवाँवहिगे ।
ऐसै हम लोक वेद के विछुरे, सुनिहि माँहि समाँवहिगे ॥
जैसै जलहि तरग तरगनी, ऐसै हम दिखलाँवहिगे ।
कहै कवीर स्वामी सुख सागर, हसहि हस मिलाँवहिगे ॥१५०॥

कबीरा संत नदी गयी बहि रे ।
ठाढ़ी माइ कराडै टेरै, है कोई ल्यावै गहि रे ।।टेक।।
बादल बाँनी राँम घन उनयाँ, बरिषै अमृत धारा ।
सखी नीर गग भरि आई, पीवै प्राँन हमारा ।।
जहाँ बहि लागे सनक सनंदन, रुद्र ध्याँन धरि बैठे ।
सूर्य प्रकास आनंद बमेक मैं घर कबीर ह्वै पैठे ।।१५१।।
अवधू कामधेन गहि बाँधी रे ।
भाँडा भजन करे सबहिन का, कछू न सूझे आंधी रे ।।टेक।।
जौ ब्यावै तौ दूध न देई, ग्याभण अमृत सरवै ।
कौली घाल्याँ बीडरि चालै ज्यूँ घेरौ त्यूँ दरवै ।।
तिहि धेन थै इंछया पूगी पाकड़ि खूँटै बाँधी रे ।
ग्वाड़ा माँहै आनँद उपनौं, खूँटे दोऊ बाँधी रे ।।
साई माइ सास पुनि साई, साई वाकी नारी ।
कहै कबीर परम पद पाया, संतो लेहु बिचारी ।।१५२।।

(राग रामकली)

जगत गुर अनहद कीगरी बाजे,
तहाँ दीरघ नाद ल्यौ लागे ।।टेक।।
त्री अस्थान अंतर मृगछाला, गगन मंडल सींगी बाजे ।
तहुँआँ एक दुकाँन रच्यो है, निराकार व्रत साजे ।।
गगन ही भाठी सींगी करि चुगी, कनक कलस एक पावा ।
तहँवा चवे अमृत रस नीझर, रस ही मैं रस चुवावा ।।
अब तौ एक अनूपम बात भई, पवन पियाला साजा ।
तीनि भवन मै एकै जोगी, कहौ कहाँ बसै राजा ।।
बिनरे जानि परणऊँ परसोतम, कहि कबीर रँगि राता ।
यहु दुनियाँ काँई भ्रमि भुलाँनी, मैं राँम रसाइन माता ।।१५३।।

ऐसा ग्यान विचारि लै, लै लाइ लै ध्याँनाँ ।
सुनि मडल मै घर किया, जैसे रहै सिचाँनाँ ।।टेक।।
उलटि पवन कह्याँ राखिये, कोई मरम विचारै ।
साँधै तीर पताल कूँ, फिरि गगनहि मारै ।।
कसा नाद बजाव ले, धुनि निमसि ले कसा ।
कसा फूटा पंडिता, धुनि कहाँ निवासा ।।

---

(१५२) ख—साई घर की नारी ।

प्यंड परे जीव कहाँ रहै, कोई मरम लखावै ।
जीवत जिस घरि जाइये, ऊँचे मुषि नहीं ग्रावै ॥
सतगुर मिलै त पाइयै, ऐसी अकथ कहाँणी ।
कहै कबीर संसा गया, मिले सारंगपाँणी ॥१५४॥

है कोई संत सहज सुख उपजै, जाकौ जब तप देउ दलाली ।
एक बूँद भरि देइ रॉम रस, ज्यूँ भरि देइ कलाली ॥ टेक ॥
काया कलाली लाँहनि करिहूँ, गुरू सबद गुड़ कीन्हाँ ।
काँम क्रोध मोह मद मछर, काटि काटि कस दीन्हाँ ॥
भवन चतुरदस भाटी पुरई, ब्रह्म अगनि परजारी ।
मूँदे मदन सहज धुनि उपजी, सुखमन पीसनहारी ॥
नीझर झरै अँमी रस निकसै, तिहि मदिरावल छाका ॥
कहैं कबीर यहु वास विकट अति, ग्याँन गुरू ले बाँका ॥ १५५ ॥

अकथ कहाँणी प्रेम की, कछू कही न जाई ।
गूँगे केरी सरकरा, बैठे मुसुकाई ॥ टेक ॥
भोमि विनाँ अरु बीज बिन, तरवर एक भाई ।
अनँत फल प्रकासिया, गुर दीया बताई ।
मन थिर बैसि विचारिया, राँमहि ल्यौ लाई ।
झूठी अनभै बिस्तरी सब थोथी बाई ॥
कहै कबीर सकति कछु नाहीं, गुरु भया सहाई ॥
आँवण जाँणी मिटि गई, मन मनहि समाई ॥१५६॥

संतो सो अनभै पद गहिये ।
कला अतीत आदि निधि निरमल ताकूँ सदा विचारत रहिये ॥टेक॥
सो काजी जाकौ काल न व्यापै, सो पंडित पद बूझै ।
सो ब्रह्मा जो ब्रह्म विचारै, सो जोगी जग सूझै ॥
उदै न अस्त सूर नहीं ससिहर, ताकौ भाव भजन करि लीजै ।
काया थैं कछु दूरि विचारै, तास गुरू मन धीजै ॥
जार्‌यो जरै न काट्यौ सूकै, उतपति प्रलै न आवै ।
निराकार अषंड मंडल मैं, पाँचौ तत्त समावै ॥
लोचन अछित सबै अँधियारा, बिन लोचन जग सूझै ।
पड़दा खोलि मिलै हरि ताकूँ, जो या अरथहि बूझै ॥
आदि अनंत उभै पख निरमल, द्रिष्टि न देख्या जाई ।
ज्वाला उठी अकास प्रजल्यौ, सीतल अधिक समाई ॥

एकनि गंध वासनाँ प्रगटै जग थैं रहै अकेला ॥
प्रॉन पुरिस काया थैं बिछुरे, राखि लेहु गुर चेला ।
भागा भर्म भया मन अस्थिर, निद्रा नेह नसाँनाँ ॥
घट की जोति जगत प्रकास्या, माया सोक बुँझाँनाँ ।
बंकनालि जे संमि करि राखै, तौ आवागमन न होई ॥
कहैं कबीर धुनि लहरि प्रगटी, सहजि मिलैगा सोई ॥१५७॥

जाइ पूछो गोविंद पढिया पंडिता, तेराँ कौन गुरू कौन चेला ।
अपणे रूप कौ आपहि जाँणे, आपैं रहे अकेला ॥टेक॥
बाँझ का पूत बाप बिना जाया, बिन पाँऊँ तरवरि चढ़िया ।
अस बिन पाषर गज बिन गुड़िया, बिन षडै संग्राम जुड़िया ॥
बीज बिन अंकूर पेड़ बिन तरवर, बिन साषा तरवर फलिया ।
रूप बिन नारी पुहुप बिन परमल, बिन नीरै सरवर भरिया ॥
देव बिन देहुरा पत्र बिन पूजा, बिन पाँषाँ भवर बिलंबिया ।
सूरा होइ सु परम पद पावै, कीट पतंग होइ सब जरिया ॥
दीपक बिन जोति जोति बिन दीपक, हद बिन अनाहद सबद बागा ।
चेतनाँ होइ सु चेति लीज्यौ, कबीर हरि के अंगि लागा ॥१५८॥

पंडित होइ सु पदहि बिचारै, मूरिख नाँहिन बूझै ।
बिन हाथनि पाँइन बिन काँननि, बिन लोचन जग सूझै ॥टेक॥
बिन मुख खाइ चरन बिनु चालै, बिन जिभ्या गुण गावै ।
आछै रहै ठौर नही छाड़ै, दह दिसिही फिरि आवै ॥
बिनही तालाँ ताल बजावै, बिन मदल षट ताला ।
बिनही सबद अनाहद बाजै, तहाँ निरतत है गोपाला ॥
बिनाँ चोलनै बिनाँ कंचुकी, बिनही संग संग होई ।
दास कबीर औसर भल देख्या, जाँनैगा जस कोई ॥१५९॥

है कोई जगत गुर ग्याँनी, उलटि बेद बूझै ।
पाँणी मे अगनि जरै, अँधरे कौ सूझै ॥ टेक ॥
एकनि दादुरि खाये, पंच भवंगा ।
गाइ नाहर खायौ, काटि काटि अंगा ॥
बकरी बिघार खायौ, हरनि खायौ चीता ।
कागिल गर फाँदिया, बटेरै बाज जीता ॥
मूसै मँजार खायौ, स्यालि खायौ स्वाँनाँ ।
आदि कौ आदेस करत, कहैं कबीर ग्याँनाँ ॥ १६० ॥

ऐसा अद्भुत मेरे गुरि कथ्या, मैं रह्या उभेषै ।
मूसा हसती सौं लडै, कोई बिरला पेषै ॥ टेक ॥

मूसा पैठा बांबि मैं, लारै सापणि धाई ।
उलटि मूसैं सापणि गिली, यहु अचिरज भाई ॥

चींटी परवत ऊषण्यां, ले राख्यौ चौडै ॥
मुर्गी मिनकी सूं लडै, झल पांणीं दौडै ।
सुरही चूंपै बछतलि, बछा दूध उतारै ॥

ऐसा नवल गुंणी भया, सारदूलहि मारै ।

भील लूक्या बन बीझ मैं, ससा सर मारै ॥
कहै कबीर ताहि गुर करौ, जो या पदहि बिचारै ॥ १६१ ॥

अवधू जागत नींद न कीजै ।
काल न खाइ कलप नहीं ब्यापै, देही जुरा न छीजै ॥ टेक ॥

उलटी गंग समुद्रहि सोखै ससिहर सूर गरासै ।
नव ग्रिह मारि रोगिया बैठे, जल मैं ब्यंब प्रकासै ॥

डाल गह्या थैं मूल न सूझै मूल गह्यां फल पावा ।
बंबई उलटि शरप कौं लागी, धरणि महा रस खावा ॥

बैठि गुफा मैं सब जग देख्या, बाहरि कछू न सूझै ।
उलटै धनकि पारधी मार्‌यौ यहु अचिरज कोई बूझै ॥
औंधा घड़ा न जल मैं डूबै, सूधा सूभर भरिया ।
जाकौं यहु जुग घिण करि चाले, ता प्रसादि निस्तरिया ॥

अंबर बरसै धरती भीजै, बूझै जांणौं सब कोई ।
धरती बरसै अंबर भीजै, बूझै बिरला कोई ॥

गाँवणहारा कदे न गावै, अणबोल्या नित गावै ।
नटवर पेषि पेषनां पेषै अनहद बेन बजावै ॥

कहणी रहणी निज तत जांणै यहु सब अकथ कहांणी ।
धरती उलटि अकासहि ग्रासै, यहु पुरिसां की बांणी ॥
बाझ पियालै अमृत सोख्या, नदी नीर भरि राख्या ।
कहै कबीर ते बिरला जोगी, धरणि महारस चाख्या ॥ १६२ ॥

रांम गुन बेलडी रे, अवधू गोरषनाथि जांणी ।
नांति सरूप न छाया जाके, बिरध करै बिन पांणी ॥ टेक ॥

बेलड़िया द्वे अणी पहूँती गगन पहूँती सैली ।
सहज बेलि जल फूलण लागी, डाली कूंपल मेल्ही ॥

मन कुंजर जाइ बाड़ी बिलब्या सतगुर बाही बेली ।
पंच सखी मिसि पवन पयप्या, बाड़ी पांणी मेल्ही ॥

काटत बेली कूपले मेल्ही, सींचताड़ी कुमिलाँणी।
कहै कबीर ते विरला जोगी, सहज निरंतर जाँणी ॥ १६३ ॥

रांम राइ अविगत विगति न जानै,
कहि किम तोहि रूप बषानै ॥ टेक ॥
प्रथमे गगन कि पुहमि प्रथमे प्रभू प्रथमे पवन कि पाँणी।
प्रथमे चद कि मूर प्रथमे प्रभू, प्रथमे कौन बिनाँणी ॥
प्रथमे प्रॉण कि प्यड प्रथमे प्रभू, प्रथमे रकत कि रेत।
प्रथमे पुरिष की नारि प्रथमे प्रभू, प्रथमे बीज की खेत ॥
प्रथमे दिवस कि रैंणि प्रथमे प्रभु, प्रथमे पाप कि पुन्य।
कहै कबीर जहाँ वसहु निरंजन, तहाँ कुछ आहि कि सुन्यं ॥ १६४

अवधू सो जोगी गुर मेरा,
जो या पद का करै नबेरा ॥ टेक ॥
तरवर एक पेड बिन ठाढा, बिन फूलाँ फल लागा।
साखा पत्र कछू नहीं वाकै अष्ट गगन मुख बागा ॥
पैर बिन निरति करॉ बिन बाजै, जिभ्या हीणॉ गावै।
गायणहारे के रूप न रेषा सतगुर होई लखावै ॥
पषी का षोज मीन का मारग, कहै कबीर बिचारी।
अपरपार पार परसोतम, वा मूरति बलिहारी ॥ १६५ ॥

अब मै जॉणिबौ रे केवल राइ कौ कहाँणी।
मझा जोति रॉम प्रकासै, गुर गमि बाँणी ॥ टेक ॥
तरवर एक अनत मूरति, सुरताँ लेहु पिछाँणी।
साखा पेड़ फूल फल नॉही, ताको अमृत वॉणी ॥
पुहुप वास भवरा एक राता, बरा ले उर धरिया।
सोलह मंझै पवन झकोरै, आकासे फल फलिया ॥
सहज समाधि बिरप यह सींच्यां, धरती जल हर सोष्या।
कहै कबीर तास मैं चेला, जिनि यहु तरुवर पेष्या ॥ १६६ ॥

राजा रॉंम कवन रगैं,
जैसै परिमल पुहुप सगैं ॥ टेक।
पचतत ले कीन्ह बँधाँन, चौरासी लष जीव समॉन।
वेगर वेगर राखि ले भाव, तामैं कीन्ह आपको ठाँव ॥
जैसै पावक भजन का बसेप, घट उनमॉन कीया प्रवेस ॥

---

(१६३) ख—जाति सिमूल न छाया जाकै।

कह्यो चाहूँ कछू कह्या न जाइ, जल जीव ह्वै जल नही बिगराइ ।।
सकल आतमा बरतै जे, छल बल कौं सब चीन्हि बसे ।।
चीनियत चीनियत ता चीन्हिनै से, तिहि चीन्हिग्रत धूँका करके ।।
आपा पर सब एक समांन, तब हम पावा पद निरबांण ।।
कहै कबीर मन्य भया संतोष, मिले भगवत गया दुख दोष ।। १६७ ।।

अंतर गतिग्रनि ग्रनि वांणी ।
गगन गुपत मधुकर मधु पीवत, सुगति सेस सिव जांणी ।। टेक ।।
त्रिगुण त्रिविध तलपत तिमरातन, तंती तंत मिलानी ।
भागे भरम भोइन भए भारी, बिधि बिरचि सुधि जांणी ।।
बरन पवन अबरन बिधि पावक, अनल अमर मरै पाणी ।
रवि ससि सुभग रहे भरि सब घटि सबद सुनि तिथि माहीं ।।
सकट सकति सकल सुख खोये, उदित मथित सब हारे ।
कहैं कबीर अगम पुर पाटण, प्रगटि पुरातन जारे ।। १६८ ।।

लाधा है कछू लाधा है, ताकी पारिष को न लहै ।
अबरन एक अकल अबिनासी, घटि घटि आप रहै ।। टेक ।।
तोल न मोल माप कछु नाहीं, गिणँती ग्यांन न होई ।
नाँ सो भारी ना सो हलका, ताकी पारिष लषै न कोई ।।
जामैं हम सोई हम हीं मैं, नीर मिले जल एक हूवा ।
यौं जाणै तो कोई न मरिहैं, बिन जाणै थैं बहुत मूवा ।।
दास कबीर प्रेम रस पाया, पीवणहार न पाऊँ ।
बिधनाँ बचन पिछांडत नाहीं, कहु क्या काढि दिखाऊँ ।। १६९ ।।

हरि हिरदे रे अनत कत चाहौ,
भूलै भरम दुनी कत बाहौ ।। टेक ।।
जग परबोधि होत नर खालो, करते उदर उपाया ।
आतम रांम न चीन्हैं संतो, क्यू रमि लै रांम राया ।।
लागैं प्यास नीर सो पीवै, बिन लागैं नही पीवै ।
खोजै तत मिलै अबिनासी, बिन खोजै नही जीवै ।
कहै कबीर कठिन यह करणी जैसी पडे धारा ।
उलटी चाल मिलै परब्रह्म कौं, सो सतगुरू हमारा ।। १७० ।।

रे मन बैठि कितै जिनि जासी,
हिरदै सरोवर है अबिनासी ।। टेक ।।
काया मधे कोटि तीरथ, काया मधे कासी ।
माया मधे कवलापति, काया मधै बैकुंठवासी ।।
उलटि पवन षटचक्र, निवासी, तीरथराज गगतट वासी ।।

गगन मंडल रवि ससि दोइ तारा, उलटी कूची लागि किंवारा।
कहै कबीर भई उजियारा, पंच मारि एक रह्यौ निनारा ॥१७१

रांम बिन जन्म मरन भयौ भारी ।
साधिक सिध सूर अरु सुरपति, भ्रमत भ्रमत गये हारी ॥टेक॥
ब्यंद भाव अ्रिग तत जलक, सकल सुख सुखकारीं ।
श्रवन मुनि रवि ससि सिव सिव, पलक पुरिष पल नारी ॥
अंतर गगन होत अतर धुंनि बिन सासनि है सोई ।
घोरत सबद सुमगल सब घटि, ब्यंदत ब्यदै कोई ॥
पाणी पवन अवनि नभ पावक, तिहि सग सदा बसेरा ।
कहै कबीर मन मन करि बेध्या, बहुरि न कीया फेरा ॥१७२॥

नर देही बहुरि न पाईये,
तार्थै हरषि हरषि गुंण गाईये ॥ टेक ॥
जब मन नहीं तजै बिकारा, तौ क्यूं तरिये भौ पारा ॥
जे मन छाडै कुटिलाई, तब आइ मिलै रांम राई ॥
ज्यूं जीमण त्यूं मरणां, पछितावा कछू न करणां ॥
जांणि मरै जे कोई, तौ बहुरि न मरणां होई ॥
गुर बचनां मझि समावै, तब रांम नांम ल्यौ लावै ॥
जब रांम नांम ल्यौ लागा, तब भ्रम गया भौ भागा ॥
ससिहर सूर मिलावा, तब अनहद बेन बजावा ॥
जब अनहद बाजा बाजै, तब सांई संगि बिराजै ॥
होत सत जनन के सगी, मन राचि रह्यो हरि रंगी ॥
धरो चरन कवल बिसवासा, ज्यूं होइ निरभै पदवासा ॥
यहु काचा खेल न होई, जन परतर खेलै कोई ॥
जब परतर खेल मचावा, तब गगन मडल मठ छावा ॥
चित चचल निहचल कीजै तब रांम रसाइन पीजै ॥
जब रांम रसांइन पीया, तब काल मिट्या जन जीया ॥
यूं दास कबीरा गावै, तार्थै मन को मन समझावै ॥
मन ही मन समझाया, तब सतगुर मिलि सचु पाया ॥१७३

अवधू अगनि जरै कै काठ ।
पूछौं पडित जोग सन्यासी, सतगुर चीन्है बाट ॥ टेक ॥
अगनि पवन मैं पवन कवन मैं, सबद गगन के पवनां ॥
निराकार प्रभु आदि निरजन, कत रवंते भवनां ॥

उतपति जोति कवन अँधियारा, घन बादल का वरिषा ।
प्रगट्यो बीज धरनि अति अधिकै, पारब्रह्म नही देखा ॥
मरनां मरै न मरि सकै, मरना दूरि न नेरा ।
द्वादश द्वादस सनमुख देखै, आपै आप अकेला ॥
जे बाध्या ते छूछद मुकुता, बांधनहारा बांध्या ।
बांध्या मुकता मुकता बांध्यां, तिहि पारब्रह्म हरि लाँघा ॥
जै जाता ते कौण पठाता, रहता ते किनि राख्या ।
अँमृत समांनां, विष मैं जानां, विष मैं अमृत चाख्या ॥
कहै कबीर विचार विचारी, तिल मैं मेर समांनां ।
अनेक जनम का गुर गुर करता, सतगुर तब भेटांनां ॥१७४॥

अवधू ऐसा ग्यान विचार,
भेरै चढे सु अधधर डूबे निराधार भये पार ॥ टेक ॥
ऊघट चले सु नगरि पहूँचे, बाट चले ते लूटे ।
एक जेवडी सब लपटांने, के बाधे के छूटे ॥
मंदिर पैसि चहूँ दिसि भीगे, बाहरि रहे ते सूका ।
सरि मारे ते सदा सुखारे, अनमारे ते दूषा ॥
बिन नैनन के सब जग देखै, लोचन अछते अधा ।
कहै कबीर कछू समझि परी है, यहु जग देख्या धधा ॥१७५॥

जन धधा रे जग धधा, सब लोगनि जांणौ अधा ।
लोभ मोह जेवडी लपटानीबिनही गाँठि गह्यो फदा ॥टेक॥
ऊँचे टीबे मंछ बसत है, ससा बसे जल मांही ।
परबत ऊपरि डूबि मूवा नीर मूवा धू काँही ॥
जलै नीर तिण पड उबरै, बैसदर ले सीचै ।
ऊपरि मूल फूल बिन भीतरि, जिनि जान्यां तिनि नीकै ॥
कहै कबीर जांनही जांनै, अनजानत दुख भारी ।
हारी बाट बटाऊ जीत्या, जानत की बलिहारी ॥१७६॥

अवधू ब्रह्म मतै घरि जाइ ।
काल्हि जू तेरी बंसरिया छीनी कहा चरावै गाइ ॥टेक॥
तालि चुगे बन सीतर लउवा, पवति चरै सौरा मछा ।
बन की हिरनी कूवै बियानी, ससा फिरै अकासा ॥
ऊँट मारि मैं चारै लावा, हस्ती तरडवा देई ।
बबूर की डरियाँ बनसी लैहूँ सीयरा भूंकि भूंकि पाई ॥

आँव क वौरे चरहल करहल, निविया छोलि छोलि खाई।
मोरै आग निदाष दरी वल, कहै कवीर समझाई ॥ १७७ ॥

कहा करौ कैसै तिरौं, भौ जल अति भारी।
तुम्ह सरणागति केसवा राखि राखि मुरारी ॥ टेक ॥
घर तजि वन खंडि जाइए, खनि खनि खइए कंदा।
विषै विकार न छूटई ऐसा मन गदा ॥
विष विषिया कौ वाँसनाँ, तजौ तजी नही जाई।
अनेक जतन करि सुरझिहौ, फुनि फुनि उरझाई।
जीव अछित जोवन गया, कछु कीया न नीका।
यहु हीरा निरमोलिका, कौडी पर वीका ॥
कहै कवीर सुनि केसवा, तूँ सकल वियापी।
तुम्ह समाँनि दाता नहीं, हँम से नही पापी ॥ १७८ ॥

वावा करहु कृपा जन मारगि लावो ज्यूँ भव वंधन पूटै।
जरा मरन दुख फेरि करँन सुख, जीव जनम थै छूटै ॥ टेक ॥
सतगुरु चरन लागि यों विनऊँ, जीवनि कहाँ थै पाई ॥
जा कारनि हम उपजै विनसै क्यूँ न कहौ समझाई ॥
आसा पास षड नही पाँड़े, यौ मन सुनि न लूटै।
आपा पर आनंद न वूझै, विन अनभै क्यूँ छूटै ॥
कह्याँ न उपजै उपज्याँ नही जाणै, भाव अभाव विहूनाँ।
उदै अस्त जहाँ मति वुधि नाही, सहजि रॉम ल्यौ लीनाँ ॥
ज्यूँ विवहि प्रतिविंव समाँनाँ, उदिक कुंभ विगराँनाँ।
कहै कवीर जाँनि भ्रम भागा, जीवहि जीव समाँनाँ ॥

संतौ धोखा कासूँ कहिए।
गुँण मैं निरगुँण निरगुँण मैं गुँण है, वाट छाँड़ि क्यूँ वहिए ॥ टेक ॥
अजरा अमर कथै सव कोई, अलख न कथणाँ जाई।
नाति सरूप वरण नही जाकै, घटि घटि रह्यौ समाई ॥
प्यंड व्रह्मड कथै सव कोई, वाकै आदि अरु अंत न होई।
प्यंड व्रह्मड छाड़ि जे कथिए, कहै कवीर हरि सोई ॥ १८० ॥

पपा पषी कै पेषणौं, सव जगत भुलानाँ।
निरपप होइ हरि भजै, सो साध सयाँनाँ ॥ टेक ॥
ज्यूँ पर सूँ पर वँधिया, यूँ वँधे सव लोई।
जाकै आत्मद्रिष्टि है, साचा जन सोई ॥

एक एक जिनि जाँणियाँ, तिनही सच पाया ।
प्रेम प्रीति ल्यौ लीन मन, ते बहुरि न आया ॥
पूरे की पूरी द्रिष्टि, पूरा करि देखै ।
कहै कबीर कछू समूझि न परई, या कछू बात अलेखै ॥१८१॥

अजहूँ न सक्या गई तुम्हारी,
नाँहि निसंक मिले बनवारी ॥ टेक ॥
बहुत गरब गरबे सन्यासी, ब्रह्मचरित छूटी नही पासी ।
सुद्र मलेछ बसै मन माँही, आतमराम सु चीन्ह्या नाही ॥
सक्या डाइणि बसै सरीरा, ता कारणि राँम रमैं कबीरा ॥१८२॥
सब भूले हौ पाषंडि रहे,
तेरा बिरला जन कोई राम कहे ॥ टेक ॥
होइ आरोगि बूँटी घसि लावै, गुर बिना जैसे भ्रमत फिरै ।
है हाजिर परतीति न आवै, सो कैसै परताप धरै ॥
ज्यूँ सुख त्यूँ दुख द्रिढ मन राखै एकादसी एकतार करै ।
द्वादसी भ्रमै लष चौरासी, गर्भ बास आवै सदा मरै ॥
सै तै तजै तजै अपमारग, चारि बरन उपराति चढै ।
ते नही डूबै पार तिरि लघै, निरगुण सगुण संग करै ॥
होइ मगन राँम रँगि राचै, आवागमन मिटै धापै ।
तिनह उछाह सोक नही ब्यापै, कहै कबीर करता आपै ॥१८३॥
तेरा जन एक आध है कोई ।
काम क्रोध अरु लोभ बिबर्जित, हरिपद चीन्हैं सोई ॥ टेक ॥
राजस ताँमस सातिग तीन्यूँ, ये सब तेरी माया ।
चौथै पद को जे जन चीन्हैं, तिनहि परम पद पाया ॥
असतुति निंद्या आसा छाँड़ै, तजै माँन अभिमानाँ ।
लोहा कचन समि करि देखै, ते मूरति भगवानाँ ॥
च्यतै तौ माधौ च्यतामणि, हरिपद रमै उदासा ।
त्रिस्ना अरु अभिमाँन रहित है, कहै कबीर सो दासा ॥ १८४॥
हरि नामैं दिन जाइ रे जाकौ,
सोइ दिन लेखै, लाइ राँम ताकौ ॥ टेक ॥
हरि नाँम मै जन जागै, ताकै गोब्यद साथी आगै ॥

---

(१८४) ख—जे जन जानै । लोहा कचन सँम करि जानै ।

दीपक एक अभंगा, तामैं सुर नर पड़ै पतगा।
ऊँच नीच सम सरिया, ताथैं जन कबीर निसतरिया ॥१८५॥

जब थैं आतम तत्त विचारा।
तब निरबैर भया सबहिन थैं, काम क्रोध गहि डारा ॥टेक॥

व्यापक ब्रह्म सबनि मैं एकै, को पंडित को जोगी।
रांणां राव कवन सूं कहिये, कवन बैद को रोगी॥

इनमैं आप आप सबहिन मैं, आप आप सूं खेलै।
नांनां भांति घडे सब भांड़े, रूप धरे धरि मेलै॥

सोचि विचारि सबै जग देख्या, निरगुण कोई न बतावै।
कहै कबीर गुंणी अरु पंडित, मिलि लीला जस गावै ॥१८६॥

तू माया रघुनाथ की, खेलड़ चढ़ी अहेडै।
चतुर चिकारे चुणि चुणि मारे, कोई न छोड़या नेडैं ॥टेक॥

मुनियर पीर डिगंबर मारे, जतन करंता जोगी।
जंगल महि के जंगम मारे, तूं रे फिरै बलिवंती॥

वेद पढ़ंता बांम्हण मारा, सेवा करतां स्वामी।
अरथ करतां मिसर पछाडया, तूं रे फिरै मैंमंती॥

सापित कै तू हरता करता, हरि भगतन कै चेरी।
दास कबीर राम कै सरनैं, ज्यूं लागी त्यूं तोरी ॥१८७॥

जग सूं प्रीति न कीजिए, सँमझि मन मेरा।
स्वाद हेत लपटाइए, को निकसै सूरा ॥टेक॥

एक कनक अरु कामनीं, जग मे दोइ फंदा।
इनपै जौ न बँधावई, ताका मैं बंदा॥

देह धरे इन मांहि बास, कहु कैसे छूटै।
सीव भये ते ऊबरे, जीवन ते लूटै॥

एक एक सूं मिलि रह्या, तिनही सचु पाया।
प्रेम मगन लैलीन मन, सो बहुरि न आया॥

कहै कबीर निहचल भया, निरभै पद पाया॥
संसा ता दिन का गया, सतगुर समझाया ॥१८८॥

रांम मोहि सतगुर मिलै अनेक कलानिधि, परम तत्त सुखदाई।
कांम अगनि तन जरत रही है, हरि रसि छिरकि बुझाई ॥टेक॥

दरस परस तैं दुरमति नासी, दीन रटनि ल्यौ आई।
पाषंड भरँम कपाट खोलि कै अनभै कथा सुनाई॥

---

(१८७) ख—तू माया जगनाथ की।

यहु ससार गँभीर अधिक जल को गहि लावै तीरा।
नाव जिहाज खेवइया साधू, उतरे दास कबीरा ॥१८९॥

दिन दहूँ चहूँ कै कारणै, जैसे सैवल फूले।
झूठी सूँ प्रीति लगाइ करि, साँचे कूँ भूले ॥ टेक ॥
जो रस गा सो परहरचा, बिडराता प्यारे।
आसति कहूँ न देखिहूँ, बिन नाँव तुम्हारे ॥
साँची सगाई राँम की, सुनि आतम मेरे।
नरकि पडे नर बापुडे, गाहक जस तेरे ॥
हंस उडचा चित चालिया, सगपन कछू नाही।
माटी सूँ माटी मेलि करि, पीछै अनखाँही ॥
कहै कबीर जग अधला, कोई जन सारा ॥
जिनि हरि मरण न जाँणिया, तिनि किया पसारा ॥१९०॥

माधौ मैं ऐसा अपराधी,
तेरी भगति होत नहीं साधी ॥टेक॥
कारनि कवन जाइ जग जनम्या, जनमि कवन सच पाया।
भौ जल तिरण चरण च्यतामणि, ता चित घडी न लाया ॥
पर निंद्या पर धन पर दारा, पर अपवादैं सूरा।
ताथैं आवागवन होइ फुनि फुनि, ता पर संग न चूरा ॥
काम क्रोध माया मद मछर, ए सतति हम माँही।
दया धरम ग्याँन गुर सेवा, ए प्रभु सुपिनै नाँही ॥
तुम्ह कृपाल दयाल दमोदर, भगत बछल भौ हारी।
कहै कबीर धीर मति राखहु, सासति करौ हमारी ॥१९१॥

राँम राइ कासनि करौ पुकारा,
ऐसे तुम्ह साहिब जाननिहारा ॥ टेक ॥
इद्री सबल निबल मैं माधौ, बहुत करै बरियाई।
लै धरि जाँहि तहाँ दुख पइये बुधि बल कछू न बसाई ॥
मैं बपरौ का अलप मूढ मति, कहा भयो जे लूटे।
मुनि जन सती सिध अरु साधिक तेऊ न आयै छूटे ॥
जोगी जती तपा सन्यासी, अह निसि खोजैं काया।
मैं मेरी करि बहुत बिगूते, बिषै बाघ जग खाया ॥

(१९१) ख—सो गति करहु हमारी।

ऐंकत छाँड़ि जाँहि घर घरनी, तिन भी वहुत उपाया।
कहै कबीर कछु समझि न पाई, बिषम तुम्हारी माया ॥ १९२ ॥

माधौ चले वुनाँवन माहा,
जग जीतै जाइ जुलाहा ॥ टेक ॥

नव गज दस गज गज उगनीसा, पुरिया एक तनाई।
सान सूत दे गंड वहुतरि, पाट लगी अधिकाई ॥
तुलह न तोली गजह न मापी, पहज न सेर अढ़ाई।
अढ़ाई मे जैं पाव घटे तो करकस करै वजहाई ॥
दिन की वैठि खसम सूं कीजै अरज लगी तहाँ हीं।
भागी पुरिया घर ही छाडी चले जुलाह रिसाई ॥
छोछी नली काँमि नही आवै लहटि रही उरझाई।
छाँड़ि पसारा राँम कहि वौरै, कहै कबीर समझाई ॥ १९३॥

वाजे जंत्र वजावै गुँनो,
राम नाँम विन भूली दुनी ॥ टेक ॥

रजगुन सतगुन तमगुन तीन, पंच तत से साज्या वीन ॥
तीनि लोक पूरा पेखनां, नाँच नचावै एकै जनाँ।
कहै कबीर ससा करि दूरि, त्रिभवननाथ रह्या भरपूरि ॥ १९४॥

जंत्री जत्र अनूपन वाजै,
ताकौ सवद गगन मैं गाजै ॥टेक॥

सुर की नालि सुरति का तूंवा, सतगुर साज वनाया।
सुर नर गण गँध्रप ब्रह्मादिक गुर विन तिनहुँ न पाया ॥
जिभ्या ताँति नासिका करही, माया का मैंण लगाया।
गमाँ वत्तीस मोरणाँ पाँचौं, नीका साज वनाया ॥
जंत्री जत्र तजैं नही वाजै, तव वाजै जव वावै।
कहै कबीर सोई जन साँचाँ जत्री सूँ प्रीति लगावै ॥१९५॥

अवधू नादैं व्यंद गगन गाज सवद अनाहद वोलै।
अतरि गति नही देखै नेड़ा, ढूंढत वन वन डोलै ॥टेक॥

सालिगराँम तजौं सिव पूजौं, सिर ब्रह्मा का काटौं।
सायर फोडि नीर मुकलाऊँ, कुँवाँ सिला दे पाटौं॥
चंद सूर दोइ तूंवा करिहूं, चित चेतिनि की डाँडी।
सुषमन तती वाजड़ लागी, इहि विधि त्रिष्णाँ षाँड़ी॥
परम तत आधारी मेरे, सिव नगरी घर मेरा।
कालहि षडूं नीच विहडूं, वहुरि न करिहूँ फेरा ॥

जपौ न जाप हतौ नहीं गूगल पुस्तक लै न पढाऊँ।
कहै कबीर परम पद पाया, नहीं आऊँ नहीं जाऊँ ॥१९६॥

बाबा पेड छाडि सब डाली लागे मूँढे जन्न अभागे।
सोइ मोइ सब रैंणि बिहाँणी, भोर भयो तब जागे ॥टेक॥
देवलि जाँऊँ तौ देवी देखौं, तीरथि जाँऊँ त पाणी।
ओछी बुधि अगोचर बाँणी, नहीं परम गति जाणी॥
साध पुकारैं समझत नाँही, आन जन्म के सूते।
बाँधे ज्यूं अरहट की टीडरि, आवत जात बिगूते॥
गुर बिन इहि जग कौन भरोसा, काके संग ह्वै रहिए।
गनिका के घरि बेटा जाया, पिता नाँव किस कहिए।
कहै कबीर यहु चित्त बिरोध्या, बूझौ अमृत बाँणी।
खोजत खोजत सतगुर पाया, रहि गई आँवण जाँणी ॥१९७॥

भूली मालिनी, हे गोब्यंद जागतौ जगदेव,
तूं करै किसकी सेव ॥टेक॥
भूली मालिन पाती तोडै, पाती पाती जीव।
जा मूरति कौं पाती तोडै, सो मूरति नर जीव।
टाँचणहारैं टाँचिया, दै छाती ऊपरि पाव।
जे तू मूरति सकल है, तौ घडणहारे कौं खाव॥
लाडू लावण लापसी, पूजा चढै अपार।
पूजि पुजारी ले गया, दे मूरति कै मुँहि छार।
पाती ब्रह्मा पुहपे बिष्णु, फूल फल महादेव।
तीनि देवौं एक मूरति, करै किसकी सेव॥
एक न भूला दोइ न भूला भूला सब संसारा।
एक न भूला दास कबीरा, जाकै राम अधारा ॥१९८॥

सेइ मन समझि समर्थ सरणाँगता, जाकी आदि अंति मधि कोई न पावै।
कोटि कारिज सरैं देह गुँण सब जरैं, नेक जो नाँव पतिव्रत आवै ॥टेक॥
आकार की ओट आकार नहीं ऊबरैं, सिव बिरंचि अरु बिष्णु ताँईं।
जास का सेवक तास कौं पईहै, इष्ट कौं छाडि आगे न जाहीं॥
गुँण मई मूरति सेइ सब भेष मिलि, निरगुण निज रूप बिश्राम नाहीं।
अनेक जुग बंदिगी बिविध प्रकार की, अंति गुँण का गुँणहीं समाहीं॥
पाँच तत तीनि गुण जुगति करि साँनिआ, अष्ट बिन होत नहीं क्रम काया।
पाप पुन बीज अंकूर जाँमैं मरैं, उपजि बिनसैं जेती सर्व माया॥

क्रितम करता कहै परम पद क्यूँ लहै, भूलि मैं पड़्या लोक सारा।
कहै कबीर राँम रमिता भजैं, कोई एक जन गए उतरि पारा ॥१९९॥

राम राइ तेरी गति जाँणी न जाई ।
जो जस करिहै सो तस पइहै, राजा राँम नियाई ॥ टेक ॥
जैसी कहै करै जो तैसी, तौ तिरत न लागै वारा।
कहता कहि गया सुनता सुणि गया, करणी कठिन अपारा ॥
सुरही तिण चरि अंमृत सरवै, लेर भवंगहि पाई।
अनेक जतन करि निग्रह कीजै, विषै विकार न जाई ॥
संत करै असंत की संगति, तासूँ कहा बसाई।
कहैं कबीर ताके भ्रम छूटैं, जे रहे राँम ल्यौ लाई ॥२००॥

कथणी बदणी सब जजाल,
भाव भगति अरु राँम निराल ॥ टेक ॥
कथै बदै सुणै सब कोई, कथे न होई कीये होई ॥
कूड़ी करणी राँम न पावै, साच टिकै निज रूप दिखावै।
घट में अग्नि घर जल अवास, चेति बुझाइ कबीरादास ॥२०१॥

(राग आसावरी)

ऐसी रे अवधू की वाणी,
ऊपरि कूवटा तलि भरि पाँणी ॥ टेक ॥
जब लग गगन जोति नहीं पलटै, अविनासा सूँ चित नही चिहुटै।
जब लग भँवर गुफा नहीं जानैं, तौ मेरा मन कैसैं मानैं ॥
जब लग त्रिकुटी संधि न जानैं, ससिहर कै घरि सूर न आनैं।
जब लग नाभि कवल नहीं सोधैं, तौ हीरैं हीरा कैसैं बेधैं ॥
सोलह कला संपूरण छाजा, अनहद कै घरि बाजैं बाजा।
सुषमन कै घरि भया अनंदा, उलटि कवल भेटे गोव्यंदा ॥
मन पवन जब परचा भया, क्यूँ नाले राँपी रस मइया।
कहै कबीर घटि लेहु बिचारी, औघट घाट सींचि ले क्यारी ॥२०२॥

मन का भ्रम मन ही थैं भागा,
सहज रूप हरि खेलण लागा ॥ टेक ॥
मैं तैं तै मैं ए द्वै नाहीं, आपै अकल सकल घट माँही।
जब थैं इनमन उनमन जाँनाँ, तब रूप न रेप तहाँ ले बाँनाँ ॥
तन मन मन तन एक समाँनाँ, इन अनभै माहैं मनमाँनाँ ॥
आतमलीन अषंडित राँमाँ, कहै कबीर हरि माँहि समाँनाँ ॥२०३॥

आत्माँ अनंदी जोगी,
पीवै महारस अँमृत भोगी ॥ टेक ॥

ब्रह्म अगनि काया परजारी, अजपा जाप उनमनी तारी ॥
त्रिकुट कोट मैं आसण माँडै, सहज समाधि विषै सब छाँडै ॥
त्रिवेणी बिभूति करै मन मजन, जन कबीर प्रभु अलष निरजन ॥२०४॥

या जोगिया की जुगति जु बूझै,
राम रमै ताकौं त्रिभुवन सूझै ॥ टेक ॥

प्रकट कंथा गुपत अधारी, तामैं मूरति जीवनि प्यारी ।
है प्रभू नेरैं खोजै दूरि, ग्यांन गुफा मे सीगी पूरि ॥
अमर बेलि जो छिन छिन पीवै, कहै कबीर सो जुगि जुगि जीवै ॥२०५॥

सो जोगी जाकै मन मैं मुद्रा,
रात दिवस न करई निद्रा ॥ टेक ॥

मन मैं आँसण मन मै रहणाँ, मन का जप तप मन सूँ कहणाँ ॥
मन मै षपरा मन मैं सींगी, अनहद बेन बजावै रंगी ॥
पच परजारि भसम करि भूका, कहै कबीर सो लहसै लंका ॥२०६॥

बाबा जोगी एक अकेला,
जाके तीर्थ ब्रत न मेला । टेक ॥

झोली पत्र बिभूति न बटवा, अनहद बेन बजावै ॥
माँगि न खाइ न भूखा सोवै, घर अँगनाँ फिरि आवै ॥
पाँच जना की जमाति चलावै, तास गुरु मैं चेला ॥
कहै कबीर उनि देसि सिधाये, बहुरि न इहि जगि मेला ॥२०७॥

जोगिया तन कौ जत्र बजाइ,
ज्यूँ तेरा आवागमन मिटाइ ॥ टेक ॥

तत करि ताँति धर्म करि डाँडी, सत की सारि लगाइ ।
मन करि निहचल आसँण निहचल, रसनाँ रस उपजाइ ॥
चित करि बटवा तुचा मेषली, भसमैं भसम चढाइ ।
तजि पाषड पाँच करि निग्रह, खोजि परम पद राइ ॥
हिरदै सींगी ग्याँन गुणि बाँधौ, खोजि निरंजन साँचा ।
कहै कबीर निरजन की गति, जुगति बिनाँ प्यंड काचा ॥२०८॥

अवधू ऐसा ग्याँन विचारी,
ज्यूँ बहुरि न ह्वै ससारी ॥ टेक ॥

च्यँत न सोच चित बिन चितवैं, बिन मनसा मन होई ।
अजपा जपत सुनि अभिअंतरि, यहू तत जानै सोई ॥

कहै कबीर स्वाद जब पाया, बक नालि रस खाया ।
अमृत झरै ब्रह्म परकासै तब ही मिलै राम राया ॥२०६॥

गोव्यदे तुम्हारै बन कंदलि, मेरो मन अहेरा खेलै ॥
बपु बाड़ी अनगु मृग, रचिही रचि मेलै ॥ टेक ॥
चित तरउवा पवन पेदा, सहज मूल बाँधा ।
ध्यॉन धनक जोग करम, ग्यॉन बाँन साँधा ॥
षट चक्र कँवल बेधा, जारि उजारा कीन्हाँ ।
काम क्रोध लोभ मोह, हाकि स्यावज दीन्हाँ ॥
गगन मंडल रोकि बारा, तहाँ दिवस न राती ।
कहै कबीर छाँड़ि चले, बिछुरे सब साथी ॥ २१० ॥

साधन कचू हरि न उतारै,
अनभै ह्वै तौ अर्थ बिचारै ॥ टेक ॥
बाँणी सुरँग सोधि करि आणै आणौं नौ रग धागा ।
चंद सूर एकतरि कीया, सीवत बहु दिन लागा ॥
पंच पदार्थ छोड़ि समाँनाँ, हीरै मोती जड़िया ।
कोटि बरग लूं कचूं सीयाँ, सुर नर धधै पड़िया ॥
निस बासुर जे सोवै नाही, ता नरि काल न खाई ।
कहै कबीर गुर परसादै सहजै रह्या समाई ॥ २११ ॥

जीवत जिनि मारै मूवा मति ल्यावै,
मास बिहूँणाँ घरि मत आवै हो कता ॥ टेक ॥
उर बिन पुर बिन चंच बिन, बपु बिहूँना सोई ।
सो स्यावज जिनि मारै कता, जाकै रगत मास न होई ॥
पैली पार के पारधी, ताकी धुनही पिनच नही रे ।
ता बेली को ढूंक्यो मृग लौ, ता मृग कैसी सनही रे ॥
मार्‌या मृग जीवता राख्या, यहु गुरु ग्याँन मही रे ।
कहै कबीर स्वाँमी तुम्हारे मिलन कौ, बेली है पर पात नही रे ॥२१२॥

धीरौ मेरे मनवाँ तोहि धरि टाँगौं,
तैं तौ कीयौ मेरे खसम सूँ पाँगौ ॥ टेक ॥
प्रेम की जेवरिया तेरे गलि बाँधूँ, तहाँ लै जाँउँ जहाँ मेरौ माधौ ।
काया नगरीं पैसि किया मैं बासा, हरि रस छाड़ि बिषै रसि माता ॥
कहैं कबीर तन मन का ओरा भाव भकति हरिसूँ गठजोरा ॥२१३॥

परब्रह्म देख्या हो तत बाड़ी फूली, फल लागा बडहूली ।
सदा सदाफल दाख बिजौरा कौतिकहारी भूली ॥ टेक ॥
द्वादस कूँवा एक बनमाली, उलटा नीर चलावै ।
सहजि सुषमनाँ कूल भरावै, दह दिसि बाड़ी पावै ॥
ल्यौकी लेज पवन का ढीकू, मन मटका ज बनाया ।
सत की पाटि सुरति का चाठा, सहजि नीर मुलकाया ॥
त्रिकुटी चढ्यो पाव ढौ ढारै, अरध उरध की क्यारी ।
चंद सूर दोऊ पाणति करिहैं, गुर मुषि बीज बिचारी ॥
भरी छाबडी मन बैकुंठा, साँई सूर हिया रंगा ।
कहै कबीर सुनहु रे संतो, हरि हँम एकै संगा ॥ २१४॥
राँम नाँम रंग लागा, कुरंग न होई ।
हरि रंग सौ रंग और न कोई ॥ टेक ॥
और सबै रंग इहि रंग थैं छूटै, हरि रंग लागा कदे न खूटै ।
कहै कबीर मेरे रंग राँम राई, और पतंग रंग उडि जाई ॥ २१५॥
कबीरा प्रेम कूल ढरै, हँमारे राम बिना न सरै ।
बाँधि ले धोरा सींचि लै क्यारी ज्यूँ तूँ पेड़ भरैं ॥ टेक॥
काया बाड़ी माँहैं माली, टहल करै दिन राती ।
कबहूँ न सोवै काज सँवारै, पाँणी तिहारी माती ॥
सेझै कूवा स्वाति अति सीतल, कबहूँ कुवा बनही रे ।
भाग हँमारे हरि रखवाले, कोई उजाड नहीं रे ॥
गुर बीज जमाया कि रखि न पाया, मन की आपदा खोई ।
औरै स्यावढ करैं पारिसा, सिला करै सब कोई ॥
जौ घरि आया तौ सब ल्याया, सबही काज सँवार्‌या ।
कहै कबीर सुनहु रे संतौ, थकित भया मैं हार्‌या ॥२१६॥
राजा राम बिना तकती धो धो ।
राम बिना नर क्यूँ छूटौगे, जम करै नग धो धो धो ॥ टेक ॥
मुद्रा पहर्‌या जोग न होई, घूँघट काढ्या सती न कोई ॥
माया कै संगि हिलि मिलि आया, फोकट साटै जनम गँवाया ।
कहै कबीर जिनि हरि पद चीन्हाँ, मलिन प्यंड थैं निरमल कीन्हा ॥२१७॥
है कोई राम नाँम बतावै,
बस्तु अगोचर मोहि लखावै ॥ टेक ॥
राँम नाँम सब कोई बखाँनै, राँम नाँम का मरम न जाँनै ॥

ऊपर की मोहि बात न भावै, देखै गावै तौ सुख पावै ।
कहै कबीर कछू कहत न आवै, परचै बिनाँ मरम को पावै ॥२१८॥

गोब्यदे तूँ निरंजन तूँ निरंजन राया ।
तेरे रूप नहीं रेख नाहीं मुद्रा नहीं माया ॥ टेक ॥
समद नाहीं सिषर नाहीं, धरती नाहीं गगनाँ ।
रवि ससि दोउ एकै नाँही, बहत नाँही पवनाँ ॥
नाद नाँही ब्यँद नाँही, काल नहीं काया ।
जब तै जल ब्यब न होते, तब तूँही राम राया ॥
जप नाँही तप नाँही, जोग ध्याँन नहीं पूजा ।
सिव नाँहीं सकती नाँही देव नहीं दूजा ॥
रुग न जुग न स्याँम अथरबन, वेद नहीं ब्याकरनाँ ।
तेरी गति तूँहि जाँनै, कबीरा तो सरनाँ ॥२१९॥

राम कै नाँइ नीसाँन बागा, ताका मरम न जानै कोई ।
भूख त्रिपा गुण वाकै नाँही, घट घट अंतरि सोई ॥ टेक ॥
वेद बिबर्जित भेद बिबर्जित, बिबर्जित पाप रु पुन्यं ।
ग्याँन बिबर्जित ध्यान बिबर्जित, बिबर्जित अस्थूल सुंन्यं ।
भेष बिबर्जित भीख बिबर्जित बिबर्जित ड्यभक रूप ।
कहै कबीर तिहूँ लोक बिबर्जित, ऐसा तत्त अनूपं ॥२२०॥

राँम राँम राँम रमि रहिए,
साषित सेती भूलि न कहिये ॥ टेक ॥
का सुनहाँ कौ सुमृत सुनायें, का साषित पै हरि गुन गाँये ।
का कऊवा कौ कपूर खवाँये, का बिसहर कौं दूध पिलाँयें ॥
साषित सुनहाँ दोऊ भाई, वो नींदै वौ भौंकत जाई ।
अंमृत ले ले नींब स्यँचाई, कहै कबीर वाकी बाँनि न जाई ॥२२१॥

अब न बसूँ इहि गाँइ गुसाँई,
तेरे नेवगी खरे सयाँने हो राम ॥ टेक ॥
नगर एक तहाँ जीव धरम हता, बसै जु पंच किसानाँ ।
नैनूँ निकट श्रवनूँ रसनूँ, इंद्री कह्या न मानै हो राँम ॥
गाँइ कु ठाकुर खेत कु नेपै, काइथ खरच न पारै ॥
जोरि जेवरी खेति पसारै, सब मिलि मोकौ मारै हो राँम ॥
खोटौ महतौ विकट बलाही, सिर कसदम का पारै ।
बुरो दिवाँन दादि नहिं लागै, इक बाँधै इक मारै हो राम ॥

धरमराई जब लेखा माँग्या, बाकी निकसी भारी ।
पाँच किसानाँ भाजि गये है, जीव धर बाँध्यो पारी हो राँम ॥
कहै कबीर सुनहु रे संतो, हरि भजि बाँधो भेरा ।
अबकी बेर बकसि बंदे कौ, सब खत करौ नबेरा ॥२२२॥

ता भै थै मन लागौ राँम तोही,
करौ कृपा जिनि बिसरौ मोही ॥ टेक ॥

जननी जठर सह्या दुख भारी,
सो संक्या नहीं गई हमारी ॥
दिन दिन तन छीजै जरा जनावै,
केस गहैं काल बिरदंग बजावै ॥
कहै कबीर करुणाँमय आगै,
तुम्हारी क्रिया बिना यहु बिपति न भागै ॥२२३॥

कब देखूं मेरे राम सनेही,
जा बिन दुख पावै मेरी देही ॥ टेक ॥
हूँ तेरा पंथ निहारूँ स्वाँमी,
कब रमि लहुगे अंतरजांमी ।
जैसै जल बिन मीन तलपै,
ऐसे हरि बिन मेरा जियरा कलपै ।
निस दिन हरि बिन नींद न आवै,
दरस पियासी राँम क्यूं सचु पावै ।
कहै कबीर अब बिलंब न कीजै,
अपनौ जाँनि मोहि दरसन दीजै ॥ २२४ ॥

सो मेरा राँम कबै घरि आवै,
ता देखे मेरा जिय सुख पावै ॥ टेक ॥

बिरह अगिनि तन दिया जराई, बिन दरसन क्यूं होइ सराई ॥
निस बासुर मन रहै उदासा, जैसै चातिग नीर पियासा ॥
कहै कबीर अति आतुरताई, हमकौ बेगि मिलौ राँम राई ॥२२५॥

मैं सामने पीव गौहनि आई ।
साँई संगि साध नही पूगी, गयौ जोबन सुपिनाँ की नाँई ॥ टेक ॥
पंच जना मिलि मंडप छायौ, तीन जनाँ मिलि लगन लिखाई ।
सखी सहेली मंगल गावैं, सुख दुख माथै हलद चढ़ाई ॥
नाँनाँ रंगै भाँवरि फेरी, गाँठि जोरि बावै पति ताई ।
पूरि सुहाग भयो बिन दूलह, चौक कै रंगि धरचो सगौ भाई ॥

अपनें पुरिष मुख कबहूँ न देख्यौ, सती होत समझी समझाई।
कहै कबीर हूँ सर रचि मरिहूँ, तिरौ कंत ले तूर बजाई ॥२२६॥

धीरैं धीरैं खाइबौ अनत न जाइबौ,
राँम राँम राँम रमि रहिबौ ॥ टेक ॥

पहली खाई आई माई, पीछै खैहूँ सगौ जवाई।
खाया देवर खाया जेठ, सब खाया ससुर का पेट ॥

खाया सब पटण का लोग, कहै कबीर तब पाया जोग ॥२२७॥

मन मेरौ रहटा रसनाँ पुरइया,
हरि कौ नाउँ लै लै काति बहुरिया ॥टेक॥

चारि खूँटी दोइ चमरख लाई, सहजि रहटवा दियौ चलाई ॥
सासू कहै काति बहू ऐसैं, बिन कातैं निसतरिबौ कैसैं ॥
कहै कबीर सूत भल काता, रहटाँ नहीं परम पद दाता ॥२२८॥

अब की घरी मेरौ घर करसी,
साध संगति ले मोकौं तिरसी ॥ टेक ॥

पहली को घाल्यौ भरमत डोल्यौ, सच कबहूँ नहीं पायौ।
अब की धरनि धरी जा दिन थैं सगलौ भरम गमायौ ॥

पहली नारि सदा कुलवंती, सासू सुसरा मानैं।
देवर जेठ सबनि की प्यारी, पिव कौ मरम न जाँनैं ॥

अब की धरनि धरी जा दिन थे, पीय सूँ बाँन बन्यूँ रे।
कहै कबीर भाग बपुरी कौ, आइ रु राँम सुन्यूँ रे ॥२२९॥

मेरी मति बौरी राँम बिसारयौ, किहि बिधि रहनि रहूँ हो दयाल ॥
सेजैं रहूँ नैंन नहीं देखौं, यहु दुख कासौं कहूँ हो दयाल ॥ टेक ॥

सासु की दुखी ससुर की प्यारी, जेठ के तरसि डरौं रे।
नणद सुहेली गरब गहेली, देवर कै बिरह जरौं हो दयाल ॥
बाप सावको करै लराई, माया सद मतिवाली।
सगौ भइया लै सलि चिढहूँ, तब ह्वै हूँ पीयहि पियारी ॥
सोचि बिचारि देखौ मन माँही, औसर आइ बन्यूँ रे।
कहै कबीर सुनहुँ मति सुंदरि, राजा राँम रमूँ रे ॥२३०॥

अवधू ऐसा ग्याँन बिचारी,
तार्थं भई पुरिष थै नारी ॥ टेक ॥

नाँ हूँ परनी नाँ हूँ क्वारी, पूत जन्यूँ द्यौ हारी।
काली मूंड को एक न छोड़्यो, अजहूँ अकन कुवारी ॥

---

(२२७) ख—खाया पंच पटण का लोग।

बाम्हन कै बम्हनेटी कहियौ, जोगी कै घरि चेली।
कलमाँ पढि पढि भई तुरकनी, अजहूँ फिरौ अकेली ॥
पीहरि जाँऊँ न सासुरै, पुरषहि अंगि न लाँऊँ ॥
कहै कबीर सुनहु रे संतौ, अंगहि अंग न छुवाँऊँ ॥२३१॥

मीठी मीठी माया तजी न जाई।
अग्याँनी पुरिष कौ भोलि भोलि खाई ॥टेक॥
निरगुँण सगुँण नारी, संसारि पियारी,
लषमणि त्यागी गोरषि निवारी ॥
कीडी कुंजर मैं रही समाई,
तीनि लोक जीत्या माया किनहूँ न खाई ॥
कहै कबीर पद लेहु बिचारी,
संसारि आइ माया किनहूँ एक कही षारी ॥२३२॥

मन कै मैलौ बाहरि ऊजलौ किसी रे,
खाँडे की धार जन कौ धरम इसौ रे ॥टेक॥
हिरदा कौ बिलाव नैन बगध्यानी,
ऐसी भगति न होइ रे प्रानी ॥
कपट की भगति करै जिन कोई,
अंत की बेर बहुत दुख होई ॥
छाँडि कपट भजौ राँम राई,
कहै कबीर तिहूँ लोक बड़ाई ॥२३३॥

चोखौ बनज ब्यौपार करीजै,
आइनै दिसावरि रे राँम जपि लाहौ लीजै ॥टेक॥
जब लग देखौं हाट पसारा,
उठि मन बणियाँ रे, करि ले बणज सवारा।
बेगे हो तुम्ह लाद लदाँनौं,
औघट घाटा रे चलनाँ दूरि पयाँनाँ ॥
खरा न खोटा नाँ परखानाँ,
लाहे कारनि रे सब मूल हिराँनाँ ॥
सकल दुनी मैं लोभ पियारा,
मूल ज राखै रे सोई बनिजारा ॥
देस भला परिलोक बिराँनाँ
जन दोइ चारि नरे पूछौ साध सयाँनाँ ॥

---

(२३१) ख—पूत जने जनि हारी।

सायर तीर न वार न पारा,
कहि समझावै रे कबीर बणिजारा ॥२३४॥

जौ मैं ग्याँन विचार न पाया,
तौ मैं यौ ही जन्म गँवाया ॥टेक॥

यह संसार हाट करि जाँनूं, सबको बणिजण आया।
चेति सकै सो चेतौ रे भाई, मूरिख मूल गँवाया॥
थाके नैंन बैंन भी थाकै, थाकी सुंदर काया।
जाँमण मरण ए द्वै थाके, एक न थाकी माया।
चेति चेति मेरे मन चंचल, जब लग घट मैं सासा।
भगति जाव परभाव न जइयौ, हरि के चरन निवासा॥
जे जन जाँनि जपैं जग जीवन, तिनका ग्याँन न नासा।
कहै कबीर वै कबहूँ न हारैं, जाँनि न ढारैं पासा॥२३५॥

लावौ बाबा आगि जलावौ घरा रे,
ता कारनि मन धंधै परा रे ॥ टेक ॥

इक डाँइनि मेरे मन मैं बसै रे, नित उठि मेरे जिय को डसै रे।
या डाँइन्य के लरिका पाँच रे, निस दिन मोहि नचावैं नाच रे।
कहै कबीर हूं ताकौ दास, डाँइनि कै संगि रहै उदास॥२३६॥

बंदे तोहि बंदिगी सौ काँम, हरि बिन जानि और हराँम।
दूरि चलणाँ कूंच बेगा, इहाँ नहीं मुकाँम ॥ टेक ॥
इहाँ नही कोई यार दोस्त, गाँठि गरथ न दाम।
एक एकै संगि चलणाँ, बीचि नहीं बिश्राँम॥
संसार सागर विषम तिरणाँ, सुमरि लै हरि नाँम।
कहै कबीर तहाँ जाइ रहणाँ, नगर बसत निधाँन॥२३७॥

झूठा लोग कहै घर मेरा।
जा घर माँहैं बोलै डोलै, सोई नही तन तेरा॥टेक॥
बहुत बँध्या परिवार कुटुँब मैं, कोई नहीं किस केरा।
जीवित आँषि मूँदि किन देखौ, संसार अंध अँधेरा॥
बस्ती मैं थै मारि चलाया, जंगलि किया बसेरा।
घर कौ खरच खबरि नही भेजी, आप न कीया फेरा॥
हस्ती घोड़ा बैल बाँहणी, संग्रह किया घणेरा।
भीतरि बीबी हरम महल मैं, साल मिया का डेरा॥

बाजी की बाजीगर जाँनै कै बाजीगर का चेरा ।
चेरा कबहूँ उझकि न देखै चेरा अधिक चितेरा ॥
नौ मन सूत उरझि नहीं सुरझै, जनमि जनमि उरझेरा ।
कहै कबीर एक राँम भजहु रे, बहुरि न ह्वैगा फेरा ॥२३८॥

हावडि धावड़ि जनम गवावै,
कबहूँ न राँम चरन चित लावै ॥ टेक ॥

जहाँ जहाँ दाँम तहाँ मन धावै, अँगुरी गिनताँ रैंनि बिहावै ।
तृया का बदन देखि सुख पावै, साध की संगति कबहूँ न आवै ॥
सरग के पथि जात सब लोई सिर धरि पोट न पहुँच्या कोई ।
कहै कबीर हरि कहा उबारै, अपणै पाव आप जो मारै ॥२३९॥

प्राँणी काहे कै लोभ लागि, रतन जनम खोयौ ।
बहुरि हीरा हाथि न आवै, राँम बिनाँ रोयौ ॥ टेक ॥
जल बूंद थैं ज्यांनि प्यंड बाँध्या, अगिन कुंड रहाया ।
दस मास माता उदरि राख्या, बहुरि लागी माया ॥
एक पल जीवन की आसा नाही, जम निहारे सासा ।
बाजीगर संसार कबीरा, जाँनि ढारौं पासा ॥२४०॥

फिरत कत फूल्यौ फूल्यौ ।
जब दस मास उरध मुखि होते, सो दिन काहे भूल्यौ ॥ टेक ॥
जौ जारै तौ होई भसम तन, रहत क्रम ह्वै जाई ।
काँचै कुंभ उद्यक भरि राख्यौं, तिनकी कौन बड़ाई ॥
ज्यूँ माषी मधु संचि करि, जोरि जोरि धन कीनो ।
मूये पीछैं लेहु लेहु करि, प्रेत रहन क्यूँ दीनो ॥
ज्यूँ घर नारी संग देखि करि, तब लग संग सुहेली ॥
मरघट घाट खैंचि करि राखे, वह देखिहु हंस अकेलौ ॥
राँम न रमहु मदन कहा भूले, परत अँधेरै कूवा ।
कहै कबीर सोई आप बँधायौ, ज्यूँ नलनी का सूवा ॥२४१॥

जाइ रे दिन ही दिन देहा,
करि लै बौरी राँम सनेहा ॥ टेक ॥

बालापन गयौ जोबन जासी, जुरा मरण भौ संकट आसी ।
पलटै केस नैंन जल छाया, मूरिख चेति बुढ़ापा आया ॥
राँम कहत लज्या क्यूँ कीजै, पल पल आउ घटै तन छीजे ।
लज्या कहै हूँ जम की दासी, एकै हाथि मुदिगर दूजै हाथि पासी ॥
कहै कबीर तिनहूँ सब हारया, राँम नाम जिनि मनहु बिसारया ॥२४२॥

मेरी मेरी करताँ जनम गयौ,
जनम गयौ पर हरि न कह्यौ ॥ टेक ॥
बारह बरस बालापन खोयौ, बीस बरस कछु तप न कयौ।
तीस बरस कै राँम न सुमिरयौ, फिरि पछितानौं बिरध भयौ॥
सूकै सरवर पालि बँधावै, लुणैं खेत हठि बाड़ि करै।
आयौ चोर तुरग मुसि ले गयौ, मोरी राखत मुगध फिरै॥
सीस चरन कर कंपन लागे, नैंन नीर अस राल बहै।
जिभ्या वचन सूध नहीं निकसैं, तब सुकरित की बात कहै॥
कहै कबीर सुनहु रे संतो धन संच्यो कछु संगि न गयौ।
आई तलब गोपाल राइ की, मैंडी मंदिर छाड़ि चल्यौ॥२४३॥

जाहि जाती नाँव न लीया,
फिरि पछितावैंगो रे जीया ॥टेक॥
धंधा करत चरन कर घाटे, आउ घटी तन खीना।
विषै बिकार बहुत रुचि माँनी, माया मोह चित दीन्हाँ॥
जागि जागि नर काहे सोवै, सोइ सोइ कब जागैंगा।
जब घर भीतरि चोर पड़ैंगे, तब अंचलि किसकै लागैंगा॥
कहै कबीर सुनहु रे संतौ, करि ल्यौ जे कछु करणाँ।
लख चौरासी जोनि फिरौगे, बिनाँ राँम की सरनाँ॥२४४॥

माया मोहि मोहि हित कीन्हाँ,
तायैं मेरो ग्याँन ध्याँन हरि लीन्हाँ ॥ टेक ॥
संसार ऐसा सुपिन जैसा, जीव न सुपिन समाँन।
साँच करि नरि गाँठि बाँध्यौ, छाड़ि परम निधाँन॥
नैंन नेह पतंग हुलसै, पसू, न पेखै आगि।
काल पासि जु मुगध बाँध्या, कलंक काँमिनी लागि।
करि बिचार बिकार परहरि, तिरण तारण सोइ।
कहै कबीर रघुनाथ भजि नर, दूजा नाँही कोइ॥२४५॥

ऐसा तेरा झूठा मीठा लागा,
तायैं साचे सूँ मन भागा ॥टेक॥
झूटे के घरि झूठा आया, झूठा खान पकाया।
झूठी सहन क झूठा बाह्या, झूठै झूठा खाया॥

---

(२४३) ख—मोरी बाँधत।
(२४४) ख—धंधा करत करत कर थाके।

झूठा ऊठण झूठा बैठण, झूठी सबै सगाई।
झूठे के घरि झूठा राता, साचे को न पत्याई ॥
कहै कबीर अलह का पँगुरा, साचे सूँ मन लावौ।
झूठे केरी संगति त्यागौ, मन बंछित फल पावौ ॥२४६॥

कौंण कौंण गया राम कौंण कौंण न जासी,
पड़सी काया गढ माटी थासी ॥ टेक ॥
इंद्र सरीखे गये नर कोड़ी, पाँचो पाँडौ सरिषी जोड़ी।
धू अविचल नही रहसी तारा, चंद सूर की आइसी वारा ॥
कहै कबीर जग देखि ससारा, पड़सी घट रहसी निरकारा ॥२४७॥

ताथैं सेविये नारांइणाँ,
प्रभू मेरो दीनदयाल दया करणाँ ॥ टेक॥
जौ तुम्ह पंडित आगम जाँणौ, विद्या व्याकरणाँ।
तत मत सब ओपदि जाणौ, अति तऊ मरणाँ ॥
राज पाट स्यघासण आसण, बहु सुंदरि रमणाँ।
चंदन चीर कपूर बिराजत, अति तऊ मरणाँ।
जोगी जती तपी संन्यासी, बहु तीरथ भरमणाँ।
लुंचित मुंडित मोनि जटाधर, अंति तऊ मरणाँ ॥
सोचि विचारि सबै जग देख्या, कहूँ न ऊबरणाँ।
कहै कबीर सरणाई आयौ, मेटि जामन मरणाँ ॥२४८॥

पाडे न करसि बाद विवाद,
या देही बिना सबद न स्वाद ॥ टेक ॥
अंड ब्रह्मंड खंड भी माटी, माटी नवनिधि काया।
माटी खोजत सतगुर भेटया, तिन कछू अलख लखाया ॥
जीवत माटी मूवा भी माटी, देखौ ग्यान विचारी।
अंति कालि माटी मैं वासा लेटै पाँव पसारी ॥
माटी का चित्र पवन का थंभा, ब्यंद संजोगि उपाया।
भाँनै घड़ै सँवारै सोई, यहु गोब्यंद की माया।
माटी का मंदिर ग्यान का दीपक, पवन बाति उजियारा।
तिहि उजियारैं सब जग सूझै, कबीर ग्यांन विचारा ॥२४९॥

मेरी जिभ्या बिस्न नैंन नारांइन, हिरदै जपौ गोबिंदा।
जंम दुवार जब लेख माँग्या, तब का कहिसि मुकंदा ॥ टेक ॥
तूँ ब्राँह्मण मै कासी का जुलाहा, चीन्हि न मोर गियाना।
तैं सब माँगे भूपति राजा, मोरे राँम धियाना ॥

पूरब जनम हम ब्राह्मन होते, वोछै करम तप हीनाँ।
राँमदेव की सेवा चूका, पकरि जुलाहा कीन्हाँ॥
नाँमी नेम दसमी करि संजम, एकादसी जागरणाँ।
द्वादसी दाँन पुन्नि की बेलाँ, सर्व पाप छयौ करणाँ।
भौ बूड़त कछू उपाय करीजै, ज्यूँ तिरि लंघै तीरा।
राँम नाँम लिखि मेरा बाँधौ, कहै उपदेस कबीरा॥२५०॥

कहु पाँडे सुचि कवन ठाँव,
जिहि घरि भोजन बैठि खाऊँ॥ टेक॥

माता जूठी पिता पुनि जूठा जूठे फल चित लागे॥
जूठा आँवन जूठा जाँनाँ, चेतहु क्यूँ न अभागे॥
अन्न जूठा पाँनी पुनि जूठा, जूठे बैठि पकाया।
जूठी कड़छी अन्न परोस्या, जूठे जूठा खाया॥
चौका जूठा गोबर जूठा, जूठी का ढीकारा।
कहै कबीर तेई जन सूचे, जे हरि भजि तजहिं विकारा॥२५१॥

हरि बिन झूठे सब ब्यौहार,
केते कोऊ करौ गँवार॥ टेक॥

झूठा जप तप झूठा ग्याँन, राँम राम बिन झूठा ध्याँन।
विधि नखेद पूजा आचार, सब दरिया में वार न पार॥
इंद्री स्वारथ मन के स्वाद, जहाँ साच तहाँ माँडै बाद।
दास कबीर रह्या ल्यौ लाइ, भर्म कर्म सब दिये बहाइ॥२५२॥

चेतनि देखै रे जग धंधा,
राँम नाँम का मरम न जाँनै, माया कै रसि अंधा॥ टेक॥
जनमत ही कहा ले आयो, मरत कहा ले जासी।
जैसे तरवर बसत पँखेरू, दिवस चारि के बासी॥

(२५०) ख प्रति में इसके आगे यह पद है—

कहु पाँडे कैसी सुचि कीजै,
सुचि कीजै तौ जनम न लीजै॥ टेक॥

जा सुचि केरा करहु बिचारा, भिष्ट भए लीन्हा औतारा॥
जा कारणि तुम्ह धरती काटी, तामैं मूए जीव सौ साटी॥
जा कारणि तुम्ह लीन जनेऊ, थूक लगाइ कातै सब कोऊ॥
एक खाल घृत केरी राखा, दूजी खाल मैले घृत राखा॥
सो घृत सब देवतनि चढायो, सोई घृत सब दुनियाँ खायो॥
कहै कबीर सुचि देहु बताई, राम नाँम लीजौ रे भाई॥ ५०॥

आपा थापि अवर कौ निंदै, जन्मत हो जड़ काटी।
हरि को भगति विना यहु देही, धव लोटै ही फाटी ॥
कॉम क्रोध मोह मद मछर, पर अपवाद न सुणिये।
कहै कबीर साध की संगति, रॉम नॉम गुण भणिये ॥२५३॥

रे जम नॉहि नवै व्यापारी,
जे भरैं जगाति तुम्हारी ॥ टेक ॥
वसुधा छाड़ि वनिज हम कीन्ही, लाद्यो हरि को नॉऊँ।
रॉम नॉम की गूँनि भराऊँ, हरि कै टॉडै जॉऊँ ॥
जिनकै तुम्ह अगिवानी कहियत, सो पूँजी हँम पासा।
अबै तुम्हारी कछु वल नॉही, कहै कवीरा दासा ॥२५४॥

मीयाँ तुम्ह सौ बोल्याँ वणि नही आवै।
हम मसकीन खुदाई बंदे, तुम्हारा जस मनि भावै ॥ टेक ॥
अलह अवलि दीन का साहिब, जार नही फुरमाया।
मुरिसद पीर तुम्हारै है को, कहौ कहाँ थै आया ॥
रोजा करै निवाज गुजारै, कलमैं भिसत न होई।
सतरि कावे इक दिल भीतरि, जे करि जानै कोई ॥
खसम पिछॉनि तरस करि जिय मैं माल मनी करि फीकी।
आपा जॉनि सॉई कूं जॉनै, तब ह्वै भिस्त सरीकी ॥
माटी एक भेप धरि नॉनॉ, सब मैं ब्रह्म समानॉ।
कहै कबीर भिस्त छिटकाई, दाजग ही मन मानॉ ॥२५५॥

अलह ल्यौ लॉये काहे न रहिये,
अह निसि केवल रॉम नॉम कहिये ॥ टेक ॥
गुरमुखि कलमा ग्यॉन मुखि छुरी, हुई हलाहल पचूं पुरी ॥
मन मसीति मैं किनहूँ न जॉनॉ, पंच पीर मालिम भगवानॉ ॥
कहै कबीर मै हरि गुन गाऊँ, हिंदू तुरक दोऊ समझाऊँ ॥२५६॥

रे दिल खोजि दिलहर खोजि, नॉ परि परेसॉनी मॉहि।
महल माल अजीज औरति, कोई दस्तगीरी क्यूं नॉहि ॥ टेक ॥
पीरॉ मुरीदॉ काजियाँ, मुलॉ अरू दरवेस।
कहॉ थे तुम्ह किनि कीये, अकलि है सब नेस ॥
कुराना कतेवाँ अस पढि पढ़ि, फिकरि या नही जाइ।
टुक दम करारी जे करै, हाजिरॉ सूर खुदाइ ॥

दरोगाँ वकि वकि हूँहि खुसियाँ, वे अकलि वकहि पुमाँहि ।
इक साच खालिक खालक म्यानै, सो कछू सच सूरति माँहि ॥
अलह पाक तूँ नापाक क्यूँ, अब दूमर नाँही कोइ ।
कबीर करम करीम का, करनी करै जाँनै सोइ ॥ २५७ ॥

खालिक हरि कही दर हाल ।
पंजर जसि करद दुसमन, मुरद करि पैमाल ॥ टेक ॥
भिस्त हुसकाँ दोजगाँ दुदर दराज दिवाल ।
पहनाँम परदा ईत आतस, जहर जंगम जाल ॥
हम रफत रहवरहु समाँ, मैं खुर्दा सुमाँ विसियार ।
हम जिमी असमाँन खालिक, गुद मुँसिकल कार ॥
असमाँन म्यांनै लहग दरिया, तहाँ गुसल करदा बूद ।
करि फिकर रह सालक जसम, जहाँ स तहाँ मौजूद ॥
हँम चु बूँदनि बूँद खालिक, गरक हम तुम पेस ।
कबीर पहन खुदाइ की, रह दिगर दावानेस ॥ २५८ ॥

अलह राम जीऊँ तेरे नाँई,
बंदे ऊपरि मिहर करौ मेरे सांई ॥ टेक ॥
क्या ले माटी भुँइ सूँ मारै क्या जल देइ न्हवायें ।
जो करै मसकीन सतावै, गूँन ही रहै छिपाये ॥
क्या तू जू जप मजन कीये, क्या मसीति सिर नाँये ।
रोजा करै निमाज गुजारै, क्या हज कावै जाँये ॥
ब्राह्मण ग्यारसि करै चौबीसौ, काजी महरम जाँन ।
ग्यारह मास जुदे क्यू कीये, एकहि माँहि समाँन ॥
जौ रे खुदाइ मसीति वसत है, और मुलिक किस केरा ।
तीरथ मूरति राँम निवासा, दुहु मैं किनहूँ न हेरा ॥
पूरिव दिसा हरी का वासा, पछिम अलह मुकाँमा ।
दिल ही खोजि दिलै दिल भीतरि, इहा रांम रहिमाँनाँ ॥
जेती औरति मरदाँ कहिये, सब मैं रूप तुम्हारा ।
कबीर पगुड़ा, अलह राँम का, हरि गुर पीर हमारा ॥२५९॥

---

(२५७) 'क' प्रति मे आठवी में पंक्ति का पाठ इस प्रकार है—
साचु खलक खालक, सैल सूरति माँहि ॥
(२५९) ख—सब मैं नूर तुम्हारा ।

मैं बड़ मैं बड़ मैं बड़ माटी,
मण दसना जट का दस गांठी ॥ टेक ॥
मैं बाबा का जध कहांऊं, अपणी मारी नींद चलांऊं ।
इनि अहंकार घणें घर घाले, नाचत कूदत जमपुरि चाले ॥
कहै कबिर करता ही बाजी, एक पलक मैं राज बिराजी ॥२६०॥

काहे बीहो मेरे साथी, हूं हाथी हरि केरा ।
चौरासी लख जाके मुख मैं, सो च्यंत करेगा मेरा ॥ टेक ॥
कहौ कौन पिवै कहौ कौन गाजै, कहा थैं पांणी निसरै ।
ऐसी कला अनंत हैं जाकै, सो हंम कौ क्यूं बिसरै ॥
जिनि ब्रह्मांड रच्यौ बहु रचना, बाब बरन ससि सूरा ।
पाइक पंच पुहमि जाकै प्रकटै, सो क्यूं कहिये दूरा ॥
नैन नासिका जिनि हरि सिरजे, बसन बसन बिधि काया ।
साधू जन कौं सो क्यूं बिसरै, ऐसा है रांम राया ॥
को काहू का मरम न जानैं, मैं सरनांगति तेरी ।
कहै कबीर बाप रांम राया, हुरमति राखहु मेरी ॥२६१॥

(राग सोरठि)

हरि को नांम न लेइ गंवारा,
क्या सोचै बारंबारा ॥ टेक ॥
पंच चोर गढ मंझा, गढ लूटैं दिवस रे संझा ॥
जौ गढपति मुहकम होई, तौ लूटि न सकै कोई ॥
अंधियारै दीपक चहिए, तब बस्त अगोचर लहिये ॥
जब बस्त अगोचर पाई, तब दीपक रह्या समाई ॥
जौ दरसन देख्या चहिये, तौ दरपन मंजत रहिये ॥
जब दरपन लागै काई, तब दरसन किया न जाई ॥
का पढिये का गुनिये, का बेद पुराना सुनिये ॥
पढे गुनें मति होई, मैं सहजैं पाया सोई ॥
कहै कबीर मैं जांनां, मैं जांनां मन पतियानां ॥
पतियानां जौ न पतीजै, तौ अंधै कूं का कीजै ॥२६२॥

अंधे हरि बिन को तेरा,
कवन सूं कहत मेरी मेरा ॥ टेक ॥
तजि कुलाक्रम अभिमांनां, झूठे भरमि कहा भुलानां ॥
झूठे तन की कहा बड़ाई, जे निमष मांहि जरि जाई ॥

जब लग मनहिं विकारा, तब लगि नही छूटै ससारा ॥
जब मन निरमल करि जाँनाँ, तब निरमल माँहि समानाँ ॥
ब्रह्म अगनि ब्रह्म सोई, अब हरि बिन अौर न कोई ॥
जब पाप पुनि भ्रंम जारी, तब भयौ प्रकास मुरारी ॥
कहै कबीर हरि ऐसा, जहाँ जैसा तहाँ तैसा ॥
भूलै भरमि परै जिनि कोई राजा राँम करै सो होई ॥२६३॥

मन रे सर्यौ न एकौ काजा,
तार्थं भज्यौ न जगपति राजा ॥ टेक ॥

वेद पुरांना सुमृत गुन पढि पढि गुनि भरम न पावा ।
संध्या गायत्री अरु षट करमाँ, तिन थैं दूरि बतावा ॥
बनखडि जाइ बहुत तप कीन्हाँ, कंद मूल खनि खावा ।
ब्रह्म गियाँनी अधिक धियाँनी, जंम कै पटै लिखावा ॥
रोजा किया निवाज गुजारी, बंग दे लोग सुनावा ।
हिरदै कपट मिलै क्यूँ साँई, क्या हल कावै जावा ॥
पहरचौ काल सकल जग ऊपरि, 'माँहि लिखे सब ग्याँनी ।
कहै कबीर ते भये पालसे, राम भगति जिनि जाँनी ॥२६४॥

मन रे जब तैं राम कह्यौ,
पीछे कहिबे कौ कछू न रह्यौ ॥ टेक ॥

का जोग जगि तप दाँनाँ, जौ तैं राम नाँम नहीं जाँना ॥
काँम क्रोध दोऊ भारे, तार्थं गुरु प्रसादि सब जारे ॥
कहै कबीर भ्रम नासी, राजा राम मिले अविनासी ॥२६५॥

राँम राइ सो गति भई हमारी,
मो पैं छूटत नही संसारी ॥ टेक ॥

यूँ पखी उडि जाइ आकासाँ, आस रही मन माँही ॥
छूटी न आस टूटचौ नही फधा उडिबौ लागौ काँहीं ॥
जो सुख करत होत दुख तेहीं कहत न कछु बनि आवै ।
कुंजर ज्यूँ कस्तूरी का मृग, आपै आप बंधावै ॥
कहै कबीर नही बस मेरा, सुनिये देव मुरारी ।
इन भैभीत डरौं जम दूतनि, आये सरनि तुम्हारी ॥२६६॥

राँम राइ तूँ ऐसा अनभूत अनूपम, तेरी अनभै थैं निस्तरिये ॥
जे तुम्ह कृपा करौ जगजीवन, तौ कतहूँ न भूलि न परिये ॥टेक॥

हरि पद दुरलभ अगम अगोचर कथिया गुर गमि विचारा ।
जा कारंनि हम ढूंढत फिरते, आथि भरचो संसारा ॥

प्रगटी जोति कपाट खोलि दिये, दगधे जंम दुख द्वारा।
प्रगटे बिस्वनाथ जगजीवन, मैं पाये करत बिचारा॥
देखत एक अनेक भाव है, लेखत जात अजाती।
बिह की देव तजि ढूंढत फिरते मंडप पूजा पाती॥
कहै कबीर करुणामय किया, देरी गलियाँ बहु बिस्तारा॥
रांम कै नांव परम पद पाया छूटे बिषम बिकारा॥२६७॥

राम राइ को ऐसा बैरागी,
हरि भजि मगन रहै बिष त्यागी॥ टेक॥

ब्रह्मा एक जिनि सृष्टि उपाई, नांव कुलाल धराया।
बहु बिधि भांडै उनही घड़िया, प्रभू का अंत न पाया॥
तरवर एक नांनां बिधि फलिया, ताकै मूल न साखा॥
भौजलि भूलि रह्या रे प्राणी सो फल कदे न चाखा॥
कहै कबीर गुर बचन हेत करि, और न दुनियां आथी॥
माटी का तन माटी मिलिहै, सबद गुरु का साथी॥२६८॥

नैक निहारि हो माया बीनती करै,
दीन बचन बोलै कर जोरै, फुनि फुनि पाइ परै॥ टेक॥

कनक लेहु जेता मनि भावै, कामिन लेहु मन हरनी।
पुत्र लेहु बिद्या अधिकारी राज लेहु सब धरनी॥
अठि सिधि लेहू तुम्ह हरि के जनां नवं निधि है तुम्ह आगैं॥
सुर नर सकल भवन के भूपति, तेऊ लहैं न मागैं॥
तैं पापणी सबै संघारे काकौ काज सँवारयौ॥
जिनि जिनि संग कियौ है तेरो को बेसासि न मारयौ॥
दास कबीर रांम कै सरनै छाडी झूठी माया।
गुर प्रसाद साध की संगति, तहाँ परम पद पाया॥२६९॥

तुम्ह घरि जाहु हँमारी बहनां,
बिष लागै तुम्हरे नैंना॥ टेक॥

अंजन छाड़ि निरंजन राते नां किसही का दैनां।
बलि जाऊँ ताकी जिनि तुम्ह पठई एक माइ एक बहनां॥
राती खांडी देख कबीरा, देखि हमारा सिंगारौ॥
सरग लोक थैं हम चलि आई, करत कबीर भरतारौ॥
सर्ग लोक मैं क्या दुख पड़िया, तुम्ह आई कलि मांही।
जाति जुलाहा नाम कबीरा, अजहुँ पतीजौ नांही॥

तहाँ जाहु जहाँ पाट पटंबर, अगर चंदन घसि लीनाँ।
आइ हमारै कहाँ करौगी, हम तौ जाति कमीनाँ॥
जिनि हँम साजे साँज्य निवाजे बाँधे काचै धागै।
जे तुम्ह जतन करो बहुतेरा, पाँणी आगि न लागै॥
साहिब मेरा लेखा मागै लेखा क्यूँ करि दीजै।
जे तुम्ह जतन करो बहुतेरा, तौ पाँइण नीर न भीजै॥
जाकी मैं मछी सो मेरा मछा, सो मेरा रखवालू।
टुक एक तुम्हारै हाथ लगाऊँ, तो राजाँ राँम रिसालू॥
जाति जुलाहा नाम कबीरा, बनि बनि फिरौ उदासी।
आसि पासि तुम्ह फिरि फिरि बैसो, एक माउ एक मासी॥२७०॥

ताकूँ रे कहा कीजै भाई,
तजि अंमृत विषै सूँ ल्यो लाई॥ टेक॥
विष संग्रह कहा सुख पाया,
रंचक सुख कौं जनम गँवाया॥
मन बरजै चित कह्यो न करई,
सकति सनेह दीपक मैं परई॥
कहत कबीर मोहि भगति उमाहा,
कृत करणी जाति भया जुलाहा॥२७१॥

रे सुख इब मोहि विष भरि लागा
इनि सुख डहके मोटे मोटे छत्रपति राजा॥ टेक॥
उपजै विनसै जाइ बिलाई संपति काहु के संगि न जाई॥
धन जोबन गरब्यो संसारा, यहु तन जरि बरि ह्वैहै छारा।
चरन कवल मन राखि ले धीरा, राम रमत सुख कहै कबीरा॥२७२॥

इब न रहूँ माटी के घर मैं,
इब मैं जाइ रहूँ मिलि हरि मैं॥ टेक॥
छिनहर घर अरु झिरहर टाटी, घन गरजत कंपै मेरी छाती॥
दसवैं द्वारि लागि गई तारी, दूरि गवन आवन भयौ भारी॥
चहूँ दिसि बैठे चारि पहरिया, जागत मुसि गये मोर नगरिया॥
कहै कबीर सुनहु रे लोई, भाँनड घड़ण सँवारण सोई॥२७३॥

कबीर बिगरचा राम दुहाई,
तुम्ह जिनि बिगरौ मेरे भाई॥ टेक॥
चंदन कै ढिग बिरष जु भैला, बिगरि बिगरि सो चंदन ह्वैला॥
पारस कौ जे लोह छिवैगा, बिगरि बिगरि सो कंचन ह्वैला॥

गंगा मै जे नीर मिलैगा, विगरि विगरि गंगोदिक ह्वैला ॥
कहै कवीर जे राम कहैला, विगरि विगरि सो रांमहि ह्वैला ॥२७४॥

राम राइ भई विकल मति मोरी,
कै यहु दुनी दिवानी तेरी ॥ टेक ॥
जे पूजा हरि नाही भावै सो पूजनहार चढावै ॥
जिहि पूजा हरि भल मांनै, सो पूजनहार न जांनै ॥
भाव प्रेम की पूजा, ताथै भयो देव थै दूजा ॥
का कीजै वहुत पसारा, पूजी जे पूजनहारा ॥
कहै कवीर मैं गावा, मै गावा आप लखावा ॥
जो इहि पद मांहि समाना, सो पूजनहार सयांना ॥२७५॥

राम राइ भई विगूचनि भारी,
भले इन ग्यांनियन थै ससारी ॥ टेक ॥
इक तप तीरथ औगाहैं इक मानि महातम चाहै ॥
इक मैं मेरी मै वीझै, इक अहमेव मैं रीझै ॥
इक कथि कथि भरम जगांवैं, सँमिता सी वस्त न पावैं
कहै कवीर का कीजै, हरि सूझै सो अजन दीजै ॥२७६॥

काया मजसि कौन गुनाँ,
घट भीतरि है मलनाँ ॥ टेक ॥
जौ तूँ हिरदै सुध मन ग्यानी, तौ कहा विरौले पांनी ।
तूँवी अठसठि तीरथ न्हाई, कडवापन तऊ न जाई ॥
कहै कवीर विचारी, भवसागर तारि मुरारी ॥ २७७॥

कैसे तूँ हरि कौ दास कहायौ,
करि वहु भेपर जनम गँवायौ ॥ टेक ॥
सुध वुध होइ भज्यौ नहि सांई काछयो डयँभ उदर कै तांई ॥
हिरदै कपट हरि सूँ नही सांचौ, कहा भयो जे अनहद नाच्यौ ॥
झूठे फोकट कलू मँझारा, राम कहै ते दास नियारा ॥
भगति नारदी मगन सरीरा, इहि विधि भव तिरि कहै कवीरा ॥२७८॥

रांम राइ इहि सेवा भल मांनै,
जै कोई रांम नांम तत जांनै ॥ टेक ॥
दे नर कहा पषालै काया, सो तन चीन्हि जहाँ थै आया ॥
कहा विभूति अटा पट वांधैं, का जल पैसि हुतासन साधै ॥
रांममां दोई आखिर सारा, कहै कवीर तिहुँ लोक पियारा ॥२७९॥

इहि विधि रॉम सूँ ल्यौ लाइ ।
चरन पाषें निरति करि, जिभ्या विना गुँण गाइ ॥ टेक ॥
जहाँ स्वाँति बूँद न सीप साइर सहजि मोती होइ ।
उन मोतियन मे नीर पोयौ 'पवन अंवर धोइ ॥
जहाँ धरनि वरषै गगन भीजै, चंद सूरज मेल ।
दोइ मिलि तहाँ जुडन लागे, करता हंसा केलि ॥
एक विरप भीतरि नदी चाली, कनक कलस समाइ ।
पंच सुवटा आइ वैठे, उदै भई वनराइ ॥
जहाँ विछट्यो तहाँ लाग्यौ, गगन वैठो जाइ ।
जन कवीर वटाऊवा, जिनि मारग लियौ चाइ ॥२८०॥

ताथै मोहि नाचवौ, न आवै,
मेरो मन मंदला न वजावै ॥ टेक ॥
ऊभर था ते सूभर भरिया, त्रिष्णा गागरि फूटी ।
हरि चिंतत मेरो मंदला भीनौ, भरम भोयन गयौ छूटी ॥
ब्रह्म अगनि मैं जरी जु ममिता, पापड अरु अभिमानाँ ।
काम चोलना भया पुराना, मोपै होइ न आना ॥
जे वहु रूप कीये ते किये, अव वहु रूप न होई ।
थाकी सौज संग के विछुरे, राम नाँम मसि धोई ॥
जे थे सचल अचल ह्वै थाके, करते वाद विवादं ।
कहै कवीर मै पूरा पाया, भय राम परसादं ॥२८१॥

अव क्या कीजै ग्यान विचारा,
निज निरखत गत व्यौहारा ॥ टेक ॥
जाचिग दाता इक पाया धन दिया जाइ न खाया ॥
कोई ले भरि सकै न मूका, औरनि पै जानाँ चूका ।
तिस वाझ न जीव्या जाई, वो मिलै त घालै खाई ॥
वो जोवन भला कहाहीं, विन मूवाँ जीवन नाहीं ॥
घसिचंदन वनखंडि वारा, विन नैननि रूप निहारा ।
तिहि पूत वाप इक जाया, विन ठाहर नगर वसाया ॥
जौ जीवत ही मरि जाँनै तौ पच सयल सुख मानै ।
कहै कवीर सो पाया, प्रभू भेटत आप गँवाया ॥२८२॥

अव मैं पायौ राजा राम सनेही ॥ टेक ॥
जा विनु दुख पावै मेरी देही ॥ टेक ॥
वेद पुरान कहत जाकी साखी, तीरथि व्रति न छूटै जंम की पासी ॥

जाथै जनम लहत नर आगै, पाप पुनि दोऊ भ्रम लागै ॥
कहै कबीर सोई तत जागा, मन भया मगन प्रेम सर लागा ॥२८३॥

विरहिनी फिरै है नाम अधीरा,
उपजि बिनाँ कछू समझि न परई, बांझ न जानै पीरा ॥ टेक ॥
या बड बिथा सोई भल जांनै रांम विरह सर मारी।
कैसो जांनै जिनि यहु लाई, कै जिनि चोट सहारी ॥
संग की बिछुरी मिलन न पावै सोच करै अरु काहे।
जतन करै अरु जुगति बिचारै, रटै रांम कूं चाहै ॥
दीन भई बूझै सखियन कौं, कोई मोही राम मिलावै।
दास कबीर मीन ज्यूं तलपै, मिलै भलै सचु पावै ॥२८४॥

जातनि बेद न जानैगा जन सोई,
सारा भरम न जांनै रांम कोई ॥ टेक ॥
चषि बिन दिवस जिसी है सझा,
व्यावन पीर न जानै वंझा ॥
सूझै करक न लागै कारी,
वैद बिधाता करि मोहि सारी ॥
कहै कबीर यहु दुख कासनि कहिये,
अपने तन की आप ही सहिये ॥२८५॥

जन की पीर हो राजा राम भल जांनै,
कहूँ काहि को मानै ॥ टेक ॥
नैन का दुख बैन जांनै, बैन को दुख श्रवना ॥
प्यड का दुख प्रान जानै, प्रान का दुख मरनां ॥
आस का दुख प्यासा जानै, प्यास का दुख नीर।
भगति का दुख राम जानै, कहै दास कबीर ॥२८६

तुम्ह बिन रॉम कवन सौं कहिये,
लागी चोट बहुत दुख सहिये ॥ टेक ॥
वेध्यौ जीव बिरह कै भालै, राति दिवस मेरे उर सालै ॥
को जानैं मेरे तन की पीरा, सतगुर सबद बहि गयौ सरीरा ॥

---

(२८७) ख प्रति के अंतिम पंक्ति इस प्रकार है—
लागी चोट बहुत दुख सहिये। देखो २८७ की टेक।

तुम्ह से बैंद न हमसे रोगी, उपजी ब्रिथा कैसै जीवै बियोगी ॥
निस वासुरि मोहि चितवत जाई, अजहूँ न आइ मिले रॉम राई ॥
कहत कबीर हमकौं दुख भारी, बिन दरसन क्यूँ जीवहि मुरारी ॥ २८७ ॥

तेरा हरि नाँमैं जुलाहा,
मेरे रॉम रमण को लाहा ॥ टेक ॥
दस सै सूत की पुरिया पूरी, चंद सूर दोइ साखी ।
अनत नाँव गिनि लई मजूरी, हिरदा कवल मैं राखी ॥
सुरति सुमृति दोइ खूँटी कीन्ही आरंभ कीया बमेकी ।
ग्यान तत की नली भराई बुनित आतमा पेषी ॥
अविनासी धंन लई मंजूरी, पूरी थापनि पाई ।
रस बन सोधि सोधि सब आये, निकटै दिया बताई ॥
मन सूधा कौ कूच कियौ है, ग्यान विथरनी पाई ।
जीव की गाँठि गुडी सब भागी, जहाँ की तहाँ ल्यौ लाई ॥
वेठि वेगारि बुराई थाकी, अनभै पद परकासा ।
दास कबीर बुनत सच पाया, दुख संसार सब नासा ॥ २८८ ॥

भाई रे सकहु त तनि बुनि लेहु रे,
पीछै रॉमहि दोस न देहु रे ॥ टेक ॥
करगहि एकै बिनाँनी, ना भीतरि पंच पराँनी ॥
तामैं एक उदासी, तिहि तणि बुणि सबै बिनासी ॥
जे तूँ चौसठि बरिया धावा, नहीं होइ पंच सूँ मिलावा ॥
जे तै पाँसै छसै ताँणी, तौ सुख सूँ रहै पराँणी ॥
पहलो तणियाँ ताणाँ पीछै बुणियाँ बाँणाँ ॥
तणि बुणि मुरतब कीन्हाँ, तब राम राइ पूरा दीन्हाँ ॥
राछ भरत भइ संझा, तारुणी त्रिया मन बंधा ॥
कहै कबीर विचारी, अब छोछी नली हँमारी ॥ २८९ ॥

वै क्यूँ कासी तजै मुरारी,
तेरी सेवा चोर भये बनवारी, ॥ टेक ॥
जोगी जती तपी सन्यासी, मठ देवल बसि परसै कासी ॥
तीन बार जे नित प्रति न्हावै, काया भीतरि खबरि न पावै ॥
देवल देवल फेरी देही, नाँव निरंजन कबहुँ न लेही ॥
चरन बिरद कासी कौ न देहूँ, कहै कबीर भल नरकहि जैहूँ ॥ २९० ॥

तब काहे भूली बनजारे,
अब आयौ चाहै संगि हँमारे ॥ टेक ॥

जब हँम बनजी लौंग सुपारी, तब तुम्ह काहे बनजी खारी ।
जब हम बनजी परमल कस्तूरी, तब तू काहे बनजी कूरी ॥
अमृत छाड़ि हलाहल खाया, लाभ लाभ करि करि मूल गँवाया ।
कहै कबीर हँम बनज्या सोई, जांथै आवागमन न होई ॥ २६१ ॥

परम गुर देखो रिदै बिचारी,
कछू करौ सहाई हमारी ॥ टेक ॥

लवानालि तति एक सँमि करि जत्र एक भल साजा ।
सति असति कछु नाहीं जानूँ, जैसे बजवा तैसें बाजा ॥
चोर तुम्हारा तुम्हारी आग्या, मुसियत नगर तुम्हारा ।
इनके गुनह हमह का पकरौ, का अपराध हमारा ॥
सेई तुम्ह सेई हम एकै कहियत, जब आपा पर नाहीं जांनां ॥
ज्यूँ जल मैं जल पैसि न निकसै, कहै कबीर मन मांनां ॥ २६२ ॥

मन रे आइर कहाँ गयौ,
ताथैं मोहि बैराग भयौ ॥ टेक ॥

पच तत ले काया कीन्हीं, तत कहा ले कीन्हां ।
करमों के बसि जीव कहत है, जीव करम किनि दीन्हां ॥
आकास गगन पाताल गगन दसों दिसा गगन रहाई ले ।
आँनंद मूल सदा परसोतम, घट बिनसैं गगन न जाई ले ॥
हरि मैं तन है तन मैं हरि है, है पुनि नांही सोई ॥
कहै कबीर हरि नांम न छाडूँ सहजैं होई सो होई ॥२६३॥

हँमारै कौंन सहै सिरि भारा,
सिर की शोभा सिरजनहारा ॥ टेक ॥

टेढी पाग बड जूरा, जरि भये भसम कौ कूरा ॥
अनहद कीगुरी बाजी, तब काल द्रिष्टि भै भागी ॥
कहै कबीर रांम राया, हरि कै रंगै मूड़ मुडाया ॥२६४॥

कारनि कौंन सँवारै देहा,
यहु तनि जरि बरि ह्वैहै षेहा ॥ टेक ॥

चोवा चदन चरचत अंगा, सो तन जरत काठ के संगा ॥
बहुत जतन करि देह मुटचाई, अगिन दहै कै जंबुक खाई ॥
जा सिरि रचि रचि बाँधत पागा, ता सिरि चंच सँवारत कागा ॥
कहि कबीर सब झूठा भाई, केवल राम रह्यो ल्यौ लाई ॥२६५॥

धंन धधा ब्यौहार सब, माथा मिथ्यावाद ।
पाँणी नीर हलूर ज्यूँ हरि नाँव बिना अपवाद ।।टेक।।
इक राँम नाँम निज साचा, चित चेति चतुर घट काचा ।।
इस भरमि न भूलसि भोली, बिधना की गति है औली ।।
जीवते कूँ मारन धावैं, मरते कौं बेगि जिलावैं ।।
जाकैं हुँहि जम से वैरी, सो क्यूँ न सोवैं नींद घनेरी ।।
जिहि जागत नींद उपावैं तिहि सोवत क्यू न जगावैं ।।
जलजत न देखिसि प्रानी, सब दीसै झूठ निदानी ।।
तन देवल ज्यूँ धज आछै, पड़ियाँ पछितावै पाछै ।।
जीवत हीं कछू कीजै, हरि राँम रसाइन पीजै ।।
राँम नाँम निज सार है माया लागि न खोई ।।
अंति कालि सिरि पोटली, ले जात न देख्या कोई ।।
कोई ले जात न देख्या, वलि विक्रम भोज ग्रस्या ।।
काहू कै संगि न राखी, दीसै बीसल की साखी ।।
जब हंस पवन ल्यौ खेलैं, पसरचौ हाटिक जब मेलैं ।।
मानिख जनम अवतारा, नाँ ह्वैहै बारम्बारा ।।
कबहूँ ह्वै किसा बिहाँनाँ, तर पंखी जेम उड़ानाँ ।।
सब आप आप कूँ जाई, को काहू मिलै न भाई ।।
मूरिख मनिखा जनम गँवाया, वर कौड़ी ज्यूँ डहकाया ।।
जिहि तन धन जगत भुलाया, जग राख्यौ परहरि माया ।।
जल अंजुरी जीवन जैसा, ताका है किसा भरोसा ।।
कहै कबीर जग धंधा, काहे न चेतहु अंधा ।।२९६।।

रे चित चेति च्यंति लै ताहीं,
जा च्यंतत आपा पर नाँहीं ।। टेक ।।
हरि हिरदै एक ग्यान उपाया, ताथैं छूटि गई सब माया ।।
जहाँ नाँद न ब्यंद दिवस नहीं राती, नहीं नरनारि नहीं कुल जाती ।।
कहै कबीर सरब सुख दाता, अविगत अलख अभेद बिधाता ।।२९७।।

सरवर तटि हंसणी तिसाई
जुगति बिनाँ हरि जल पिया न जाई ।।टेक।।
पीया चाहै तौ लै खग सारी, उड़ि न सकै दोऊ पर भारी ।।
कुंभ लीयैं ठाढी पनिहारी, गुण बिन नीर भरै कैसै नारी ।।
कहै कबीर गुर एक बुधि बताई, सहज सुभाइ मिले राँम राई ।।२९८।।

भरथरी भूप भया बैरागी ।
बिरह बियोग बनि बनि ढूंढै, वाकी सुरति साहिब सौ लागी ।।टेक।।
हसती घोडा गाँव गढ गूडर, कनडा पा इक आगी ।
जोगी हूवा जाँणि जग जाता, सहर उजीणी त्यागी ।।
छत्र सिघासण चवर ढुलता राग रग बहु आगी ।।
सेज रमैणी रभा होती, तासौ प्रीत न लागी ।
सूर वीर गाढा पग रोप्या, इह विधि माया त्यागी ।
सब मुख छाडि भज्या इक साहिब, गुरु गोरख ल्यौ लागी ।।
मनसा वाचा हरि हरि भाखै, ग्रध्रप सुत बड भागी ।
कहै कबीर कुदर भजि करता, अमर भए अणरागी ।।२९९।।

(राग केदारौ)

सार सुख पाइये रे,
रंगि रमहु आत्माँराँम ।। टेक ।।
बनह बसे का कीजिये, जे मन नही तजै विकार ।
घर बन तत समि जिनि किया, ते बिरला संसार ।।
का जटा भसम लेपन किये, कहा गुफा मैं बास ।
मन जीत्याँ जग जीतिये, जौ बिषया रहै उदास ।।
सहज भाइ जे ऊपजै, ताका किसा माँन अभिमान ।
आपा पर समि चीनियै, तब मिलै आतमाँ राम ।।
कहै कबीर कृपा भई, गुर ग्यान कह्या समझाइ।
हिरदै श्री हरि भेटियै, जे मन अनतै नही जाइ ।।३००।।

है हरि भजन कौ प्रवाँन ।
नीच पावैं ऊँच पदवी, बाजते नीसान ।।टेक।।
भजन कौ प्रताप ऐसो, तिरे जल पापान ।
अधम भील अजाति गनिका, चढे जात बिवाँन ।।
नव लख तारा चलै मडल, चलै ससिहर भाँन ।
दास ध्रू कौ अटल पदवी राँम को दीवाँन ।।
निगम जाकी साखि बोलै, कहै सत सुजाँन ।
जन कबीर तेरी सरनि आयौ, राखि लेहु भगवाँन ।।३०१।।

---

(२९९) ख प्रति मे यह पद नही है ।

चलौ सखी जाइये तहाँ,
जहाँ गये पाँइयें परमानंद ॥ टेक ॥
यहु मन आमन घूमनां, मेरो तन छीजत नित जाइ।
च्यंतामणि चित चोरियौ, तार्थं कछू न सुहाइ ॥
सुंनि लखी सुपनै की गति ऐसी, हरि आए हम पास।
सोवत ही जगाइया, जागत भए उदास ॥
चलु सखी बिलम न कीजिये, जब लग साँस सरीर।
मिलि रहिये जगनाथ सूं, सूं कहै दास कबीर ॥३०२॥

मेरे तन मन लागी चोट सठौरी।
बिसरे ग्यान बुधि सब नाठी, भई बिकल मति बौरी ॥ टेक ॥
देह बदेह गलित गुन तीनूं, चलत अचल भई ठौरी ॥
इत उत जित कित द्वादस चितवत, यहु भई गुपत ठगौरी ॥
सोई पै जांनै पीर हमारी, जिहि सरीर यहु व्यौरी।
जन कबीर ठग ठग्यां है बापुरौ, सुनि सँमानी त्यौरी ॥३०३॥

मेरी आँखियाँ जान सुजाँन भई।
देवर भरम सुसर संग तजि करि, हरि पीव तहाँ गई। टेक ॥
बालपनै के करम हमारे काटे जानि दई।
बाँह पकरि करि कृपा कीन्ही, आप समीप लई ॥
पानी की बूंद थें जिनि प्यंड साज्या, तासगि अधिक करई।
दास कबीर पल प्रेम न घटई, दिन दिन प्रीति नई ॥३०४॥

हो बलियां कब देखोंगी तोहि।
अह निस आतुर दरसन कारनि, ऐसी व्यापै मोहि ॥ टेक ॥
नैंन हमारे तुम्ह कूं चाँहै, रती न मांनैं हारि।
बिरह अगनि तन अधिक जरावै ऐसी लेहु बिचारि ॥
सुनहुं हमारी दादि गुसाँईं, अब जिन करहु बधीर।
तुम्ह धीरज मैं आतुर स्वामी, काचै भाँडै नीर ॥
बहुत दिनन कै बिछुरे माधौ, मन नही बाँधै धीर।
देह छतां तुम्ह मिलहु कृपा करि, आरतिवंत कबीर ॥३०५॥

वै दिन कब आवैंगे भाइ।
जा कारनि हम देह धरी है, मिलिवौ अंगि लगाइ ॥ टेक ॥
हौं जांनूं जे हिल मिलि खेलूं, तन मन प्रांन समाइ।
या कांमनां करौ परपूरन, समरथ हौ रांम राइ ॥

माँहि उदासी साधी चाहे, चितवन रैनि बिहाइ।
सेज हमारी स्यंघ भई है, जब सोऊँ तब खाइ॥
यहु अरदास दास की सुँनिये, तन की तपति बुझाइ।
कहै कबीर मिलै जे साँई, मिलि करि मंगल गाइ॥३०६॥

बाल्हा आव हमारे गेह रे,
तुम्ह बिन दुखिया देह रे॥टेक॥
सब को कहै तुम्हारी नारी, मोकौ इहै अदेह रे।
एकमेक ह्वै सेज न सोवै, तब लग कैसा नेह रे॥
आन न भावै नींद न आवै, ग्रिह बन धरै न धीर रे।
ज्यूँ कामी कौ काम पियारा, ज्यूँ प्यासे कूँ नीर रे॥
है कोइ ऐसा परउपगारी, हरि सूँ कहै सुनाइ रे।
ऐसे हाल कबीर भये है, बिन देखे जीव जाइ रे॥३०७॥

माधौ कब करिहौ दाया।
काम क्रोध अहंकार व्यापै, नाँ छूटै माया॥टेक॥
उतपति व्यंद भयौ जा दिन थै, कबहूँ सच नहीं पायौ।
पंच चार संगि लाइ दिए हैं, इन संगि जनम गँवायौ॥
तन मन डस्यौ भुजंग भाँमिनी, लहरी वार न पारा।
सो गारडू मिल्यो नहीं कबहूँ, पसर्यौ विष बिकराला॥
कहै कबीर यहु कासूँ कहिये, यह दुख कोई न जानै।
देहु दीदार बिकार दूरि करि, तब मेरा मन मानै॥३०८॥

मैं बन भूला तूँ समझाइ।
चित चंचल रहै न अटक्यौ, बिषै बन कूँ जाइ। टेक॥
संसार सागर माँहि भूल्यौ, थक्यौ करत उपाइ।
मोहनी माया बाघनी थै, राखि लै राँम राइ॥
गोपाल सुनि एक बीनती, सुमति तन ठहराइ।
कहै कबीर यहु काँम रिप है, मारै सबकूँ ढाइ॥३०९॥

भगति बिन भौजलि डूबत है रे।
बोहिथ छाडि बैसि करि डूंडै, बहुतक दुख सहै रे॥टेक॥
बार बार जम पै डहकावै हरि कौ ह्वै न रहै रे।
चोरी के बालक की नाईं, कासूँ बाप कहै रे॥

---

(३०८) ख—लहरी अंत न पारा।

नलिनी के सुवटा की नाँई, जग सूँ राचि रहै रे।
वंसा अपनि वंस कुल निकसै, आपहि आप दहै रे॥
खेवट बिनाँ कवन भौ तारै, कैसे पार गहै रै।
दास कबीर कहै समझावै, हरि की कथा जीवै रे॥
राँम कौ नाँव अधिक रस मीठौ, बरबार पीवै रे॥३१०॥

चलत कत टेढौ टेढौ रे।
नऊँ दुवार नरक धरि मूंदे, तू दुरगंधि को बैढौ रे॥
जे जारै तौ होई भसमतन रहित किरम जल खाई।
सूकर स्वाँन काग कौ भखिन, तामैं कहा भलाई॥
फूटै नैन हिरदै नाही सूझै, मति एकै नहीं जाँनी।
माया मोह ममिता सूँ बाँध्यौ बूडि मूवौ बिन पाँनी॥
बारू के घरवा मैं बैठो, चेतत नहीं अयाँनाँ।
कहै कबीर एक राँम भगती बिन, बूड़े बहुत सयाना॥ ३११॥

अरे परदेसी पीव पिछाँनि।
कहा भयौ तोकौ समझि न परई, लागी कैसी बाँनि॥ टेक॥
भोमि बिडाणी मैं कहा रातौ, कहा कियो कहि मोहि।
लाहै कारनि मूल गमावै, समझावत हूँ तोहि॥
निस दिन तोहि क्यूँ नीद परत है, चितवत नाँही तोहि॥
जम से बैरी सिर परि ठाढे पर हथि कहाँ बिकाइ॥
झूठे परपच मैं कहा लागौ, ऊठै नाँही चालि।
कहै कबीर कछू बिलम न कीजै, कौने देखी काल्हि॥ ३१२॥

भयौ रे मन पाहुँनड़ौ दिन चारि।
आजिक काल्हिक माँहि चलैगो, ले किन हाथ सँवारि॥ टेक॥
सौज पराई जिनि अपणावै, ऐसी सुणि किन लेह।
यहु ससार इसौ रे प्राँणी, जैसी धूँवरि मेह॥
तन धन जीवन अँजुरी कौ पानी, जात न लागै बार।
सैवल के फूलन परि फूल्यौ, गरब्यो कहा गँवार॥
खोटी खाटै खरा न लीया, कछू न जाँनी साटि।
कहै कबीर कछू बनिज न कीयौ, आयौ थौ इहि हाटि॥ ३१३॥

मन रे राँम नाँमहि जाँनि।
थरहरी थूँनी परचो मंदिर सूतौ खूँटी तानि॥ टेक॥
सैन तेरी कोई न समझै, जीभ पकरी आँनि।
पाँच गज दोवटी माँगी, चूँन लीयौ साँनि॥

वैसदर पोपरी हाँडी, चल्यौ लादि पलाँनि ।
भाई बँध वोलइ वहु रे, काज कीनौ ग्राँनि ॥
कहै कबीर या मैं झूँठ नाही, छाडि जीय की बाँनि ।
राँम नाँम निसंक भजि रे, न करि कुल की काँनि ।।३१४।।
प्राणी लाल ग्रांसर चल्यौं रे वजाइ ।
मुठी एक मठिया मुठि एक कठिया, सग काहू कै न जाइ ।। टेक ।।
देहली लग तेरी मिहरी सगी रे, फलसा लग सगी माइ ।
मड़हट लूं सब लोग कुटुंबी, हंस अकेलौ जाइ ।।
कहाँ वै लोग कहाँ पुर पाटण, बहुरि न मिलबौ आइ ।
कहै कबीर जगनाथ भजहु रे, जन्म अकारथ जाइ ।। ३१५ ।।
राँम गति पार न पावै कोई ।
च्यंतामणि प्रभु निकटि छाडि करि, भ्रँमि मति बुधि खोई ।। टेक ।।
तीरथ बरत जपै तप करि करि, वहुत भाँति हरि सोधै ।
सकति सुहाग कहौ क्यूँ पावै, अछता कत विरोधै ।।
नारी पुरिप बसै इक सगा, दिन दिन जाइ अबोलै ।
तजि अभिमान मिलै नही पीव कूं, ढूंढत वन वन डोलै ।।
कहै कबीर हरि अकथ कथा है, विरला कोई जानै ।।
प्रेम प्रीति वेधी अंतर गति, कहूँ काहि को मानै ।। ३१६ ।।
राँम विनाँ संसार धंध कुहेरा,
सिरि प्रगटचा जम का फेरा ।। टेक ।।
देव पूजि पूजि हिंदू मूये, तुरुक मूये हज जाई ।
जटा बाँधि बाँधि जोगी मूये, कापड़ी के दारौ पाई ।।
कवि कवीवै कविता मूये, कापड़ी के दारौ जाई ।
केस लूंचि लूंचि मूये वरतिया, इनमे किनहूँ न पाई ।।
धन सचते राजा मूये अरु ले कंचन भारी ।
वेद पढे पढि पडित मूये रूप भूले मूई नारी ।
जे नर जोग जुगति करि जाँनै, खोजै आप सरीरा ।
तिनकूं मुकति का ससा नाही कहत जुलाह कवीरा ।।३१७।।
कहूँ रे जे कहिवे की होइ ।
नाँ को जानै नाँ को मानै तार्थं अचिरज मोहि ।। टेक ।।
अपने अपने रन के राजा, मॉनत नाही कोइ ।
अति अभिमान लोभ के घाले, अपनपौ खोइ ।।

मैं मेरी करि यहु तन खोयो, समझत नही गँवार ।
भौंजलि अधफर थाकि रहे हैं, बूड़े बहुत अपार ॥
मोहि आग्या दई दयाल दया करि, काहू कूँ समझाइ ।
कहै कबीर मैं कहि कहि हारयौं, अब मोहि दोष न लाइ ॥३१८॥

एक कोस बन मिलांन न मेला ।
बहुतक भाँति करै फुरमाइस, है असवार अकेला ॥ टेक ॥
जोरत कटक जु घरत सब गढ़, करतब झेली झेला ।
जोरि कटक गढ़ तोरि पातिसाह, खेलि चल्यौं एक खेला ॥
कूँच मुकाँम जोग के घर मैं, कछू एक दिवस खटाँनाँ ।
आसन राखि बिभूति साखि दे, फुनि ले मटी उडाँनाँ ॥
या जोगि की जुगति जू जाँनै, सो सतगुर का चेला ।
कहै कबीर उन गुर की कृपा थैं, तिनि सब भरम पछेला ॥३१९॥

(राग मारू)

मन रे राँम सुमिरि, राँम सुमिरि, राँम सुमिरि भाई ।
राँम नाँम सुमिरन बिनैं, बूड़त है अधिकाई ॥ टेक ॥
दारा सुत ग्रेह नेह, संपति अधिकाई ॥
यामैं कछु नाँहि तेरौ, काल अवधि आई ॥
अजामेल गज गनिका, पतित करम कीन्हाँ ।
तेऊ उतरि पारि गये, राँम नाँम लीन्हाँ ॥
स्वाँन सूकर काग कीन्हौ, तऊ लाज न आई ।
राँम नाँम अंमृत छाड़ि, काहे बिष खाई ॥
तजि भरम करम बिधि नखेद, राँम नाँम लेही ।
जन कबीर गुर प्रसादि, राँम करि सनेही ॥३२०॥

राँम नाँम हिरदै धरि, निरमोलिक हीरा ।
सोभा तिहूँ लोक, तिमर जाय त्रिविध पीरा ॥ टेक ॥
त्रिसनाँ नैं लोभ लहरि, काँम क्रोध नीरा ।
मद मछर कछ मछ, हरषि सोक तीरा ॥
काँमनी अरु कनक भवर, बोये बहु बीरा ।
जन कबीर नवका हरि, खेवट गुरु कीरा ॥३२१॥

चलि मेरी सखी हो, वो लगन राँम राया ।
जब तक काल बिनासै काया ॥ टेक ॥
जब लोभ मोह की दासी, तीरथ ब्रत न छूटै जंम की पासी ।

आवैंगे जम के घालैंगे बाँटी, यहु तन जरि बरि होइगा माटी ॥
कहै कबीर जे जन हरि रँगिराता, पायौ राजा राँम परद पद दाता ॥३२२॥

(राग टोड़ी)

तू पाक परमानदे ।
पीर पैकबर पनह तुम्हारी, मैं गरीब क्या गदे ॥ टेक ॥
तुम्ह दरिया सबही दिल भीतरि परमाँनद पियारे ।
नैंक नजरि हम ऊपरि नाँही, क्या कमिबखत हँमारे ॥
हिकमति करै हलाल बिचारै, आप कहाँवै मोटे ।
चाकरी चोर निवाले हाजिर, साँई सेती खोटे ॥
दाँइम दूवा करद बजावै, मैं क्या करूँ भिखारी ।
कहै कबीर मैं बंदा तेरा, खालिक पनह तुम्हारी ॥३२३॥
अब हम जगत गौंहन तैं भागे,
जग की देखि गति रॉमहि ढूँरि लाँगे ॥ टेक ॥
अयाँनपनैं थैं बहु बौराने, समझि परी तब फिर पछिताने ॥
लोग कहौ जाकै जो मनि भावै, लहै भुवगम कौन डसावै ॥
कबीर बिचारि इहै डर डरिये, कहै का हो इहाँ नैं मरिये ॥३२४॥

(राग भैरूँ)

ऐसा ध्यान धरौ नरहरी
सबस अनाहद च्यंत करी ॥ टेक ॥
पहली खोजौ पंचे बाइ, बाइ व्यद ले गगन समाइ ॥
गगन जोति तहाँ त्रिकुटी संधि, रबि ससि पवनाँ मेलौ बंधि ॥
मन थिर होइ त कवल प्रकासै, कवला माँहि निरंजन बासै ॥
सतगुरु सपट खोलि दिखावै, निगुरा होइ तो कहाँ बतावै ।
सहज लछिन ले तजो उपाधि, आसण दिढ निद्रा पुनि साधि ॥
पुहुप पत्र जहाँ हीरा मणी, कहै कबीर तहाँ त्रिभुवन धणी ॥३२५॥
इहि विधि सेविये श्री नरहरी,
मन की दुविध्या मन परहरी ॥ टेक ॥
जहाँ नही तहाँ कछू जाँणि, जहाँ नही तहाँ लेहु पछाँणि ॥
नाँही देखि न जइये भागि, जहाँ नही तहाँ रहिये लागि ॥
मन मंजन करि दसवै द्वारि, गंगा जमुना संधि बिचारि ॥

नादहि व्यंद कि व्यंदहि नाद, नादहि व्यंद मिलै गोव्यंद ॥
देवी न देवा पूजा नही जाप, भाइ न बंध माइ नही बाप ॥
गुणातीत जस निरगुन आप, भ्रम जेवड़ी जन कीयौ साप ॥
तन नाँही कब जब मन नाँहि, मन परतीति ब्रह्म मन माँहि ॥
परहरि बकुला ग्रहि गुन डार, निरखि देखि निधि वार न पार ॥
कहै कबीर गुर परम गियाँन, सुंनि मंडल मैं धरौ धियाँन ॥
प्यड परे जीव जैहैं जहाँ, जीवत ही ले राखौ तहाँ ॥३२६॥

अलह अलख निरंजन देव,
किहि विधि करौं तुम्हारी सेव ॥ टेक ॥
विश्न सोई जाको विस्तार, सोई कृस्न जिनि कीयौ संसार।
गोव्यद ते ब्रह्मंडहि गहै, सोई राम जे जुगि जुगि रहै ॥
अलह सोई जिनि उमति उपाई, दस दर खोलै सोई खुदाई।
लख चौरासी रब परवरै, सोई करीम जे एती करै ॥
गोरख सोई ग्यांन गमि गहै, महादेव सोई मन की लहै।
सिध सोई जो साधै इती, नाथ सोई जो त्रिभुवन जती ॥
सिध साधू पैकबर हूवा, जपै सु एक भेष है जूवा।
अपरपार का नाँउ अनत, कहै कबीर सोई भगवत ॥३२७॥

तहाँ जौ राँम नाँम ल्यौ लागै,
तौ जुरा मरण छूटै भ्रम भागै ॥ टेक ॥
अगम निगम गढ़ रचि ले अवास, तहुवाँ जोति करै परकास।
चमकै बिजुरी तार अनत, तहाँ प्रभु बैठे कवलाकत ॥
अखड मडिल मंडित मड, त्रि स्नाँन करै त्रीखड।
अगम अगोचर अभिअंतरा, ताकौ पार न पावै धरणीधरा ॥
अरध उरध बिचि लाइ ले अकास, तहुँवा जोति करै परकास।
टार्‌यौ टरै न आवै जाइ, सहज सुंनि मै रह्यौ समाइ ॥
अबरन बरन स्यांम नही पीत, होहू जाइ न गावै गीत।
अनहद सबद उठै झणकार, तहाँ प्रभू बैठे समरथ सार ॥
कदली पुहुप दीप परकास, रिदा पकज मै लिया निवास।
द्वादस दल अभिअतरि स्यत, तहाँ प्रभु पाइसि करिलै च्यत ॥
अमलिन मलिन घाम नही छाँहाँ, दिवस न राति नही है ताहाँ।
तहाँ न ऊगै सूर न चद, आदि निरजन करै अनंद ॥
ब्रह्मडे सो प्यडे जाँन, माँनसरोवर करि असनाँन।
सोहं हसा ताकौ जाप, ताहि न लिपै पुन्य न पाप ॥

काया माँहि जाँनै सोई, जो बोलै सो आपै होई ।
जोति माँहि जे मन थिर करै, कहै कबीर सो प्राणी तिरै ॥३२८॥

एक अचभा ऐसा भया,
करणी थै कारण मिटि गया ॥ टेक ॥

करणी किया करम का नास, पावक माँहि पुहुप प्रकास ॥
पुहुप माँहि पावक प्रजरै, पाप पुन दोऊ भ्रम टरै ॥
प्रगटी बास वासना धोइ, कुल प्रगटयाँ कुल घाल्याँ खोइ ॥
उपजी च्यत च्यत मिटि गई, भौ भ्रम भागा ऐसे भई ॥
उलटी गंग मेर कूँ चली, धरती उलटि अकासहि मिली ॥
दास कबीर तत ऐसा कहै, ससिहर उलटि राह कौ गहै ॥३२९॥

है हजूरि क्या दूर बतावै,
दुदर बाँधे सुदर पावै ॥ टेक ॥

सो मुलनाँ जो मनसूँ लरै, अह निसि काल चक्र सूँ भिरै ॥
काल चक्र का मरदै माँन, ताँ मुलनाँ कूँ सदा सलाँम ॥
काजी सो जो काया विचारै, अहनिसि ब्रह्म अगनि प्रजारै ॥
सुप्पनै बिंद न देई झरनाँ, ता काजी कूँ जुरा न मरणाँ ॥
सो सुलितान जु द्वै सुर ताँनै, बाहरि जाता भीतरि आँनै ॥
गगन मडल मै लसकर करै, सो सुलिताँन छत्र सिरि धरै ॥
जोगी गोरख गोरख करै, हिंदू राँम नाम उच्चरै ॥
मुसलमाँन कहै एक खुदाइ, कबीरा कौ स्वाँमी घटि घटि रह्यौ समाइ ॥३३०॥

आऊँगा न जाऊँगा, न मरूँगा न जीऊँगा ।
गुरु के सबद मै रमि रमि रहूँगा ॥ टेक ॥

आप कटोरा आपै थारी, आपै पुरिखा आपै नारी ॥
आप सदाफल आपै नींबू, आपै मुसलमाँन आपै हिंदू ॥
आपै मछ कछ आपै जाल, आपै झींवर आपै काल ।
कहै कबीर हम नाँही रे, नाँही, नाँ हम जीवत न मुवले माँही ॥३३१॥

हम सब माँहि सकल हम माँही,
हम थै और दूसरा नाही ॥ टेक ॥

तीनि लोक मै हमारा पसारा, आवागमन सब खेल हमारा ॥
खट दरसन कहियत हम भेखा, हमही अतीत रूप नही रेखा ॥
हमही आप कबीर कहावा, हमही अपनाँ आप लखावा ॥३३२॥

सो धन मेरे हरि का नाँउ,
गाँठि न बाँधौ बेचि न खाँउँ ॥ टेक ॥
नाँउ मेरे खेती नाँउ मेरे बारी, भगति करौ मैं सरनि तुम्हारी ॥
नाँउ मेरे सेवा नाँउ मेरे पूजा, तुम्ह बिन और न जाँनौ दूजा ॥
नाँउ मेरे बंधव नाँव मेरे भाई, अंत कि बिरियाँ नाँव सहाई ॥
नाँउ मेरे निरधन ज्यूँ निधि पाई, कहै कबीर जैसैं रंक मिठाई ॥ ३३३ ॥

अब हरि हूँ अपनौ करि लीनौ,
प्रेम भगति मेरौ मन भीनौं ॥ टेक ॥
जरै सरीर अंग नही मोरौ, प्रान जाइ तौ नेह तोरौ ॥
च्यतामणि क्यूँ पाइए ठोली, मम दे राँम लियौ निरमोली ॥
ब्रह्मा खोजत जनम गवायौं, सोई राम घट भीतरि पायौ ॥
कहै कबीर छूटी सब आसा, मिल्यौ राम उपज्यौ बिसवासा ॥ ३३४ ॥

लोग कहैं गोवरधनधारी,
ताकौं मोहि अचभौं भारी ॥ टेक ॥
अष्ट कुली परबत जाके पग की रैंनाँ, सातौं सायर अंजन नैनाँ ॥
ए उपमाँ हरि किती एक ओपै, अनेक मेर नख उपारि रोपै ॥
धरनि अकास अधर जिनि राखी, ताकी मुगधा कहै न साखी ॥
सिव बिरंचि नारद जस गावै, कहै कबीर वाको पार न पावै ॥ ३३५ ॥

राँम निरंजन न्यारा रे,
अंजन सकल पसारा रे ॥ टेक ॥
अजन उतपति वो उंकार, अजन माँड्या सब बिस्तार ॥
अजन ब्रह्मा शंकर इंद, अजन गोपी संगि गोब्यद ॥
अजन बाँणी, अंजन वेद, अजन कीया नाँनाँ भेद ॥
अजन बिद्या पाठ पुरॉन, अजन फोकट कथहि गियाँन ॥
अंजन पाती अंजन देव, अजन की करै अजन सेव ॥
अंजन नाचै अजन गावै, अजन भेष अनत दिखावै ॥
अंजन कहौं कहाँ लग केता, दाँन पुनि तप तीरथ जेता ॥
कहै कबीर कोई बिरला जागै, अंजन छाँडि निरजन लागै ॥ ३३६ ॥

अजन अलप निरजन सार,
यहै चीन्हि नर करहु बिचार ॥ टेक ॥
अजन उतपति वरतनि लोई, बिना निरजन मुक्ति न होई ॥
अंजन आवै अजन जाइ, निरजन सब घट रह्यौ समाइ ॥
जोग ध्याँन तप सबै बिकार, कहै कबीर मेरे राँम अधार ॥ ३३७ ॥

एक निरंजन अलह मेरा,
हिंदू तुरक दहू नही नेरा ।। टेक ।।
राखूँ व्रत न मरहम जाँनाँ, तिसही सुमिरूँ जो रहै निदाँनाँ ।
पूजा करूँ न निमाज गुजारूँ, एक निराकार हिरदै नमसकारूँ ।।
नाँ हज जाँऊँ न तीरथ पूजा एक पिछाँण्या तौ का दूजा ।।
कहै कबीर भरम सब भागा, एक निरंजन सूँ मन लागा ।।३३८।।

तहाँ मुझ गरीब की को गुदरावै
मजलिस दूरि महल को पावै ।। टेक ।।
सत्तरि सहस सलार हैं जाके, असी लाख पैकंबर ताकै ।।
सेख जु कहिय सहस अठ्यासी, छपन कोडि खलिबे खासी ।।
कोड़ि तेतीसूँ अरू खिलखाँनाँ, चौरासी लख फिरै दिवाँनाँ ।।
बाबा आदम पैं नजरि दिलाई, नबी भिस्त घनेरी पाई ।।
तुम्ह साहिब हम कहा भिखारी, देत जवाब होत बजगारी ।।
जन कबीर तेरी पनह समाँनाँ, भिस्त नजीक राखि रहिमाँनाँ ।।३३९।।

जौ जाचौं तौ केवल राँम,
आँन देव सूँ नाँही काँम ।। टेक ।।
जाकै सूरिज कोटि करै परकास, कोटि महादेव गिरि कबिलास ।।
ब्रह्मा कोटि वेद ऊचरै, दुर्गा कोटि जाकै मरदन करै ।।
कोटि चद्रमाँ गहै चिराक, सुर तेतीसूँ जीमैं पाक ।।
नौग्रह कोटि ठाढे दरबार, धरमराइ पौली प्रतिहार ।।
कोटि कुबेर जाकै भरै भंडार, लछमी कोटि करै सिंगार ।।
कोटि पाप पुंनि ब्यौहरै, इंद्र कोटि जाकी सेवा करै ।।
जगि कोटि जाकै दरबार, गध्रप कोटि करै जैकार ।।
विद्या कोटि सबै गुँण कहै, पारब्रह्म कौ पार न लहै ।।
बासिग कोटि सेज बिसतरै पवन कोटि चौबारै फिरै ।।
कोटि समुद्र जाकै पणिहारा, रोमावली अठारह भारा ।।
असंखि कोटि जाकै जमावली, राँवण सेन्याँ जाथैं चली ।।
सहसबाँह के हरे पराँण, जरजोधन घाल्यौं खै माँन ।।
बावन कोटि जाके कुटवाल, नगरी नगरी क्षेत्रपाल ।।
लट छूटी खेलै बिकराल, अनत कला नटवर गोपाल ।।
कद्रप कोटि जाकै लाँवन करै, घट घट भीतरि मनसा हरै ।।
दास कबीर भजि सारंगपान, देहु अभै पद माँगौ दान ।।३४०।।

मन न डिगै ताथैं तन न डराई,

केवल रॉम रहे ल्यौ लाई ।। टेक ।।

अति अथाह जल गहर गँभीर, बाँधि जजीर जलि बोरे है कबीर ।।

जल की तरंग उठि कटि हैं जजीर, हरि सुमिरन तट बैठे हैं कबीर ।।

कहैं कबीर मेरे सग न साथ, जल थल मैं राखै जगनाथ ।।३४१।।

भलैं नींदौ भलैं नींदौ भलैं नींदौ लोग,

तनौ मन रॉम पियारे जोग ।। टेक ।।

मैं बौरी मेरे रॉम भरतार, ता कारँनि रचि करौ स्यँगार ।।

जैसे धुत्रिया रज मल धोवैं, हर तप रत सब निदक खोवै ।

न्यदक मेरे माई बाप, जन्म जन्म के काटे पाप ।।

न्यंदक मेरे प्रान अधार, विन वेगारि चलावै भार ।

कहै कबीर न्यँदक बलिहारी, आप रहै जन पार उतारी ।।३४२।।

जौ मैं बौरा तौ रॉम तोरा,

लोग मरम का जॉनैं मोरा ।। टेक ।।

माला तिलक पहरि मन मानाँ, लोगनि रॉम खिलौनॉ जाँनॉ ।

थोरी भगति बहुत अहँकारा, ऐसे भगता मिलै अपारा ।।

लोग कहै कबीर बौराना, कबीरा कौ मरम रॉम भल जाना ।।३४३ ।।

हरिजन हम दसा लिये डोलै, ।।

निर्मल नॉव चवै जस बोलै ।। टेक ।।

मानसरोवर तट के वासी, राम चरन चित आॅन उदासी ।।

मुकताहल बिन चंच न लॉवैं, मौनि गहै कै हरि गुन गॉवैं ।।

कउवा कुवधि निकट नही आवैं, सो हंसा निज दरसन पावै ।।

कहै कबीर सोई जन तेरा, खीर नीर का करै नवेरा ।।३४४।।

सति राँम सतगुर की सेवा,

पूजहु राँम निरजन देवा ।। टेक ।।

जल कै मंजन्य जो गति होई, मीनॉ नित ही न्हावै ।

जैसा मीनॉ तैसा नरा, फिरि फिरि जोनी आवै ।।

मन मैं मैला तीर्थ न्हॉवै, तिनि बैकुठ न जॉनॉ ।

पाखड करि करि जगत भुलॉनॉ, नॉहिन रॉम अयाँनाँ ।।

हिरदै कठौर मरै बनारसि, नरक न वच्या जाई ।

हरि कौ दास मरै जे मगहरि, सेन्याँ सकल तिराई ।।

पाठ पुरॉन वेद नही सुमृत, तहाँ बसै निरकारा ।

कहै कबीर एक ही ध्यावो, बावलिया ससारा ।।३४५ ।

क्या ह्वै तेरे न्हाई धोई,
आतम रांम न चीन्हां सोई ॥ टेक ॥
क्या घट उपरि मजन कीयै, भीतरि मैल अपारा ॥
रांम नांम बिन नरक न छूटै, जै धोवै सौ वारा ॥
का नट भेष भगवां वस्तर, भसम लगावै लोई ॥
ज्यूं दादुर सुरसरी जल भीतरि हरि बिन मुकति न होई ॥
परिहरि कांम रांम कहि बौरे सुनि सिख बंधू मोरी।
हरि कौ नांव अभैपददाता, कहै कबीरा कोरी ॥३४६॥

पांणी थै प्रकट भई चतुराई,
गुर प्रसादि परम निधि पाई ॥ टेक ॥
इक पांणी पांणी कूं धोवै एक पांणी पांणी कूं मोहै ॥
पाणी ऊंचा पांणी नीचा, ता पांणी का लीजै सोचा ॥
इक पाणी थैं प्यंड उपाया, दास कबीर राम गुण गाया ॥३४७॥

भजि गोव्यद भूलि जिनि जाहु,
मनिषा जनम की एही लाहु ॥ टेक ॥
गुर सेवा करि भगति कमाई, जौ तैं मनिषा देही पाई ॥
या देही कूं लौचै देवा, सो देही करि हरि कि सेवा ॥
जब लग जरा रोग नही आया, तब लग काल ग्रसै नहिं काया ॥
जब लग हीण पड़ै नही वाणीं, तब लग भजि मन सारंगपांणी ॥
अब नही भजसि भजसि कब भाई, आवैगा अंत भज्यौ नही जाई ॥
जे कछू करौ सोई तत सार, फिरि पछितावोगे वार न पार ॥
सेवग सो जो लागै सेवा, तिनही पाया निरंजन देवा ॥
गुर मिलि जिनि के खुले कपाट, बहुरि न आवै जोनी बाट ॥
यहु तेरा औसर यहु तेरि बार, घट ही भीतरि सोचि बिचारि ॥
कहै कबीर जीति भावै हारि बहु बिधि कह्यौ पुकारि पुकारि ॥३४८॥

ऐसा ग्यान बिचारि रे मनां
हरि किन सुमिरै दुख भजना ॥ टेक ॥
जब लग मैं मे मेरी करै, तब लग काज एक नही सरै ॥
जब यहु मैं मेरी मिटि जाइ, तब हरि काज सँवारै आइ ॥
जब स्यघ रहै वन माहि, तब लग यहु वन फूलै नांहि ॥
उलटि स्याल स्यघ कूं खाइ, तब यहु फूलै सब बनराइ ॥
जीत्या डूबै हारया तिरै, गुर प्रसाद जीवत ही मरै ॥
दास कबीर कहै समझाइ, केवल राम रह्यौ ल्यौ लाइ ॥३४९॥

जागि रे जीव जागि रे ।
चोरन-कौ डर बहुत कहत हैं, उठि उठि पहरै लागि रे ॥ टेक ॥
ररा करि टोप ममाँ करि बखतर, ग्यान रतन करि पाग रे ।
ऐसैं जौं अजराइल मारै, मस्तकि आवै भाग रे ॥
ऐसी जागणी जे को जागै, तौ हरि देइ सुहाग रे ।
कहै कबीर जग्या ही चाहिये, क्या गृह क्या बैराग रे ॥

जागहु रे नर सोवहु कहा,
जम बटपारै रूँधे पहा ॥ टेक ॥
जागि चेति कछू करौ उपाई, मोटा बैरी है जंमराई ॥
सेत काग आये बन माँहि, अजहू रे नर चेतै नाँहि ।
कहै कबीर तबै नर जागै, जम का डंड मूँड मैं लागै ॥३५२॥

जाग्या रे नर नींद नसाई,
चित चेत्यौ च्यंतामणि पाई ॥ टेक ॥
सोवत सोवत बहुत दिन बीते, जन जाग्या तसकर गये रीते ॥
जन जागे का ऐसहि नाँण, विष से लागे वेद पुराँण ।
कहै कबीर अब सोवौ नाँहि, राँम रतन पाया घट माँहि ॥३५२॥

संतनि एक अहेरा लाधा,
मिर्गनि खेत सबनि का खाधा ॥ टेक ॥
या जंगल मैं पाँचौ मृगा, एई खेत सबनि का चरिगा ।
पारधीपनौ जे साधै कोई, अध खाधा सा राखै सोई ॥
कहै कबीर जो पचौं मारै, आप तिरै और कूँ तारै ॥ ३५३॥

हरि कौ बिलोवनो बिलोइ मेरी माई,
ऐसैं बिलोइ जैसे तत न जाई ॥ टेक ॥
तन करि मटकी मननि बिलोइ, ता मटकी मैं पवन समोइ ॥
इला प्यंगुला सुषमन नारी, बेगि बिलोइ ठाढी छलिहारी ॥
कहै कबीर गुजरी बौराँनी, मटकी फूटी जोति समानी ॥३५४॥

आसण पवन किये दिढ रहु रे,
मन का मैल छाड़ि दे बौरे ॥ टेक ॥
क्या सींगी मुद्रा चमकाये, क्या बिभूति सब अंगि लगाये ।
सो हिंदू सो मुसलमाँन, जिसका दुरस रहै ईमाँन ॥
सो ब्रह्मा जो कथै ब्रह्म गियाँन, काजी सो जानै रहिमाँन ।
कहै कबीर कछू आँन न कीजै, राँम नाँम जपि लाहा लीजै ॥३५५॥

ताथैं कहिये लोकोचार,
वेद कतेब कथैं ब्यौहार ॥ टेक ॥
जारि बारि करि आवैं देहा, मूवाँ पीछैं प्रीति सनेहा ॥
जीवत पित्रहि मारहि डंगा, मूवाँ पित्र ले घालैं गंगा ॥
जीवत पित्र कूँ अन न ख्वावैं, मूँवाँ पाछैं प्यंड भरावैं ॥
जीवत पित्र कूँ बोलैं अपराध मूँवाँ पीछे देहि सराध ॥
कहि कबीर मोहि अचिरज आवैं, कउवा खाइ पित्र क्यूँ पावैं ॥३५६॥

बाप राँम सुनि बीनती मोरी,
तुम्ह सूँ प्रगट लोगन सूँ चोरी ॥ टेक ॥
पहलैं काँम मुगध मति कीया, ता भैं कपै मेरा जीया ॥
राँम राइ मेरा कह्या सुनीजैं, पहले बकसि अब लेखा लीजैं ।
कहै कबीर बाप राँम राया, कबहूँ सरनि तुम्हारी आया ॥३५७॥

अजहूँ बीच कैसे दरसन तोरा,
बिन दरसन मन माँनैं, क्यूँ मोरा ॥ टेक ॥
हमहि कुसेवग क्या तुम्हहि अजाँनाँ, दुइ मैं दोस कहौ किन राँमाँ ॥
तुम्ह कहियत त्रिभवन पति राजा, मन बंछित सब पुरवन काजा ॥
कहै कबीर हरि दरस दिखावौ, हमहि बुलावौ कै तुम्ह चलि आवौ ॥३५८॥

क्यूँ लीजै गढ बंका भाई,
दोवग कोट अरु तेवड खाई ॥ टेक ॥
काँम किवाड़ दुख सुख दरवानी, पाप पुंनि दरवाजा ।
क्रोध प्रधान लोभ बड दूंदर, मन मैं वासी राजा ॥
स्वाद सनाह टोप ममिता का, कुबधि कमाँण चढ़ाई ।
त्रिसना तीर रहे तन भीतरि, सुबधि हाथि नहीं आई ॥
प्रम पलीता सुरति नालि करि, गोला ग्याँन चलाया ।
ब्रह्म अग्नि ले दियाँ पलीता, एकैं चोट ढहाया ॥
सत संतोष लै लरनैं लागे, तोरे दस दरवाजा ।
साध संगति अरु गुर की क्रृपा थैं, पकरचौ गढ को राजा ॥
भगवत भीर सकति सुमिरण की, काटि काल की पासी ।
दास कबीर चढे गढ ऊपरि, राज दियौ अबिनासी ॥

रैंनि गई मति दिन भी जाइ,
भवर उड़े बन बैठे आइ ॥ टेक ॥
काँचै करवै रहै न पानीं, हंस उड्या काया कुमिलाँनी ।

थरहर थरहर कंपै जीव, नाँ जाँनूँ का करिहै पीव ॥
कऊवा उड़ावत मेरी वहियाँ पिराँनी, कहै कबीर मेरी कथा सिराँनी ॥
॥ ३६० ॥

काहे कूँ भीति बनाऊँ टाटी,
का जाँनूँ कहाँ परिहै माटी ॥ टेक ॥
काहे कूँ मंदिर महल चिणाँऊँ, मुँवाँ पीछै घडी एक रहण न पाऊँ ॥
कहे कूँ छाऊँ ऊँच ऊँचेरा, साढ़े तीनि हाथ घर मेरा ॥
कहै कबीर नर गरब न कीजै, जेता तन तेती भुँइ लीजै ॥३६१॥

(राग बिलावल)

बार बार हरि का गुण गावै,
गुर गमि भेद सहर का पावै ॥ टेक ॥
आदित करै भगति आरंभ, काया मंदिर मनसा थंभ ॥
अखंड अहनिसि सुरष्या जाइ, अनहद बेन सहज मै पाइ ॥
सोमवार ससि अमृत झरै, चाखत बेगि तपै निसतरै ॥
बाँणी रोक्याँ रहै दुवार, मन मतिवाला पीवनहार ॥
मंगलवार ल्यौ माँहीत, पंच लोक की छाडौ रीत ॥
घर छाँडै जिनि बाहिर जाइ, नहीं तर खरौ रिसावै राइ ॥
बुधवार करै बुधि प्रकास, हिरदा कवल मै हरि का वास ॥
गुर गमि दोऊ एक समि करै, ऊरध पंकज थै सूधा धरै ॥
ब्रिसपति बिषिया देइ बहाइ, तीनि देव एकै संगि लाइ ॥
तीनि नदी तहाँ त्रिकुटी माँहि, कुसमल धोवै अहनिसि न्हाँहि ॥
सुक्र सुधा ले इहि ब्रत चढे, अह निसि आप आप सूँ लडै ॥
सुरषी पंच राखिये सबै, तौ दूजी द्रिष्टि न पैसै कबै ॥
थावर थिर करि घट मै सोइ, जोति दीवटी मेल्है जोइ ॥
बाहरि भीतरि भया प्रकास, तहाँ भया सकल करम का नास ॥
जब लग घट मै दूजी आँण, तब लग महलि न पावै जाँण ॥
रमिता राँम सूँ लागै रंग, कहै कबीर ते निर्मल अंग ॥३६२॥

राँम भजै सो जाँनिये, जाके आतुर नाँही ।
सत संत संतोष लीयैं रहै, धीरज मन माँही ॥टेक॥
जन कौं काँम क्रोध व्यापै नहीं, त्रिष्णाँ न जरावै ।
प्रफुलित आनंद मै, गोव्यंद गुँण गावै ॥

जन कौ पर निंद्या भावै नहीं, अरु असति न भाषै।
काल कलपनाँ मेटि, करि, चरनूं चित राखै॥
जन सम द्रिष्टी सीतल सदा, दुविधा नहीं आनै॥
कहै कबीर ता दास सूं मेरा मन मानैं॥ ३६३॥

माधौ सो न मिलै जासौं मिलि रहिये,
ता कारनि बरु बहु दुख सहिये॥ टेक॥
छत्रधार देखत ढहि जाइ, अधिक गरब थैं खाक मिलाइ॥
अगम अगोचर लखी न जाइ, जहाँ का सहज फिरि तहाँ समाइ॥
कहै कबीर झूठे अभिमान, सो हम सो तुम्ह एक समान॥ ३६४॥

अहो मेरे गोव्यंद तुम्हारा जोर,
काजी बकिवा हस्ती तोर॥ टेक॥
बाँधि भुजा भलै करि डारयौ, हस्ती कोपि मूंड मैं मारयौ॥
भाग्यौ हस्ती चीसाँ मारी, वा मूरति की मैं बलिहारी॥
महावत तोकूं मारौं साटी, इसहि मराँऊँ घालौं काटी॥
हस्ती न तोरै धरै धियाँन, वाकै हिरदै बसै भगवाँन॥
कहा अपराध संत हौं कीन्हाँ, बाँधि पोट कुंजर कूं दीन्हाँ॥
कुंजर पोट बहु बंदन करै, अजहूँ न सूझै काजी अंधरै॥
तीनि बेर पतियारा लीन्हाँ, मन कठोर अजहूँ न पतीनाँ॥
कहै कबीर हमारै गोव्यंद, चौथे पद ले जन का ज्यंद॥ ३६५॥

कुसल खेम अरु सही सलाँमति, ए दोइ काकौं दीन्हाँ रे।
आवत जाँत दुहूँधा लूटे, सर्व तत हरि लीन्हाँ रे॥ टेक॥
माया मोह मद मैं पीया, मुगध कहै यहु मेरी रे।
दिवस चारि भलैं मन रंजै, यहु नाहीं किस केरी रे॥
सुर नर मुनि जन पीर अवलिया, मीराँ पैदा कीन्हा रे॥
कोटिक भये कहाँ लूं बरनूं, सबनि पयानाँ दीन्हाँ रे।
धरती पवन अकास जाइगा, चंद जाइगा सूरा रे।
हम नाँहीं तुम्ह नाँहीं रे भाई, रहे राँम भरपूरा रे॥
कुसलहि कुसल करत जग खीना; पडे काल भौ पासी।
कहै कबीर सबै जग बिनस्या, रहे राम अबिनासी॥ ३६६॥

मन बनजारा जागि न सोई
लाहे कारनि मूल न खोई॥ टेक॥
लाहा देखि कहा गरबाँना, गरब न कीजै मूरखि अयाँनाँ।
जिन धन सच्या सो पछिताँनाँ, साथी चलि गये हम भी जाँनाँ॥

निसि अँधियारी जागहु बंदे, छिटकन लागे सबही संधे ॥
किसका बंधू किसकी जोई, चल्या अकेला संगि न कोई ॥
ढरि गए मंदिर टूटे बंसा, सूके सरवर उडि गये हंसा ॥
पंच पदारथ भरिहै खेहा, जरि बरि जायगी कंचन देहा ॥
कहत कबीर सुनहु रे लोई, रॉम नॉम बिन और न कोई ॥३६७॥

मन पतंग चेतै नहीं अजरी समॉन ।
त्रिपिया लागि बिगूचिये, दाझिये निदॉन ॥ टेक ॥
काहे नैन अनदियै, सूझत नहीं आगि ।
जनम अमोलिक खोइयै, सॉपनि संगि लागि ॥
कहै कबीर चित चंचला, गुर ग्यॉन कह्यौ समझाइ ।
भगति हीन न जरई जरै, भावै तहॉं जाइ ॥३६८॥

स्वादि पतंग जरै जरि जाइ,
अनहद सौं मेरौ चित न रहाइ ॥ टेक ॥
माया कै मदि चेति न देख्या, दुविध्या मॉंहि एक नहीं पेख्या ।
भेष अनेक किया बहु कीन्हॉं, अकल पुरिष एक नहीं चीन्हॉं ॥
केते एक मूये मरेहिगे केते, केतेक मुगध अजहूँ नहीं चेतें ।
तंत मंत सब औषद माया, केवल राम कबीर दिढाया ॥३६९॥

एक सुहागनि जगत पियारी,
सकल जीव जंत कौ नारी ॥ टेक ॥
खसम मरै वा नारि न रोवै, उस रखवाला औरै होवै ।
रखवाले का होइ बिनास, उतहि नरक इत भोग बिलास ॥
सुहागनि गलि सोहै हार, संतनि बिख बिलसै संसार ॥
पीछै लागी फिरै पचि हारी, संत की ठठकी फिरै बिचारी ॥
संत भजै वा पाछी पडै, गुर के सबदूँ मारयौ डरै ।
सापत कै यहु प्यंड पराइनि, हँमारी द्रिष्टि परै जैसै डॉइनि ॥
अब हम इसका पाया भेव, होइ क्रपाल मिले गुरदेव ।
कहै कबीर इब बाहरि परी, संसारी कै अंचलि टिरी ॥३७०॥

परोसनि मॉंगै संत हमारा,
पीव क्यूँ बौरी मिलहि उधारा ॥ टेक ॥
मासा मॉंगै रती न देऊँ, घटे मेरा प्रेम तौ कासनि लेऊँ ।
राखि परोसनि लरिका मोरा, जे कछु पाऊँ सु आधा तेरा ॥
बन बन ढूँढी नैंन भरि जोऊँ, पीव न मिलै तौ बिलखि करि रोऊँ ।
कहै कबीर यहु सहज हमारा, बिरली सुहागनि कंत पियारा ॥३७१॥

रांम चरन जाके रिदै बसत है, ता जन कौ मन क्यूं डोलै ॥
मानौं आठ सिध्य नव निधि ताकै हरषि हरषि जस बोलै ॥ टेक ॥
जहां जहां जाई तहां सच पावै, माया ताहि न झोलै ।
बारबार बरजि बिषिया तैं लै नर जौ मन तोलै ॥
ऐसी जे उपजै या जीय कै, कुटिल गांठि सब खोलै ।
कहै कबीर जब मन परचौ भयौ, रहै रांम कै बोलै ॥३७२॥

जंगल मैं का सोवनां, औंघट है घाटा ।
स्यंघ बाघ गज प्रजलै, अरु लंबी बाटा ॥ टेक ॥
निस बासुरि पेडा पडै, जमदानी लूटै ।
सूर धीर साचै मतै, सोई जन छूटै ॥
चालि चालि मन माहरा, पुर पटण गहियै ।
मिलियै त्रिभुवन नाथ सूं, निरभै होइ रहियै ॥
अमर नहीं संसार मैं, बिनसै नरदेही ।
कहै कबीर वेसास सूं, भजि रांम सनेही ॥३७३॥

(राग ललित)

रांम ऐसो ही जांनि जपौ नरहरी,
माधव मदसूदन बनवारी ॥ टेक ॥
अनुदिन ग्यान कथै घरियार, धूवैं धौलहर रहै संसार ।
जैसैं नदी नाव करि संग, ऐसैं ही मात पिता सुत अंग ॥
सबहि नल दुल मलफ लकीर, जल बुदबुदा ऐसो आहि सरीर ।
जिभ्या रांम नांम अभ्यास, कहै कबीर तजि गरभ बास ॥३७४॥

रसनां रांम गुन रसि रस पीजै,
गुन अतीत निरमोलिक लीजै ॥ टेक ॥
निरगुन ब्रह्म कथौ रे भाई, जा सुमिरन सुधि बुधि मति पाई ।
बिष तजि रांम न जपसि अभागे, का बूड़े लालच के लागे ॥
ते सब तिरे रांम रस स्वादी, कहै कबीर बूडे बकवादी ॥३७५॥

निबरक सुत ल्यौ कोरा,
रांम मोहि मारि, कलि बिष बोरा ॥ टेक ॥
उन देस जाइबा रे बाबू, देखिबो रे लोग किन किन खैबू लो ।
उड़ि कागा रे उन देस जाइबा, जासूं मेरा मन चित लागा लो ॥
हाट ढूंढि ले, पटनपुर ढूंढि ले, नहीं गांव कै गोरा लो ॥
जल बिन हंस निसह बिन रबू कबीर का स्वांमी पाइ परिकै मनैबू लो॥३७६॥

(राग बसंत)

सो जोगी जाकै सहज भाइ,

अकल प्रीति की भीख खाइ ॥ टेक ॥

सबद अनाहद सींगी नाद, काम क्रोध विषया न बाद।
मन मुद्रा जाकै गुर को ग्याँन, त्रिकुट कोट मैं धरत ध्यान ॥
मनही करन कौ करै सनॉन, गुर कौ सबद ले ले धरै धियॉन।
काया कासी खोजै बास, तहाँ जोति सरूप भयौ परकास ॥
ग्याँन मेषली सहज भाइ, बक नालि कौ रस खाइ।
जोग मूल कौ देइ बंद, कहि कबीर थीर होइ कंद ॥३७७॥

मेरौ हार हिराँनौ मैं लजाऊँ,

सास दुरासनि पीव डराऊँ ॥ टेक ॥

हार गुह्यौ मेरौ रॉम ताग, विचि विचि मान्यक एक लाग ॥
रतन प्रवालै परम जोति, ता अंतरि लागे मोति।
पंच सखी मिलिहै सुजाँन, चलहु त जइये त्रिवेणी न्हान ॥
न्हाइ धोइ कै तिलक दीन्ह, नाँ जानूँ हार किनहूँ लीन्ह ॥
हार हिराँनौ जन बिमल कीन्ह, मेरौ आहि परोसनि हार लीन्ह।
तीनि लोक की जॉनै पीर, सब देव सिरोमनि कहै कबीर ॥३७८॥

नही छाड़ौ बाबा रॉम नॉम,

मोहि और पढ़न सूँ कौन काम ॥ टेक ॥

प्रह्लाद पधारे पढन साल, संग सखा लीये बहुत बाल।
मोहि कहा पढ़ाव आल जाल, मेरी पाटी मैं लिखि दे श्री गोपाल ॥
तब सेनॉ मुरकाँ कह्यौ जाइ, प्रहिलाद बँधाय्यौ वेगि आइ।
तूँ राम कहन की छाड़ि बाँनि, वेगि छुड़ाऊँ मेरौ कह्यौ माँनि ॥
मोहि कहा डरावै वार वार, जिनि जल थल गिर कौ कियौ प्रहार।
बाँधि मारि भावै देह जारि, जे हूँ रॉम छाडौं तौ गुरहि गार ॥
तब काढ़ि खडग कोप्यौ रिसाइ, तोहि राखनहारौ मोहि बताइ।
खंभा मैं प्रगट्यौ गिलारि, हरनाकस मार्‌यो नख बिदारि ॥
महापुरुष देवाधिदेव, नरस्यंघ प्रकट कियौ भगति भेव।
कहै कबीर कोई लहै न पार, प्रहिलाद ऊबार्‌यौ अनेक बार ॥३७९॥

हरि कौ नाउँ तत त्रिलोक सार,

लौलीन भये जे उतरे पार ॥ टेक ॥

इक जंगम इक जटाधार, इक अंगि बिभूति करै अपार ॥

इक मुनियर इक मनहूँ लीन, ऐसैं होत होत जग जात खीन ॥
इक आराधैं सकति सीव, इक पड़दा दे दे वधैं जीव ।
इक कुलदेव्याँ कौं जपहि जाप, त्रिभवनपति भूले त्रिविध ताप ॥
अनहि छाँडि इक पीवहि दूध, हरि न मिलैं विन हिरदै सूध ।
कहै कबीर ऐसें विचारि, राम विना को उतरे पार ॥ ३८० ॥

हरि वोलि सूवा वार वार,
तेरी ढिग मीनाँ कछू करि पुकार ॥ टेक ॥
अंजन मजन तजि विकार, सतगुरु समझायौ तत सार ॥
साध संगति मिली करि वसत, भौ वद न छूटै जुग जुगंत ।
कहै कबीर मन भया अनंद, अनत कला भेटे गोव्यंद ॥३८१॥

वनमाली जांनैं वन की आदि,
रॉम नॉम विना जनम वादि ॥ टेक ॥
फूल जु फूले रुति वसंत, जामैं मोहि रहे सव जीव जंत ॥
फूलनि मैं जैसैं रहै वास, यूँ घटि घटि गोविंद है निवास ।
कहै कबीर मनि भया अनंद, जगजीवन मिलियौ परमानंद ॥३८२॥

मेरे जैसे वनिज सौ कवन काज,
मूल घटै सिरि वधै व्याज ॥ टेक ॥
नाइक एक वनिजारे पाँच, वैल पचीस कौ संग साथ ।
नव वहियाँ दस गौनि आहि, कसनि वहत्तरि लागै ताहि ॥
सात सूत मिलि वनिज कीन्ह, कर्म पयादौ संग लीन्ह ।
तीन जगाति करत रारि, चल्यौ है बनिज वा वनज झारि ॥
वनिज खुटानौं पूँजी टूटि, षाडू दह दिसि गयौ फूटि ।
कहै कबीर यहु जन्म वाद, सहजि समाँनूँ रही लादि ॥३८३॥

माधौ दारन सुख सह्यौ न जाइ,
मेरौ चपल वुधि तातैं कहा वसाइ ॥ टेक ॥
तन मन भीतरि वसै मदन चोर, जिनि ज्ञॉन रतन हरि लीन्ह मोर ।
मैं अनाथ प्रभू कहूँ काहि, अनेक विगूचै मैं को आहि ॥
सनक सनंदन सिव सुकादि, आपण कवलापति भये ब्रह्मादि ।
जोगी जंगम जती जटाधार, अपनैं औसर सव गये हैं हार ॥
कहै कबीर रहु संग साथ, अभिअंतरि हरि सूँ कहौ बात ।
मन ग्यॉन जॉनि कैं करि विचार, राँम रमत भौ तिरिवौ पार ॥३८४॥

तू करी डर क्यूँ न करे गुहारि,

तूँ विन पचाननि श्री मुरारी ॥ टेक ॥

तन भीतरि वसै मदन चोर, तिनि सरवस लीनौ छोर मोर।
माँगै देइ न विनै माँन, तकि मारै रिदा में काँम वाँन ॥
मैं किहि गुहराँऊँ आप लागि, तू करी डर वड़े वड़े गये हैं भागि ॥
ब्रह्मा विष्णु अरु सुर मयंक, किहि किहि नही लावा कलक ॥
जप तप संजम सुनि ध्यान, वंदि परे सव सहित ग्याँन ॥
कहि कवीर उवरे द्वै तीनि, जा परि गोविंद कृपा कीन्ह ॥३८५॥

ऐसे देखि चरित मन मोह्यौ मोर,

ताथैं निस वासुरि गुन रमौ तोर ॥ टेक ॥

इक पढहि पाठ इक भ्रमैं उदास इक नगन निरंतर रहै निवास ॥
इक जोग जुगुति तन हूँहि खीन, ऐसे राँम नाँम संगि रहै न लीन ॥
इक हूँहि दीन एक देहि दाँन, इक करै कलापी सुरा पाँन ॥
इक तत मंत ओषध वाँन, इक सकल सिध राखै अपाँन ॥
इक तीर्थ व्रत करि काया जीति, ऐसैं राँम नाँम सूँ करै न प्रीति ॥
इक धोम धोटि तन हूँहि स्यान, यूँ मुकति नही विन राँम नाँम ॥
सत गुर तत कह्यौ विचार, मूल गह्यौ अनभै विसतार ॥
जुरा मरण थै भये धीर, राँम कृपा भई कहि कवीर ॥ ३८६ ॥

सव मदिमाते कोई न जाग,

ताथे सग ही चोर घर मुसन लाग ॥

पंडित माते पढि पुराँन, जोगी माते धरि धियाँन ॥
संन्यासी माते अहमेव, तपा जु माते तप के भेव ॥
जागे सुक ऊधव अकूर, हणवंत जागे ले लगूर ॥
संकर जागे चरन सेव, कलि जागे नाँमाँ जैदेव ॥
ए अभिमान सव मन के काँम, ए अभिमाँन नही रही ठाम ॥
आतमाँ राम कौं मन विश्राम, कहि कवीर भजि राँम नाँम ॥३८७॥

चलि चलि रे भँवरा कवल पास,

भवरी वोलै अति उदास ॥ टेक ॥

तैं अनेक पुहुप कौ लियौ भोग, सुख न भयौ तव वढ़यो है रोग ॥
हौं जु कहत तोसूँ वार वार, मैं सव वन सोध्यौ डार डार ॥
दिनाँ चारि के सुरग फूल, तिनहि देखि कहा रह्यौ है भूल ॥
या वनासपती मैं लागैगी आगि, अव तूँ जैहौ कहाँ भागि ॥

पुहुप पुरॉने भये सूक तब भवरहि लागी अधिक भूख ॥
उड्यो न जाइ बल गयो है छूटि, तब भवरी रूँना सीस कूटि ॥
दह दिसि जोवै मधुप राइ, तब भवरी ले चली सिर चढाइ ॥
कहै कबीर मन कौ सुभाव, रॉम भगति बिन जम को डाव ॥ ८८ ॥

आवध रॉम सबै करम करिहूँ,
सहज समाधि न जम थै डरिहूँ ॥ टेक ॥
कुँभरा ह्वै करि बासन धरिहूँ, धोबी ह्वै मल धोऊँ।
चमरा ह्वै करि बासन रँगो, अघोरी जाति पाँति कुल खोऊँ ॥
तेली ह्वै तन कोल्हूँ करिहौ, पाप पुनि दोऊ पेरूँ।
पंच बैल जब सूध चलाऊँ, राम जेवरिया जोरूँ ॥
क्षत्री ह्वै करि खड़ग सँभालूँ, जोग जुगति दोउ साधूँ ॥
नउवा ह्वै करि मन कूँ मूँडूँ, बाढी ह्वै कर्म बाढूँ ॥
अवधू ह्वै करि यहु तन धूनौ, बधिक ह्वै मन मारूँ ॥
बनिजारा ह्वै तन कूँ बनिजूँ, जूवारी ह्वै जम हारूँ ॥
तन करि नवका मन करि खेवट, रसना करउँ बाडारूँ ॥
कहि कबीर भवसागर तरिहूँ आप तिरू बप तारू ॥ ३८९ ॥

(राग माली गौड़ी)

पंडिता मन रजिता, भगति हेत त्यौ लाइ लाइ रे ॥
प्रेम प्रीति गोपाल भजि नर, और कारण जाइ रे ॥ टेक ॥
दॉम छै पणि कॉम नाही, ग्यॉन छै पणि धध रे ॥
श्रवण छै पणि सुरत नॉही, नैन छै पणि अध रे ॥
जाके नाभि पदम सूँ उदित ब्रह्मा, चरन गग तरग रे ॥
कहै कबीर हरि भगति बाछू जगत गुर गोब्यद रे ॥३९०॥

विष्णु ध्यॉन सनान करि रे, बाहरि अग न धोई रे ॥
साच बिन सीझसि नही, कॉई ग्यॉन दृष्टै जोइ रे ॥
जंबाल मॉहै जीव राखै, सुधि नही सरीर रे ।
अभिअतरि भेद नही, कॉई बाहरि न्हावै नीर रे ॥
निहकर्म नदी ग्यॉन जल, सुनि मंडल मॉहि रे ।
औभूत जोगी आतमॉं, कॉई पेडै सजमि न्हाहि रे ॥
इला प्यगुला सुषमनॉं, पछिम गगा बालि रे ॥
कहै कबीर कुसमल झडै, कॉई मॉहि लौ अग पषालि रे ॥३९१॥

भजि नारदादि सुकादि वंदित, चरन पंकज भॉमिनी ।
भजि भजिसि भूपन पिया मनोहर देव देव सिरोवनी ॥टेक॥
वुधि नाभि चंदन चरिचिता, तन रिदा मंदिर भीतरा ।
रॉम राजसि नैन वॉनी, सुजान सुंदर सुदरा ॥
वहु पाप परवत छेदनाँ, भौ ताप दुरिति निवारणॉ ।
कहै कवीर गोव्यंद भजि, परमॉनंद वदित कारणॉ ॥३९२॥

(राग कल्यॉण)

ऐसैं मन लाइ लै राँम रसनाँ,
कपट भगति कीजै कौन गुणाँ ॥ टेक ॥
ज्यूँ मृग नादैं वेध्यौ जाइ, प्यंड परे वाकौ ध्यॉन न जाइ।
ज्यूँ जल मीन हेत करि जाँनि, प्रॉन तजै विसरै नहीं वाँनि ॥
भ्रिगी कीट रहै ल्यौ लाइ, ह्वै लौलीन भ्रिग ह्वै जाइ।
राँम नाँम निज अमृत सार, सुमिरि सुमिरि जन उतरे पार ॥
कहै कवीर दासनि को दास, अव नहीं छाड़ौं हरि के चरन निवास ॥३९३॥

(राग सारंग)

यहु ठग ठगत सकल जग डोलै,
गवन करै तव मुपहु न वोलै ॥
तूँ मेरो पुरिपा हौं तेरी नाँरी, तुम्ह चलतैं पाथर थैं भारी ।
वालपनाँ के मीत हमारे, हमहि लाडि कत चले हो निनारे ॥
हम सूँ प्रीति न करि री वौरी, तुमसे केते लागे ढौरी ।
हम काहू सँगि गए न आये, तुम्ह से गढ हम वहुत वसाये ॥
माटी की देही पवन सरीरा, ता ठग सूँ जन डरै कवीरा ॥३९४॥

धँनि सो घरी महूरत्य दिनाँ,
जव ग्रिह आये हरि के जनाँ ॥ टेक ॥
दरसन देखत यहु फल भया, नैनाँ पटल दूरि ह्वै गया ।
सव्द, सुनत ससा सव छूटा, श्रवन कपाट वजर था तूटा ॥
परसत घाट फेरि करि घड़्या, काया कर्म सकल झडि पड़्या ।
कहै कवीर सत भल भाया, सकस सिरोमनि घट मैं पाया ॥३९५॥

(राग मलार)

जतन बिन मृगनि खेत उजारे ।
टारे टरत नही निस बासुरि, बिडरत नही बिडारे ॥ टेक ॥
अपने अपने रस के लोभी, करतब न्यारे न्यारे ।
अति अभिमान बदत नहीं काहू, बहुत लोग पचि हारे ॥
बुधि मेरी किरषी, गुर मेरौ बिझुका, अखिर दोइ रखवारे ।
कहै कबीर अब खान न दैहूं, बरियाँ भली सँभारे ॥३९६॥

हरि गुन सुमरि रे नर प्राणी ।
जतन करत पतन ह्वै जैहै, भावै जांणम जांणी ॥टेक॥
छीलर नीर रहै धूं कैसै, को सुपिनै सच पावै ।
सूकित पांन परत तरवर थैं, उलटि न तरवरि आवै ॥
जल थल जीव डहके इन माया, कोई जन उबर न पावै ।
रांम अधार कहत हैं जुगि जुगि, दास कबीरा गावै ॥३९७॥

(राग धनाश्री)

जपि जपि रे जीयरा गोव्यंदो, हित चित परमांनंदौ रे ।
बिरही जन कौ बाल हौ, सब सुख आंनदकंदौ रे ॥ टेक ॥
धन धन झीखत धन गयौ, सो धन मिल्यौ न आये रे ।
ज्यूं बन फूली मालती, जन्म अबिरथा जाये रे ॥
प्रांणी प्रीति न कीजिये, इहि झूठे संसारी रे ।
धूंवां केरा धौलहर, जात न लागै बारी रे ॥
माटी केरा पूतला, काहे गरब कराये रे ।
दिवस चारि कौ पेखनौं, फिरि माटी मिलि जाये रे ॥
कांमी रांम न भावई, भावै बिषै बिकारी रे ।
लोह नाव पाहन भरी, बूड़त नांही बारी रे ॥
नां मन मूवा न मारि सक्या, नां हरि भजि उतर्या पारो रे ।
कबीरा कंचन गहि रह्यौ, कांच गहै संसारो रे ॥३९८॥

न कछु रे न कछू रांम बिनां ।
सरीर धरे की रहै परमगति, साध संगति रहनां ॥ टेक ॥
मंदिर रचत मास दस लागे, बिनसत एक छिनां ।
झूठे सुख के कारनि प्रांनी, परपंच करत घनां ॥

तात मात सुत लोग कुटुंब मैं, फूल्यो फिरत मनाँ ।
कहै कबीर राँम भजि बौरे, छाँड़ि सकल भ्रमनाँ ॥३९९॥

कहा नर गरबसि थोरी बात ।
मन दस नाज, टका दस गँठिया, टेढ़ौ टेढ़ौ जात ॥ टेक ॥
कहा लै आयौ यहु धन कोऊ कहा कोऊ लै जात ।
दिवस चारि की है पतिसाही, ज्यूँ बनि हरियल पात ॥
राजा भयौ गाँव सौ पाये, टका लाख दस ब्रात ॥
रावन होत लंका को छत्रपति, पल मैं गई बिहात ॥
माता पिता लोक सुत बनिता, अंत न चले सँगात ।
कहै कबीर राम भजि बौरे, जनम अकारथ जात ॥४००॥

नर पछिताहुगे अंधा ।
चेति देखि नर जमपुरि जैहै, क्यूँ बिसरौ गोब्यंदा ॥ टेक ॥
गरभ कुंडिनल जब तूँ बसता, उरध ध्याँन ल्यौ लाया ।
उरध ध्याँन मृत मंडलि आया नरहरि नाँव भुलाया ॥
बाल बिनोद छहूँ रस भीनाँ छिन छिन बिन मोह बियापै ।
बिष अंमृत पहिचाँनन लागौ, पाँच भाँति रस चाखै ॥
तरन तेज पर तिय मुख जोवै, सर अपसर नही जानै ।
अति उदमादि महामद मातौ, पाप पुंनि न पिछानै ॥
प्यंडर केस कुसुम भये धौला, सेत पलटि गई बाँनी ।
गया क्रोध मन भया जु पावस, काँम पियास मदाँनी ॥
तूटी गाँठि दया धरम उपज्या, काया कवल कुमिलाँनाँ ।
मरती बेर बिसूरन लागौ, फिरि पीछै पछिताँनाँ ॥
कहै कबीर सुनहुँ रे संतौ, धन माया कछू संगि न गया ।
आई तलब गोपाल राइ की, धरती सैन भया ॥४०१॥

लोका मति के भोरा रे ।
जो कासी तन तजै कबीर, तौ राँमहि कहा निहोरा रे ॥ टेक ॥
तब हमे वैसे अब हम ऐसे, इहै जनम का लाहा ॥
ज्यूँ जल मैं जल पैसि न निकसै, यूँ ढुरि मिलै जुलाहा ॥
राँम भगति परि जाकौ हित चित, ताकौ अचिरज काहा ॥
गुर प्रसाद साध की संगति, जग जीते जाइ जुलाहा ॥
कहै कबीर सुनहु रे संतो भ्रमि परे जिनि कोई ।
जस कासी तस मगहर ऊसर हिरदै राँम सति होई ॥४०२॥

ऐसी आरती त्रिभुवन तारै,
तेज पुंज तहाँ प्रांन उतारै ॥ टेक ॥
पाती पंच पहुप करि पूजा, देव निरंजन श्रौर न दूजा ।
तन मन सीस समरपन कीन्हां प्रकट जोति तहाँ आतम लीनां ॥
दीपक ग्यान सबद धुनि घंटा पर पुरिख तहाँ देव अनंता ।
परम प्रकाश सकल उजियारा, कहै कबीर मैं दास तुम्हारा ॥

(३) रमैंणी

[राग सूहौ]

तू सकल गहगरा, सफ सफा दिलदार दीदार ॥
तेरी कुदरति किनहूँ न जानी, पीर मुरीद काजी मुसलमानी ।
देवी देव सुर नर गण गंध्रप, ब्रह्मा देव महेसुर ॥
तेरी कुदरति तिनहूँ न जाँनी ॥टेक॥
काजी सो जो काया विचारैं, तेल दीप मैं वाती जारैं ।
तेल दीप मैं बाती रहै, जोति चीन्हि जे काजी कहै ॥
मुलनाँ बंग देइ सुर जाँनी, आप मुसला बैठा ताँनी ॥
आपुन मैं जे करै निवाजा, सो मुलनाँ सरवत्तरि गाजा ॥
सेष सहज मैं महल उठावा, चंद सूर बिचि तारी लावा ॥
अर्ध उर्ध विचि आनि उतारा, सोई सेष तिहूँ लोक पियारा ॥
जंगम जोग विचारैं जहूँवाँ, जीव सीव करि एकै ठऊवां ॥
चित चेतनि करि पूजा लावा, तेतौ जंगम नाँउँ कहावा ॥
जोगी भसम करै भौ मारी. सहज गहै विचार विचारी ॥
अनभै घट परचा सू बोलैं, सो जोगी निहचल कदे न डोले ॥
जैन जीव का करहु उवारा, कौण जीव का करहु उधारा ॥
कहाँ वसै चौरासी का देव, लही मुकति जे जाँनौ भेव ॥
भगता तिरण मतै संसारी, तिरण तत ते लेहु विचारी ॥
प्रीति जाँनि राँम जे कहै, दास नाँउ सो भगता लहै ॥
पंडित चारि वेद गुँण गावा, आदि अंति करि पूत कहावा ॥
उतपति परलै कहौ विचारी, संसा घालौ सबै निवारी ॥
अरधक उरधक ये संन्यासी, ते सब लागि रहै अविनासी ॥
अजरावर कौं डिढ करि गहै, सो संन्यासी उम्मन रहै ॥
जिहि घर चाल रची ब्रह्मंडा, पृथमी मारि करी नव खंडा ॥
अविगत पुरिस की गति लखी न जाइ, दास कबीर अगह रहे ल्यौं लाई ।१।

---

(१) ख प्रति में इसके आगे यह रमैंणी है—

[ग्रथबावनी]

बावन आखिर लोकत्री, सब कुछ इनही माँहि ॥
ये सब षिरि पिरि जाहिगे, सो आखिर इनमैं नाँहि ॥

(सतपदी रमैणी)

कहन सुनन कौ जिहि जग कीन्हा, जग भुलांन सो किनहूँ न चीन्हा ॥
सत रज तम थैं कीन्ही माया, आपण मांझै आप छिपाया ॥

तुरक सरीअत जनिये, हिंदू वेद पुरान ॥
मन समझन कै कारनै, कछु एक पढिये ज्ञान ॥

जहाँ बोल तहाँ आखिर आवा, जहाँ अबोल तहाँ मन न लगावा ॥
बोल अबोल मझि है सोई, जे कुछि है ताहि लखै न कोई ॥
ओ अंकार आदि मैं जाना, लिखि करि मेटै ताहि न माना ॥
ओ ऊकार करै जस कोई, तस लिखि मरेणाँ न होई ॥
कका कवल किरणि मैं पावा, अरि ससि विगास सपेट नही आवा ॥
अस जे जहाँ कुसुम रस पावा, तौ अकह कहा कहि का समझावा ॥
खखा इहै खोरि मनि आवा, खोरहि छाँडि चहूँ दिस धावा ॥
खसमहि जानि पिमा करि रहै, तौ हो दून पेव अखै पद लहै ॥
गगा गुर के वचन पिछाना, दूसर वात न धरिये काना ॥
सोई विहंगम कवहुँ न जाई, अगम गहै गहि गगन रहाई ॥
घघा घटि निमसै सोई, घट फाटा घट कबहुँ न होई ॥
ता घट माँहि घाट जो पावा, सुघटि छाड़ि औघट कत आवा ॥

नना निरखि सनेह करि, निरवालै संदेह ।
नाही देखि न भाजिये, प्रेम सयानप येह ॥

चचा चरित चित्र है भारी, तजि विचित्र चेतहु चितकारी ॥
चित्र विचित्र रहै औंडेरा, तजि विचित्र चित राखि चितेरा ॥
छछा इहै छत्रपति पासा, तिहि छाक न रहै छाड़ि करि आसा ॥
रे मन तूं छिन छिन समझाया, तहाँ छाड़ि कत आप बधाया ॥
जजा जे जानै तौ दुरमति हारी, करि वासि काया गाँव ॥
रिण रोक्या भाजै नही, तौ सूरण थारो नाँव ॥
झझा उरझि सुरझि नही जाना, रहि मुखि झझखि झझखि परवाना ॥
कत झपिझपि औरनि समझावा, झगरौ कीये झगरिवौ पावा ॥

नना निकटि जु घटि रहै, दूरि कहाँ तजि आइ ।
जा कारणि जग ढूँढियो, नेड़ै पायौ ताहि ॥

टटा निकट घाट है माही, खोलि कपाट महील जब जाही ॥
रहै लपटि जहि घटि परचो आई, देखि अटल टलि कतहुँ न जाई ॥
ठठा ठौर दूरि ठग नीरा, नीठि नीठि मन कीया धीरा ॥

ते तौ आहि अनंद सरूपा, गुन पल्लव विस्तार अनूपा ॥
साखा तत थै कुसम गियाँनाँ, फल सो आछा राम का नाँमाँ ॥

सदा अचेत चेत जिव पंखी, हरि तरवर करि वास।
झूठ जगि जिनि भूलसी जियरे, कहन सुनन की आस ॥

जिहि ठगि ठगि सकल जग खावा, सो ठग ठग्यो ठौर मन आवा ॥
डडा डर उपजै डर जाई, डरही मै डर रह्यो समाई ॥
जो डर डरै तो फिर डर लागै, निडर होइ तो डरि डर भागै ॥
ढढा ढिग कत ढूँढै आना, ढूँढत ढूँढत गये पराँना ॥
चढ़ि सुमेर ढूँढि जग आवा, जिमि गढ़ गढ़्या सुगढ मैं पावा ॥
णणारि णरूँ तौ नर नाही करै, ना फुनि नवै न सचरै ॥
धनि जनम ताही कौ गिणाँ, मेरे एक तजि जाहि घणाँ ॥
तता अतिर तिस्यौ नही गाई, तन त्रिभुवन मे रह्यौ समाई ॥
जे त्रिभुवन तन मोहि समावै, तो ततै तन मिल्या सचु पावै ॥
थथा अथाह थाह नही आवा, वो अथाह यहु थिर न रहावा ॥
थोरै थलि थानै आरंभै, तौ विनही थंभै मदिर थंभै ॥
ददा देखि जुरे बिनसन हार, जस न देखि तस राखि विचार ॥
दसवै द्वारि जब कुजी दीजै, तब दयालु को दरसन कीजै ॥
धधा अरधै उरध न वेरा, अरधै उरधै मझि बसेरा ॥
अरधै त्यागि उरध जब आवा, तब उरधै छाँड़ि अरध कत धावा ॥
नना निस दिन निरखत जाई, निरखत नैंन रहे रतवाई ॥
निरखत निरखत जब जाइ पावा, तब लै निरखै निरख मिलावा ॥
पपा अपार पार नही पावा, परम जोति सौ परचो आवा ॥
पाँचौं इद्री निग्रह करै, तब पाप पुनि दोऊ न सचरै ॥
फफा बिन फूलाँ फलै होई, ता फल फफ लहै जो कोई ॥
दूँणी न पड़ै फूँकै बिचारै, ताकी फूँक सबै तन फारै ॥
ववा वंदहि वदै मिलावा, वंदहि वद न विछुरन पावा ॥
जे वंदा वदि गहि रहै. तो वंदगि होइ सबै वद लहै ॥
भभा भेदै भेद नही पावा, अरभै भाँनि ऐसो आवा ॥
जो बाहरि सो भीतरि जाना, भयौ भेद भूपति पहिचाना ॥

ममाँ मन सौं काज है, मनमानाँ सिधि होइ ॥
मनही मन सौ कहै कबीर, मन सौ मिल्याँ न कोइ ॥

ममाँ मूल गह्याँ मन माना, मरमी होइ सूँ मरमही जाना ॥
मति कोई मनसौ मिलता विलमावै, मगन भया तै सोगति पावै ॥

सूक बिरख यहु जगत उपाया, समझि न परै विषम तेरी माया ॥
साखा तीनि पत्र जुग चारी, फल दोइ पापै पुनि अधिकारी ॥
स्वाद अनेक कथ्या नही जाँही, किया चरित सो इन मै नाही ॥
तेतौ आहि निनार निरंजना, आदि अनादि न आँन ॥
कहन सुनन कौं कीन्ह जग, आपै आप भुलाँन ॥
जिनि नटवे नटसारी साजी, जो खेलै सो दीसे वाजी ॥
मो बपरा थै जोगपति ढीठो, सिव बिरंचि नारद नही दीठी ॥
आदि अंति जो लीन भये है, सहजै जाँनि संतोखि रहे है ॥

जजा सुतन जीवतही जरावै, जोवन जारि जुगुति सो पावै ॥
असजरि वुजरि जरि वरिहै, तब जाइ जोति उजारा लहै ॥
ररा सरस निरस करि जानै, निरस होइ सुरस करि मानै ॥
यहु रस विसरै सो रस होई, सो रस रसिक लहै जे कोई ॥
लला लहौ तो भेद है, कहूँ तौ कौ उपगार ॥

वटक बीज मैं रमि रह्या, ताका तीन लोक विस्तार ॥
ववा वोइहि जाणिये, इहि जार्ण्यां वो होइ ॥
वो अस यहु जबही मिल्या, तब मिलत न जाणै कोइ ॥
ससा सो नीका करि सोधै, घट परचा की बात निरोधै ॥
घट परचो जे उपजै भाव, मिले ताहि त्रिभुवनपति राव ॥
षषा खोजि परे जे कोई, जे खोजै सो वहुरे न होइ ॥
षोजि बूझि जे करै विचार, तौ भौ जल तिरत न लागे वार ॥
शशा शोई शेज नू वारे, शोई शाव शंदेह निवारे ॥
अति सुख बिशरे परम सुख पावै, शो अस्त्री सो कंत कहावै ॥
हहा होइ होत नही जानै, जब जब होइ तबै मन मानै ॥
ससा उनमन से मन लावै, अनत न जाइ परम सुख पावै ॥
अरु जे तहाँ प्रेम ल्यौ लावै, तो डालह लहैं लैहि चरन समावै ॥
षषा षिरत षपत नही चेते, षपत षपत गये जुग केते ॥
अब जुग जानि जोरि मन रहै, तौ जहाँ थै बिछरचो सो थिर रहै ॥
बावन अषिर जोरै आनि, एकौ आषिर सक्या न जानि ॥
सति का शब्द कबीरा कहै, पूछौ जाइ कहा मन रहै ॥
पडित लोगन कौ वौहार, ग्यानवंत कौ तत विचारि ॥
जाकै हिरदै जैसी होई, कहै कबीर लहैगा सोई ॥ २ ॥

सहजैं रॉंम नॉंम ल्यौ लाई, रॉंम नॉंम कहि भगति दिढाई।
रॉंम नॉंम जाका मन मॉंनॉं, तिन तौ निज सरूप पहिचॉंनॉं ।।

निज सरूप निरंजना, निराकार अपरंपार अपार।
रॉंम नॉंम ल्यौ लाइस जियरे, जिनि भूलै बिस्तार ।।

करि विसतार जग धंधै लाया, अंत काया थै पुरिष उपाया ।।
जिहि जैसी मनसा तिहि तैसा भावा, ताकूँ तैसा कीन्ह उपावा ।।
तेतौ माया मोह भुलॉंनॉं, खसम रॉंम सो किनहूँ न जॉंनॉं ।।
जिनि जॉंन्या ते निरमल अंगा, नही जॉंन्या ते भये भुजंगा ।।
ता मुखि विष आवै विष जाई, ते विष हीं विष मैं रहै समाई ।।
माता जगत भूत सुधि नॉंही भ्रमि भूले नर आवै जाही ।।
जानि बूझि चेते नही अंधा, करम जठर करम के फंधा ।।

करम का बाँधा जीयरा, अह निसि आवै जाइ ।।
मनसा देही पाइ करि, हरि बिसरै तौ फिर पीछै पछिताइ ।।

तौ करि त्राहि चेति जा अंधा, तजि पर कीरति भजि चरन गोव्यंदा ।।
उदर कूप तजौ ग्रभ बासा, रे जीव रॉंम नॉंम अभ्यासा ।।
जगि जीवन जैसे लहरि तरंगा, खिन सुख कूँ भूलसि बहु संगा ।।
भगति की हींन जीवन कछू नाँही, उतपति परलै बहुरि समाही ।।
भगति हींन अस जीवनाँ, जन्म मरन बहु काल ।।
आश्रम अनेक करसि रे जियरा, रॉंम बिना कोइ न करै प्रतिपाल ।।
सोई उपाव करि यहु दुख जाई, ए सब परहरि बिसै सगाई ।।
माया मोह जरै जग आगी, ता सगि जरसि कवन रस लागी ।।
त्राहि त्राहि करि हरी पुकारा, साधु सगति मिलि करहु विचारा ।।
रे रे जीवन नही बिश्रॉंमॉं, सब दुख खडन रॉंम को नॉंमॉं ।।
रॉंम नॉंम ससार मैं सारा, रॉंम नॉंम भौ तारन हारा ।।

सुम्रित वेद सबे सुनै, नही आवै कृत काज ।
नही जैसै कुंडिल बनित मुख, मुख सोभित बिन राज ।।

अब गहि रॉंम नॉंम अविनासी, हरि तजि जिनि कतहूँ कै जासी ।।
जहाँ जाइ तहाँ तहाँ पतंगा, अब जिनि जरसि समझि विष संगा ।।
चोखा रॉंम नॉंम मनि लीन्हा, भिंग्री कीट भ्यंग नही कीन्हाँ ।।
भौसागर अति वार न पारा, ता तिरबे का करहु विचारा ।।
मनि भावै अति लहरि विकारा, नही गमि सूझै वार न पारा ।।

भौसागर अथाह जल, तामैं बोहिथ रॉंम अधार ।
कहै कबीर हम हरि सरन, तब गोपद खुर बिस्तार ।।२।।

(वड़ी अष्टपदी रमैंणी)

एक विनाँनी रच्या विनाँन, सव अयाँन जो आपै जाँन ॥
सत रज तम थैं कीन्ही माया, चारि खानि विस्तार उपाया ॥
पच तत ले कीन्ह वंधान, पाप पुनि माँन अभिमान ॥
अहकार कीन्हें माया मोहू, सपति विपति दीन्ही सव काहू ॥
भले रे पोच अकुल कुलवंता, गुणी निरगुणी धन नीधनवता ॥
भूख पियास अनहित हित कीन्हाँ, हेत मोर तोर करि लीन्हाँ ॥
पच स्वाद ले कीन्हाँ वधू, वधे करम जा आहि अवंधू ॥
अचर जीव जत जे आही, सकट सोच वियापैं ताही ॥
निंद्या अस्तुति माँन अभिमाँना, इनि झूठैं जीव हत्या गियाँना ॥
वहु विधि करि ससार भुलावा, झूठैं दोजगि साच लुकावा ॥

माया मोह धन जोवनाँ, इनि वधे सव लोइ ।
झूठै झूठ वियापिया कवीर, अलख न लखई कोइ ॥

झूठनि झूठ साँच करि जानाँ, झूठनि मै सव साँच लुकानाँ ।
धध वंध कीन्ह वहुतेरा, क्रम विवर्जित रहै न नेरा ॥
षट दरसन आश्रम षट कीन्हाँ, षट रस खाटि काम रस लीन्हा॥
चारि वेद छह सास्त्र वखानैं, विद्या अनत कथैं को जाँनैं ॥
तप तीरथ कीन्हें व्रत पूजा, धरम नेम दान पुन्य दूजा ॥
औंर अगम कन्हे व्यौहारा, नही गमि सूझै वार न पारा ॥
लीला करि करि भेख फिरावा, ओट वहुत कछु कहत न आवा ॥
गहन व्यद कछू नही सूझै, आपन गोप भयौ आगम वूझै ॥
भूलि परयौ जीव अधिक डराई, रजनी अध कूप ह्वै आई ॥
माया मोह उनवै भरपूरी, दादुर दाँमिनि पवनाँ पूरी ॥
तरिपैं वरिपैं अखंड धारा, रैंनि भाँमनी भया अधियारा ॥
तिहि वियोग तजि भए अनाथा, परे निकुंज न पावै पथा ॥
वेद न आहि कहूँ को मानै, जानि वूझि मैं भया अयानै ॥
नट वहु रूप खेलै सव जाँनै, कला केर गुन ठाकुर माँनै ॥
ओ खेले सव ही घट माँही, दूसर कै लेखै कछु नाही ॥
जाके गुन सोई पै जाँनै, औंर को जानै, पार अयानै ॥
भले रे पोच औसर जव आवा, करि सनमाँन पूरि जम पाव ॥
दान पुन्य हम दिहूँ निरासा, कव लग रहूँ नटारभ काछा ॥
फिरत फिरत सव चरन तुराँनै, हरि चरित अगम कथैं को जानैं ।
गण गध्रप मुनि अत न पावा, रह्यो अलख जग धधैं लावा ॥

इहि बाजी सिव बिरंचि भुलाँनाँ, और बपुरा को क्यंचित जाँनाँ ॥
त्राहि त्राहि हम कीन्ह पुकारा, राखि राखि साईं इहि बारा ॥
कोटि ब्रह्मंड गहि दीन्ह फिराई, फल कर कीट जनम बहुताई ॥
ईस्वर जोग खरा जब लीन्हाँ, टरचो ध्यान तप खंड न कीन्हाँ ॥
सिध साधिका उनथैं कहु कोई, मन चित अस्थिर कहुँ कैसैं होई ॥
लीला अगम कथैं को पारा, बसहु समीप कि रहौ निनारा ॥

खग खोज पीछैं नहीं, तूँ तत अपरंपार ।
बिन परचैं का जाँनियैं, सब झूठे अहंकार ॥

अलख निरंजन लखै न कोई, निरभै निराकार है सोई ॥
सुंनि असथूल रूप नहीं रेखा, द्रिष्टि अद्रिष्टि छिप्यौं नहीं पेखा ॥
बरन अबरन कथ्यौं नहीं जाई, सकल अतीत घट रह्यौं समाई ॥
आदि अंत ताहि नहीं मधे, कथ्यौं न जाई आहि अकथे ॥
अपरंपार उपजै नहीं बिनसै, जुगति न जाँनियैं कथिये कैसैं ॥

जस कथिये तत होत नहीं, जस है तैसा सोइ ।
कहत सुनत सुख उपजै, अरु परमारथ होइ ॥

जाँनसि नहीं कस कथसि अयाँनाँ, हम निरगुन तुम्ह सरगुन जाँनाँ ॥
मति करि हीन कवन गुन आँही, लालचि लागि आसिरैं रहाई ॥
गुँन अरु ग्याँन दोऊ हम हीनाँ, जैसी कुछ बुधि बिचार तस कीन्हाँ ॥
हम मसकीन कछू जुगति न आवै, ते तुम्ह दरवौ तौ पूरि जन पावै ॥
तुम्हरे चरन कवल मन राता, गुन निरगुन के तुम्ह निज दाता ॥
जहुवाँ प्रगटि बजावहु जैसा, जस अनभै कथिया तिनि तैसा ॥
बाजै जंत्र नाद धुनि होई, जे बजावै सो औरै कोई ॥
बाजी नाचै कौतिग देखा, जो नचावै सो किनहूँ न पेखा ॥

आप आप थैं जानियैं, है पर नाहीं सोइ ।
कबीर सुपिनै केर धन ज्यूँ, जागत हाथि न होइ ॥

जिनि यहु सुपिनाँ फुर करि जाँनाँ, और सब दुखयादि न आँनाँ ॥
ग्याँन हीन चेत नहीं सूता, मै जाया बिष हार भै भूता ॥
पारधी बाँन रहै सर साँधै, बिषम बाँन मारै बिष बाँधै ॥
काल अहेड़ी संझ सकारा, सावज ससा सकल संसारा ॥
दावानल अति जरै बिकारा, माया मोह रोकि ले जारा ॥
पवन सहाइ लोभ अति भइया, जम चरचा चहुँ दिसि फिरि गइया ॥
जम के चर चहुँ दिसि फिरि लागे; हंस पखेरुवा अब कहाँ जाइबे ॥
केस गहै कर निस दिन रहई, जब धरि ऐंचे तब धरि चहई ॥

कठिन पासि कछू चलै न उपाई, जंम दुवारि सीझै सब जाई ॥
सोई त्रास सुनि राँम न गावै, मृगत्रिष्णाँ झूठी दिन धावै ॥
मृत काल किनहूँ नही देखा, दुख कौ सुख करि सबही लेखा ॥
सुख करि मूल न चीन्हसि अभागी, चीन्हैं बिना रहै दुख लागी ॥
नीब काट रस नीब पियारा, यूँ विष कूँ अमृत कहै ससारा ॥
विष अमृत एकै करि साँनाँ, जिनि चीन्ह्याँ तिनही सुख माँनाँ ॥
अछित राज दिन दिनहि सिराई, अंमृत परहरि करि विष खाई ॥
जाँनि अजाँनि जिन्है विष खावा, परे लहरि पुकारै धावा ॥
विष के खाँये का गुंन होई, जा बेद न जानै परि सोई ॥
मुरछि मुरछि जीव जरिहै आसा, काँजी अलप बहुखीर बिनासा ॥
तिल सुख कारनि दुख अस मेरू, चोरासी लख लीया फेरू ॥
अलप सुख दुख आहि अनंता, मन मैंगल भूल्यौ मैंमंता ॥
दीपक जोति रहै इक सगा, नैंन नेह माँनूं परै पतगा ॥
सुख विश्राँम किनहूँ नही पावा, परहरि साच झूठ दिन धावा ॥
लालच लागे जनम सिरावा, अति काल दिन आइ तुरावा ॥
जब लग है यहु निज तन सोई, तब लग चेति न देखै कोई ॥
जब निज चलि करि किया पयाँनाँ, भयौ अकाज तब फिर पछिताँनाँ ॥

मृगत्रिष्णाँ दिन दिन ऐसी, अब मोहि कछू न सोहाइ ।
अनेक जतन करि टारिये, करम पासि नही जाइ ॥

रे रे मन बुधिवंत भडारा, आप आप ही करहु बिचारा ॥
कवन सयाँना काँन बौराई, किहि दुख पइये किहि दुख जाई ॥
कवन सार को आहि असारा, को अनहित को आहि पियारा ॥
कवन साच कवन है झूठा, कवन करू को लागै मीठा ॥
किहि जरिये किहि करिये अनदा, कवन मुकति को मल के फदा ॥

रे रे मन मोहि ब्यौरि कहि, हौ तत पूछौ तोहि ॥
ससै सूल सबै भई, समझाई कहि मोहि ॥

सुनि हसा मै कहूँ विचारी, त्रिजुग जोनि सबै अँधियारी ॥
मनिषा जन्म उत्तिम जौ पावा, जाँनूं राम तौ सयाँन कहावा ॥
नही चेतै तौ जनम गँमावा, परचौ विहान तब फिरि पछतावा ॥
सुख करि मूल भगति जौ जाँनै, और सबै दुख या दिन आँनै ॥
अमृत केवल राँम पियारा, और सबै बिष के भंडारा ॥
हरि आहि जौ रमियै राँमाँ, और सबै बिसमा के काँमाँ ॥
सार आहि सगति निरबाँनाँ, और सबै असार करि जाँनाँ ॥

अनहित आहि सकल ससारा, हित करि जाँनियै राँम पियारा ॥
साच सोई जे थिरह रहाई, उपजै विनसै झूठ ह्वै जाई ॥
मींठा सो जो सहजै पावा, अति कलेस थैं करू कहावा ॥
नाँ जरियै ना कीजै मैं मेरा, तहाँ अनद जहाँ राम निहोरा ॥
मुकति सोज आपा पर जाँनैं, सो पद कहाँ जु भरमि भुलानैं ॥

प्राँननाथ जग जीवनाँ, दुरलभ राम पियार ।
सुत सरीर धन प्रग्रह कवीर, जीये रे तर्वर पंख वसियार ॥

रे रे जीय अपनाँ दुख न सँभारा, जिहि दुख व्याप्या सव संसारा ॥
मायाँ मोह भूले सव लोई, क्यचित लाभ माँनिक दीयौं खोई ॥
मैं मेरी करि वहुत विगूला, जननी उदर जन्म का सूला ॥
वहुतै रूप भेप वहु कीन्हाँ, जुरा मरन क्रोध तन खीनाँ ॥
उपजै विनसै जोनि फिराई, सुख कर मूल न पावै चाहा ॥
दुख संताप कलेस वहु पावै, सो न मिलै जे जरत वुझावै ॥
जिहि हित जीव राखिहै भाई, सो अनहित है जाइ विलाई ॥
मोर तोर करि जरे अपारा, मृगतृष्णा झूठी संसारा ॥
माया मोह झूठ रह्यौ लागी, का भयौ इहाँ का ह्वै है आगी ॥
कछु कछु चेति देखि जीव अवही, मनिपा जनम ज पावै कवही ॥
सारि आहि जे संग पियारा, जव चेतैं तव ही उजियारा ॥
त्रिजुग जोनि जे आहि अचेता, मनिपा जनम भयौ चित चेता ॥
आतमाँ मुरछि मुरछि जरि जाई, पिछले दुख कहता न सिराई ॥
सोई त्रास जे जाँनैं हसा, तौ अजहूँ न जीव करै संतोसा ॥
भौसागर अति वार न पारा, ता तिरिवे का करहु विचारा ॥
जा जल की आदि अति नहीं जानियै, ताकौ डर काहे न मानियैं ॥
को वोहिथ को खेवट आही, जिहि तिरिये सो लीजै चाही ॥
समझि विचारि जीव जव देखा, यहु संसार सुपन करि लेखा ॥
भई वुधि कछू ग्यॉन निहारा, आप आप ही किया विचारा ॥
आपण मैं जे रह्यौ समाई, नेड दूरि कथ्यौ नही जाई ॥
ताके चीन्हैं परचौ पावा, भई समझि तासूँ मन लावा ॥

भाव भगति हित वोहिया, सतगर खेवनहार ।
अलप उदिक तव जाँणिये, जव गोपदखुर बिस्तार ॥ ३ ॥

(दुपदी रमैणी)

भरा दयाल विपहर जरि जागा, गहगहान प्रेम वहु लागा ॥
भया अनद जीव भये उल्हासा, मिले रॉम मनि पूगी आसा ॥

मास असाढ रवि धरनि जरावै, जरत जरत जल आइ बुझावै ॥
रुति सुभाइ जिमी सब जागी, अमृत धार होइ झर लागी ॥
जिमी माँहि उठी हरियाई, विरहनि पीव मिले जन जाई ॥
मनिकाँ मनि के भये उछाहा, कारनि कौन बिसारी नाहा ॥
खेल तुम्हारा मरन भया मोरा, चौरासी लख कीन्हाँ फेरा ॥
सेवग सत जे होइ अनिआई, गुन अवगुन सब तुम्हि समाई ॥
अपने औगुन कहूँ न पारा, इहै अभाग जे तुम्ह न सँभारा ॥
दरबो नही काँई तुम्ह नाहा, तुम्ह बिछुरे मैं बहु दुख चाहा ॥
मेघ न बरिखै जाँहि उदासा, तऊ न सारँग सागर आसा ॥
जलहर मरयौ ताहि नही भावै, कै मरि जाइ कै उहै पियावै ॥
मिलहु रॉम मनि पुरवहु आसा, तुम्ह बिछुरया मैं सकल निरासा ॥
मै रनिरासी जब निध्य पाई, राँम नाँम जीव जाग्या जाई ॥
नलिनी कै ज्यूँ नीर अधारा, खिन बिछुरयाँ थै रवि प्रजारा ॥
राँम बिनाँ जीव बहुत दुख पावै, मन पतग जगि अधिक जरावै ॥
माघ मास रुति कवलि तुसारा, भयौ बसत तब बाग सँभारा ॥
अपनै रगि सब कोइ राता, मधुकर बार लेहि मैमता ॥
बन कोकिला नाद गहगहाँना, रुति बसत सब कै मनि मानाँ ॥
विरहन्य रजनी जुग प्रति भइया, पिव पिव मिले कलप टलि गइया ॥
आतमाँ चेति समझि जीव जाई, बाजी झूठ राँम निधि पाई ॥
भया दयाल निति बाजहि बाजा, सहज राँम नाँम मन राजा ॥

जरत जरत जल पाइया, सुख सागर कर मूल ॥
गुर प्रसादि कबीर कहि, भागी ससै सूल ॥

राँम नाँम जिन पाया सारा, अबिरथा झूठ सकल संसारा ॥
हरि उतग मै जानि पतगा, जबकु केहरि कै ज्यूँ संगा ॥
क्यंचिति ह्वै सुपनै निधि पाई, नही सोभा कौ धरी लुकाई ॥
हिरदै न समाइ जाँनियै नही पारा, लागै लोभ न और हकारा ॥
सुमिरत हूँ अपनै उनमानाँ, क्यचित जोग राँम मैं जानाँ ॥
मुखाँ साध का जानियै असाधा, क्यचित जोग राँम मैं लाधा ॥
कुबिज होई अमृत फल बछ्या, पहुँचा तब मन पूगी इछ्या ॥
नियर थै दूरि दूरि थै नियरा, रामचरित न जानियै जियरा ॥
सीत थै अगिन फुनि होई, रवि थै ससि ससि थै रवि सोई ॥
सीत थै अगनि परजई, थल थै निधि निधि थै थल करई ॥
वज्र थै तिण खिण भीतरि होई, तिण थैं कुलिस करे फुनि सोई ॥
गिरवर छार छार गिरि होई, अविगति गति जानै नही कोई ॥

जिहि दुरमति डोल्यौ ससारा, परे असूझि वार नहिं पारा ।।
विख अंमृत एक करि लीन्हाँ, जिनि चीन्हा सुख तिहकूँ हरि दीन्हां ।।
सुख दुख जिनि चीन्हा नही जाँनाँ, ग्रासे काल सोग रुति माँनाँ ।।
होइ पतग दीपक मैं परई, झूठै स्वादि लागि जीव जरई ।।
कर गहि दीपक परहि जु कूपा, वहु अचिरज हम देखि अनूपा ।।
ग्यानहीन ओछी मति बाधा, मुखाँ साध करतूति असाधा ।।
दरसन समि कछू साध न होई, गुर समान पूजिये सिध सोई ।।
भेप कहा जे वृधि विमूढ़ा विन परचे जग वूडनि वूड़ा ।।
जदपि रवि कहिये सुर आही, झूठे रवि लीन्हा सुर चाही ।।
कवहूँ हुतासन होइ जरावै, कवहुँ अखड धार वरिषावै ।।
कवहुँ सीत काल करि राजा, तिहूँ प्रकार वहुत दुख देखा ।।
ताकूँ सेवि मूढ सुख पावै, दौरे लाभ कूँ मूल गवावै ।।
अछित राज दिने दिन होई, दिवस सिराइ जनम गये खोई ।।
मृत काल किनहूँ नही देखा, माया मोह धन अगम अलेखा ।।
झूठै झूठ रह्यौ उरझाई, साचा अलख जग लख्या न जाई ।।
साचै नियरै झूठै दूरी, विप कूँ कहै सजीवन मूरी ।।
कथ्यौं न जाइ नियरै अरु दूरी, सकल अतीत रह्या घट पूरी ।।
जहाँ देखौं तहां राम समाँनाँ, तुम्ह विन ठौर और नहिं आँनाँ ।।
जदपि रह्या सकल घट पूरी, भाव विनाँ अभिअतरि दूरी ।।
लोभ पाप दोऊ जरै निरासा, झूठै झूठि लागि रही आसा ।।
जहुँवाँ ह्वै निज प्रगट वजावा, सुख संतोप तहाँ हम पावा ।।
नित उठि जस कीन्ह परकासा, पावक रहै जैसे काष्ट निवासा ।।
विना जुगति कैसे मथिया जाई, काष्ठै पावक रह्या समाई ।।
कष्टै कष्ट अग्नि पर जरई, जारै दार अग्नि समि करई ।।
ज्यूँ राम कहै ते राँम होई, दुख कलेस घालै सब खोई ।।
जन्म के कलि विप जाँहि विलाई, भरम करम का कछु न वसाई ।।
भरम करम दोऊ वरतै लोई, इनका चरित न जाँनै कोई ।।
इन दोऊ संसार भुलावा, इनके लागै ग्याँन गँवावा ।।
इनकौं मरम पै सोई विचारी, सदा अनद लै लीन मुरारी ।।
ग्याँन दृष्टि निज पेखे जोई, इनका चरित जाँनै पै सोई ।।
ज्यूँ रजनी रज देखत अँधियारी, डसे भुवंगम विन उजियारी ।।
तारे अगिनत गुनहि अपारा, तऊ कछू नही होत अधारा ।।
झूठ देखि जीव अधिक डराई, विना भुवंगम डसी दुनियाँई ।।
झूठै झूठ लागि रही आसा, जेठ मास जैसे कुरंग पियासा ।।

इक त्रिपावत दह दिसि फिर आवे, झूठै लागा नीर न पावै ॥
इक त्रिपावत अरु जाइ जराई, झूठी आस लागि मरि जाई ॥
नीझर नीर जाँनि परहरिया, करम के बाँधे लालच करिया ॥
कहै मोर कछू आहि न वाही, धरम करम दोऊ मति गवाई ॥
धरम करम दोऊ मति परहरिया, झूठे नाँऊ साच ले धरिया ॥
रजनी गत भई रवि परकासा, धरम करम धूँ केर बिनासा ॥
रवि प्रकास तारे गुन खीनाँ, आचार व्यौहार सब भये मलीनाँ ॥
विष के दाधें विष नहीं भावै, जरत जरत सुखसागर पावै ॥
अनिल झूठ दिन धावै आसा, अध दुरगंध सहै दुख त्रासा ॥
इक त्रिपावन दूसरे रवि तपई, दह दिसि ज्वाला चहुँदिसि जरई ॥
करि सनमुखि जब ग्याँन विचारी, सनमुखि परिया अगनि मँझारी ॥
गछत गछत तब आगै आवा, बित उनमांन ढिबुआ इक पावा ॥
सीतल सरीर तन रह्या समाई, तहाँ छाडि कत दाझै जाई ॥
यूँ मन वारुनि भया हमारा, दाधा दुख कलेस संसारा ॥
जरत फिरे चौरासी लेखा, सुख कर मूल कितहूँ नहीं देखा ॥
जाके छाड़े भये अनाथा, भूलि परे नहीं पावै पथा ॥
अछै अभि अतरि नियरै दूरी, बिन चीन्ह्या क्यूँ पाइये मूरी ॥
जा दिन हस बहुत दुख पावा, जरत जरत गुरि राम मिलावा ॥
मिल्या राँम रह्या सहजि समाई, खिन बिछुरचा जीव उरझै जाई ॥
जा मिलियाँ तैं कीजै बधाई, परमांनद रैंनि दिन गाई ॥
सखी सहेली लीन्ह बुलाई, रुति परमानंद भेटिये जाई ॥
चली सखी जहुँवा निज राँमाँ, भये उछाह छाड़े सब काँमाँ ॥
जानूँ कि मोरै मरस बसंता, मैं बलि जाऊँ तोरि भगवता ॥
भगति हेत गावै लैलीनाँ, ज्यूँ बन नाद कोकिला कीन्हाँ ॥
बाजै सख सबद धुनि बेनाँ, तन मन चित हरि गोबिंद लीनाँ ॥
चल अचल पाँइन पंगुरनी, मधुकरि ज्यूँ लेहि अघरनी ॥
सावज सीह रहे सब माँची, चंद अरु सूर रहै रथ खाँची ॥
गण गंध्रप सुनि जीवै देवा, आरति करि करि बिनवैं सेवा ॥
बासि गयंद्र ब्रह्मा करै आसा, हँम क्यूँ चित दुर्लभ राम दासा ॥
भगति हेतु राँम गुन गावै, सुर नर मुनि दुर्लभ पद पावै ॥
पुनिम बिमल ससि मात बसता, दरसन जोति मिले भगवंता ॥
चदन बिलनी बिरहिनि धारा, यूँ पूजिये प्रॉनपति राँम पियारा ॥
भाव भगति पूजा अरु पाती, आतमराँम मिले बहु भाँती ॥

रॉम रॉम रॉम रुचि मॉनै, सदा अनंद रॉम ल्यौ जॉनै ।।
पाया सुख सागर कर मूला, जो सुख नही कहूँ समतूला ।।
सुख समाधि सुख भया हमारा, मिल्या न वेगर होइ ।।
जिहि लाधा सो जॉनिहै, राम कवीर और न जानै कोइ ।।

(अष्टपदी रमैणी)

केऊ केऊ तीरथ व्रत लपटानॉ, केऊ केऊ केवल रॉम निज जॉनॉं ।।
अजरा अमर एक अस्थॉनॉं, ताका मरम काहू विरलै जानॉं ।।
अवरन जोति सकल उजियारा, द्रिष्टि समॉंन दास निस्तारा ।।
जो नही उपज्या धरनि सरीरा, ताकै पथि न सीच्या नीरा ।।
जा नही लागे सूरजि के वॉंनॉं, सो मोहि ऑंनि देहु को दॉनॉं ।।
जव नही होते पवन नही पानी, तव नही होती सिष्टि उपॉनी ।।
जव नही होते प्यंड न वासा, तव नही होते धरनी अकासा ।।
जव नही होते गरभ न मूला, तव नही होते कली न फूला ।।
जव नही होते सवद न स्वाद, तव नही होते विद्या न वाद ।।
जव नही होते गुरू न चेला, तव गम अगमै पंथ अकेला ।।

अवगति की गति क्या कहूँ, जिसकर गॉंव न नॉंव ।
गुन विहूँन का पेखिये, काकर धरिये नॉंव ।।

आदम आदि सुधि नही पाई, मॉं मॉं हवा कहॉं थैं आई ।।
जव नही होते रॉंम खुदाई, साखा मूल आदि नही भाई ।।
जव नही होते तुरक न हिंदू, माका उदर पिता का व्यंदू ।।
जव नहीं होते गाइ कसाई, तव विसमला किनि फुरमाई ।।
भूले फिरैं दीन ह्वै धॉंवैं, ता साहिव का पंथ न पावैं ।।

सजोगै करि गुँण धरचा, विजोगै गुँण जाइ ।।
जिभ्या स्वारथि आपणैं कीजै वहुत उपाइ ।।

जिनि कलमॉं कलि मॉंहि पठावा, कुदरत खोजि तिनहूँ नही पावा ।।
कर्म करीम भये कर्तूता, वेद कुरान भये दोऊ रीता ।।
कृतम सो जु गरभ अवतरिया, कृतम सो जु नाव जस धरिया ।।
कृतम सुनित्य और जनेऊ, हिंदू तुरक न जानैं भेऊ ।।
मन मुसले की जुगति न जॉंनै, मति भूलै द्वै दीन वखानै ।।

पाणी पवन सयोग करि, कीया है उतपाति ।
सुंनि मैं सवद समाइगा, तव कासनि कहिये जाति ।।

तुरकी धरम बहुत हम खोजा, बहु बाजगार करै ए बोधा ॥
गाफिल गरब करै अधिकाई, स्वारथ अरथि बधै ए गाई ॥
जाकौ दूध धाइ करि पीजै, ता माता कौ बध क्यूँ कीजै ॥
लहुरै थकै दुहि पीया खीरो, ताका अहमक भकै सरीरो ॥
बेअकली अकलि न जाँनही, भूले फिरै ए लोइ ॥
दिल दरिया दीदार बिन, भिस्त कहाँ थै होइ ॥
पडित भूले पढि गुन्य वेदा, आप न पावै नाँनाँ भेदा ॥
सध्या तरपन अरु षट करमाँ, लागि रहे इनकै आशरमाँ ॥
गायत्री जुग चारि पढ़ाई, पूछौ जाइ कुमति किनि पाई ॥
सब मे राँम रहै ल्यौ सीचा, इन थै और कहौ को नीचा ॥
अति गुन गरब करै अधिकाई, अधिकै गरबि न होइ भलाई ॥
जाकौ ठाकुर गरब प्रहारी, सो क्यूँ सकई गरब सँहारी ॥
कुल अभिमाँन विचार तजि, खोजौ पद निरबाँन ॥
अकुर बीज नसाइगा, तब मिलै बिदेही थान ॥
खत्री करै खत्रिया धरमो, तिनकूँ होय सवाया करमो ॥
जीवहि मारि जीव प्रतिपारै, देखत जनम आपनौ हारै ॥
पच सुभाव जु मेटै काया, सब तजि करम भजै राँम राया ॥
खत्री सो जु कुटुब सूँ सूझै, पचू मेटि एक कूँ बूझै ॥
जो आवध गुर ग्यान लखावा, गहि करवाल धूप धरि धावा ॥
हेला करै निसाँनै घाऊ, जूझ परै तहाँ मनमथ राऊ ॥
मनमथ मरे न जीवई, जीवण मरण न होइ ॥
सुनि सनेही राँम बिन, गये अपनपौ खोइ ॥
अरु भूले षट दरसन भाई, पाखड भेप रहे लपटाई ॥
जैन बोध अरु साकत सैना, चारवाक चतुरग विहूँना ॥
जैन जीव की सुधि न जानै, पाती तोरि देहुरै आँनै ॥
अरु पिथमी का रोम उपारै, देखत जीव कोटि संहारै ॥
मनमथ करम करै असरारा, कलपत बिंद धसै तिहि द्वारा ॥
ताकी हत्या होइ अदभूता, षट दरसन मैं जैन बिगूता ॥
ग्यान अमर पद बाहिरा, नेड़ा ही तै दूरि ॥
जिनि जान्याँ तिनि निकटि है, राँम रह्या सकल भरपूरि ॥
आपन करता भये कुलाला, बहु बिधि सिष्टि रची दर हाला ॥
बिधनाँ कुंभ कीये द्वै थाँना, प्रतिबिबता माँहि समाँनाँ ॥

बहुत जतन करि बाँनक बाँनाँ, सौं मिलाय जीव तहाँ ठाँना।
जठर अगनि दी की परजाली, ता मैं आप करै प्रतिपाली॥
भीतर थै जब बाहिर आवा, सिव सकती द्वै नाँव धरावा॥
भूलै भरमि परै जिनि कोई, हिंदू तुरक झूठ कुल दोई॥
घर का सुत जे होइ अयाँनाँ, ताके संगि क्यूँ जाइ सयाँनाँ॥
साची बात कहै जे वासूँ, सो फिरि कहै दिवाँनाँ तासूँ॥
गोप भिन्न है एकै दूधा, कासूँ कहिए बाँम्हन सूधा॥
जिनि यहु चित्र बनाइया, सो साचा सतधार॥
कहै कबीर ते जन भले, जे चित्रवत लेहि बिचार॥५॥

(बारहपदी रमैंणी)

पहली मन मे सुमिरौं सोई, ता सम तुलि अवर नही कोई॥
कोई न पूजै बाँसूं प्राँनाँ, आदि अंति वो किनहूँ न जाँनाँ॥
रूप सरूप न आवै बोला, हरू गरू कछू जाइ न तोला॥
भूख न त्रिपा धूप नही छाही, सुख दुख रहित रहै सब माँही॥
अविगत अपरंपार ब्रह्म, ग्याँन रूप सब ठाँम॥
बहु बिचार करि देखिया, कोई न सारिख राँम॥
जो त्रिभुवन पति ओहै ऐसा, ताका रूप कहौं धौ कैसा॥
सेवग जन सेवा कै ताँई, बहुत भाँति करि सेवि गुसाँई॥
तैसी सेवा चाहौं लाई, जा सेवा बिन रह्या न जाई॥
सेव करंताँ जो दुख भाई, सो दुख सुख बरि गिनहु सवाई॥
सेव करंताँ सो सुख पावा, तिन्य सुख दुख दोऊ बिसरावा॥
सेवग सेव भुलानियाँ, पंथ कुपंथ न जान।
सेवक सो सेवा करै, जिहि सेवा भल माँन॥
जिहि जग की तस की तस के ही, आपै आप आथिहै एही॥
कोई न लखई वाका भेऊ, भेऊ होइ तौ पावै भेऊ॥
बावै न दाँहिनै आगै न पीछू, अरध उरध रूप नही कीछू॥
माय न बाप आव नही जावा, नाँ वहु जण्याँ न को वहि जावा॥
वो है तैसा वोही जानै, ओही आहि आहि नहीं आँनै॥
नैंनाँ बैंन अगोचरी श्रवनाँ करनी सार।
बोलन कै सुख कारनै, कहिये सिरजनहार॥
सिरजनहार नाँउ धूँ तेरा, भौसागर तिरिबे कूँ भेरा॥

जे यहु भेरा राँम न करता, तौ आपै आप आवटि जग मरता ॥
राँम गुसाँईं मिहर जु कीन्हाँ, भेरा साजि सत कौं दीन्हाँ ॥
दुख खडणाँ मही मंडणा, भगति मुकुति विश्राँम ।
विधि करि भेरा साजिया, धरचा राँम का नाम ॥
जिनि यह भेरा दिढ करि गहिया, गये पार तिन्हौं सुख लहिया ॥
दुमनाँ ह्वै जिनि चित्त डुलावा, करि छिटके थै थाह न पावा ॥
इक डूवे अरु रहे उवारा, ते जगि जरे न राखणहारा ॥
राखन की कछु जुगति न कीन्ही, राखणहार न पाया चीन्ही ॥
जिनि चीन्हा ते निरमल अंगा, जे अचीन्ह ते भये पतगा ॥
राँम नाँम ल्यौ लाइ करि, चित चेतन ह्वै जागि ।
कहै कबीर ते ऊबरे, जे रहे राम ल्यौं लागि ॥
अरचित अविगत हे निरधारा, जाँण्याँ जाइ न वार न पारा ॥
लोक वेद थै अछै नियारा, छाड़ि रह्यौ सबही ससारा ॥
जसकर गाँउ न ठाँउ न खेंरा, कैसे गुन बरनूं मैं तेरा ॥
नही तहा रूप रेख गुन बाँना, ऐसा साहिब है अकुलाँनाँ ॥
नही सो ज्वान न विरध नही वारा, आपै आप आपनपौ तारा ॥
कहै कबीर विचारि करि, जिन को लावैं भंग ॥
सेवौ तन मन लाइ करि, राम रह्या, सरवग ॥
नही सो दूरि नही सो नियरा, नही सो तात नही सो सियरा ॥
पुरिष न नारि करै नही क्रीरा, घाँम न घाँम न व्यापै पीरा ॥
नदी न नाव धरनि नाही धीरा, नही सो कांच नही सो हीरा ॥
कहै कबीर विचारि करि, तासूं लावो हेत ।
वरन विवरजत ह्वै रह्या, ना सो स्याम न सेत ॥
ना वो वारा व्याह वराता, पीत पितवर स्यॉम न राता ॥
तीरथ व्रत न आवै जाता, मन नही मोनि वचन नही वाता ॥
नाद न विंद गरँथ नही गाथा, पवन न पाँणी संग न साथा ॥
कहै कबीर विचार करि, ताकै हाथि न नाँहि ।
सो साहिब किनि सेवियै, जाके धूप न छाँह ॥
ता साहिब कै लागौ साथा, सुख दुख मेटि रह्यौ अनाथा ॥
ना दसरथ घरि औतरि आवा, नाँ लका का राव सतावा ॥
देवै कूख न औतरि आवा, ना जसवै ले गोद खिलावा ॥
ना वो ग्वालन कै संग फिरिया, गोवरधन ले न कर धरिया ॥

बांवन होय नही वलि छलिया, धरनी वेद लेन उधरिया ।।
गंडक सालिकरॉम न कोला, मछ कछ ह्वै जलहि न डोला ।।
बद्रो वैस्य ध्यॉन नही लावा, परसरॉम ह्वै खत्री न सतावा ।।
द्वारामती सरीर न छाड़ा, जगन्नाथ ले प्यंड न गाड़ा ।।
कहै कबीर विचार करि ये ऊले व्योहार ।
याही थै जे अगम है, सो वरति रह्या संसारि ।।

नाँ तिस सबद व स्वाद न सोहा, नाँ तिहि मात पिता नही मोहा ।।
नाँ तिहि सास ससुर नही सारा, नॉ तिहि रोज न रोवनहारा ।।
नाँ तिहि सूतिग पातिग जातिग, नॉ तिहि माइ न देव कथा पिक ।।
नाँ तिहि ब्रिध वधावा बाजै नाँ तिहि गीत नाद नही साजै ।।
नाँ तिहि जाति पॉत्य कुल लीका, नाँ तिहि छोति पवित्र नही सींचा ।।
कहै कबीर विचारि करि, ओ है पद निरवाँन ।
सति ले मन मैं राखिये, जहाँ न दूजी आँन ।।

नाँ सो आवै ना सो जाई, ताकै वंध पिता नही माई ।।
चार विचार कछु नही वाकै, उनमनि लागि रहौ जे ताकै ।।
को है आदि कवन का कहिये, कवन रहनि वाका ह्वै रहिये ।।
कहै कबीर विचारि करि, जिनि को खोजै दूरि ।
ध्यान धरौ मन सुध करि, रॉम रह्या भरपूरि ।।

नाद विंद रक इक खेला, आपै गुरू आप ही चेला ।।
आपै मन्त्र आपै मंत्रेला, आपै पूजै आप पूजेला ।।
आपै गावै आप वजावै, अपनाँ कीया आप ही पावै ।।
आपै धूप दीप आरती, अपनी आप लगावै जाती ।।
कहै कबीर विचारि करि, झूठा लोही चॉम ।
जो या देही रहित है, सो है रमिता राँम ।।

(चौपदी रमैंणी)

ऊंकार आदि है मूला, राजा परजा एकहि सूला ।।
हम तुम्ह मा हैं एकै लोहू, एकै प्रान जीवन है मोहू ।।
एकही वास रहै दस मासा, सूतग पातग एकै आसा ।।
एकही जननी जन्याँ ससारा, कौन ग्यान थै भये निनारा ।।

ग्यांन न पायौ बावरे, धरी अविद्या मैंड ।
सतगुर मिल्या न मुक्ति फल, तातैं खाई बैंड ॥
बालक ह्वै भग द्वारे आया, भग भुगतान कूं पुरिष कहावा ॥
ग्यांन न सुमिरचौ निरगुण सारा, विष थैं बिरचि न किया बिचारा ॥

साध न मिटी जनम की, मरन तुरांनां आइ ।
मन क्रम बचन न हरि भज्या, अंकुर बीज नसाइ ॥
तिण चरि सुरही उदिक जु पीया, द्वार दूध बछ कूं दीया ॥
बछा चूखत उपजी न दया, बछा बांधि बिछोहा गया ॥
ताका दूध आप दुहि पीया, ग्यान बिचार कछू नहीं कीया ॥
जे कुछ लोगनि सोई किया, माला मंत्र बादि ही लीया ॥
पीया दूध रुध्र ह्वै आया, मुई गाइ तब दोष लगाया ॥
बाकस लै चमरां कूं दीन्हीं, तुचा रंगाइ करौंती कीन्हीं ॥
लै रुकरौंती बैठे संगा, ये देखौ पीछे के रंगा ॥
तिहि रुकरौंती पांणी पीया, यहु कुछ पांडे अचिरज कीया ॥
अचिरज कीया लोक मैं, पीया सुहागल नीर ।
इंद्री स्वारथि सब किया, बंध्या भरम सरीर ॥

एकै पवन एक ही पांणी, करी रसोई न्यारी जांनी ॥
माटी सूं माटी ले पोती, लागी कहौ कहां थूं छोती ॥
धरती लीपि पवित्र कीन्ही, छोति उपाय लोक बिचि दीन्ही ॥
याका हम सूं कहौ बिचारा, क्यूं भव तिरिहौ इहि आचारा ॥
ए पांखंड जीव के भरमां, मांनि अमांनि जीव के करमां ॥
करि आचार जु ब्रह्म सतावा, नांव बिनां संतोष न पावा ॥
सालिगरांम सिला करि पूजा, तुलसी तोडि भया नर दूजा ॥
ठाकुर ले पाटै पौढावा, भोग लगाइ अरु आपै खावा ॥
सांच सील का चौका दीजै, भाव भगति कीजै सेवा कीजै ॥
भाव भगति की सेवा मांनैं, सतगुर प्रकट कहै नहीं छांनैं ॥
अनभै उपजि न मन ठहराई, परकीरति मिलि मन न समाई ॥
जब लग भाव भगति नहीं करिहौ, तब लग भवसागर क्यूं तिरिहौ ॥

भाव भगति बिसवास बिनु, कटै न संसै सूल ।
कहै कबीर हरि भगति बिन, मुकति नहीं रे मूल ॥

परिशिष्ट

अर्थात्

श्रीग्रंथसाहब के दिए हुए पदो में से कबीरदास के
उन पदो का संग्रह जो इस ग्रंथावली
मे नही आए है।

---

(१) साखी

आठ जाम चौसठि घरी तुअ निरखत रहै जीउ ।
नीचे लोइन क्यो करौ सब घट देखौ पीउ ॥ १ ॥
ऊँच भवन कनक कामिनी सिखरि धजा फहराइ ।
ताते भली मधूकरी संत संग गुन गाइ ॥ २ ॥
अंबर घनहरु छाइया बरषि भरे सर ताल ।
चातक ज्यो तरसत रहै तिनको कौन हवाल ॥ ३ ॥
अल्लह की कर बंदगी जिह सिमरत दुख जाइ ।
दिल महि साँई परगटै बुझै बलती लाइ ॥ ४ ॥
अवरह को उपदेस ते मुख मै परिहै रेतु ।
रासि बिरानी राखते खाया घर का खेतु ॥ ५ ॥
कबीर आई मुझहि पहि अनिक करे करि भेसु ।
हम राखे गुरु आपने उन कीनो आदेसु ॥ ६ ॥
आखी केरे माटुके पल पल गई बिहाइ ।
मनु जंजाल न छाड़ई जम दिया दमामा आइ ॥ ७ ॥
आसा करियै राम की अवरै आस निरास ।
नरक परहि ते मानई जो हरिनाम उदास ॥ ८ ॥
कबीर इहु तनु जाइगा सकहु त लेहु बहोरि ।
नागे पाँवहु ते गये जिनके लाख करोरि ॥ ९ ॥
कबीर इहि तनु जाइगा कवनै मारग लाइ ।
कै संगति करि साध की कै हरि के गुन गाइ ॥ १० ॥
एक घड़ी आधी घड़ी आधी हूँ ते आध ।
भगतन सेटी गोसटे जो कीने सो लाभ ॥ ११ ॥
एक मरंते दुइ मुये दोइ मरंतेहि चारि ।
चारि मरतहि छहि मुये चारि पुरुष दुइ नारि ॥ १२ ॥
ऐसा एक आधु जो जीवत मृतक होइ ।
निरभै होइ कै गुन रवै जत पेखौ तत सोइ ॥ १३ ॥
कबीर ऐसा को नहीं इह तन देवै फूकि ।
अधा लोगु न जानई रह्यौ कबीरा कूकि ॥ १४ ॥
ऐसा जंतु इक देखिया जैसी देखी लाख ।
दीसै चंचलु बहु गुना मति हीना नापाक ॥१५॥

कवीर ऐसा वीजु वोइ वारह मास फलंत।
सीतल छाया गहिर फल पखी केल करंत ॥१६॥
ऐसा सतगुर जे मिलै तुट्ठा करे पसाउ।
मुकति दुआरा मोकला सहजे आवौं जाउ ॥१७॥
कवीर ऐसी होइ परी मन को भावतु कीन।
मरने ते क्या डरपना जव हाथ सिधौरा लीन ॥१८॥
कचन के कुडल वने ऊपर लाख जड़ाउ।
दीसहि दाधे कान ज्यो जिन मन नाही नाउ ॥१९॥
कवीर कसौटी राम की झूठा टिका न कोइ।
राम कसौटी सो सहे जो मरि जीवा होइ ॥२०॥
कवीर कस्तूरी भया भवर भये सव दास।
ज्यो ज्यो भगति कवीर की त्यो त्यो राम निवास ॥२१॥
कागद केरी ओवरी मसु के कर्म कपाट।
पाहन वोरी पिरथमी पडित पाड़ी वाट ॥२२॥
काम परे हरि सिमिरिये ऐसा सिमरौ नित्त।
अमरपुरा वासा करहु हरि गया वहोरै वित्त ॥२३॥
काया कजली वन भया मन कुजर मयमंतु।
अक सुज्ञान रतन्न है खेवट विरला संतु ॥२४॥
काया काची कारवी काची केवल धातु।
सावतु रख हित राम तनु नाहि त विनठी वात ॥२५॥
कारन वपुरा क्या करै जौ राम न करै सहाइ।
जिहि जिहि डाली पग धरौं सोई मुरि मुरि जाइ ॥२६॥
कवीर कारन सो भयो जौ कीनो करतार।
तिसु विनु दूसर को नही एकै सिरजनुहार ॥२७॥
कालि करंता अवहि करु अब करता सुइ ताल।
पाछै कछू न होइगा जौ सिर पर आवै काल ॥२८॥
कीचड़ आटा गिरि परचा किछू न आयो हाथ।
पीसत पीसत चाविया सोई निवह्या साथ ॥२९॥
कवीर कूकरु भौकता कुरग पिछै उठि धाइ।
कर्मी सति गुर पाइया जिन हौ लिया छड़ाइ ॥३०॥
कवीर कोठी काठ की दह दिसि लागी आगि।
पडित पडित जल मुवे मूरख उवरे भागि ॥३१॥

कोठे मंडल हेतु करि काहे मरहु सँवारि ।
कारज साढ़े तीन हथ घनी त पौने चारि ।। ३२ ।।
कौडी कौड़ी जोरि कै जोरे लाख करोरि ।
चलती वार न कछु मिल्यो लई लँगोटी छोरि ।। ३३ ।।
खिथा जलि कोयला भई खापर फूटम फूट ।
जोगी वपुड़ा खेलियो आसनि रही विभूति ।। ३४ ।।
खूव खाना खीचरी जामैं अंमृत लोन ।
हेरा रोटी कारने गला कटावै कौन ।। ३५ ।।
गगा तीर जु घर करहि पीवहि निर्मल नीर ।
विनु हरि भगति न मुकति होइ यों कहि रमे कवीर।।३६।।
कवीर राति होवहि कारिया कारे ऊभे जंतु ।
लै गाहे उठि धावते सिजानि मारे भगवतु ।। ३७ ।।
- कवीर गरवु न कीजियै चाम लपेटे हाड ।
हैवर ऊपर छत्र तर ते फुन धरती गाड़ ।। ३८ ।।
कवीर गरवु न कीजियै ऊँचा देखि अवासु ।
आजु कालि भुइ लेटना ऊपरि जामैं घासु ।। ३९ ।।
कवीर गरवु न कीजियै रंकु न हसियै कोइ ।
अजहु सु नाउ समुद्र महि क्या जानै क्या होइ ।। ४० ।।
कवीर गरवु न कीजियै देही देखि सुरंग ।
आजु कालि तजि जाहुगे ज्यो काँचुरी भुअंग ।। ४१ ।।
गहगच परयो कुटंव कै कंठै रहि गयो राम ।
आइ परे धर्म राइ के वीचहि धूमा धाम ।। ४२ ।।
कवीर गागर जल भरी आजु कालि जैहै फूटि ।
गुरु जु न चेतहि आपुनो अधमाझली जाहिगे लूटि ।। ४३ ।।
गुरु लागा तव जानिये मिटै मोह तन ताप ।
हरप सोग दाझै नही तव हरि आपहि आप ।। ४४ ।।
कवीर घाणी पीड़ते सति गुरु लिये छुड़ाइ ।
परा पूरवली भावनी परगति होई आइ ।। ४५ ।।
चकई जौं निसि वीछुरै आइ मिले परभाति ।
जो नर विछुरै राम स्यो ना दिन मिले न राति ।। ४६ ।।
चतुराई नहि अति घनी हरि जपि हिरदै माहि ।
सूरी ऊपरि खेलना गिरै त ठाहरि नाहि ।। ४७ ।।
चरन कमल की मौज को कहि कैसे उनमान ।
कहिवे कों सोभा नही देखा ही परवान ।। ४८ ।।

कबीर चावल कारने तुमको मुहली लाइ।
संग कुसंगी बैसते तब पूछै धर्मराइ॥ ४९॥

चुगै चितारै भी चुगै चुगि चुगि चितारै।
जैसे बच रहि कुंज मन माया ममता रे॥ ५०॥

चोट सहेली सेल की लागत लेइ उसास।
चोट सहारे सबद की तासु गुरू मैं दास॥ ५१॥

जग कागज की कोठरी अंध परे तिस माँहि।
हौ बलिहारी तिन्न की पैसु जू नीकसि जाहि॥ ५२॥

जग बाँध्यो जिह जेवरी तिह मत बँधहु कबीर।
जैहहि आटा लोन ज्यो सोन समान शरीर॥ ५३॥

जग मैं चेत्यो जानि कै जग मैं रह्यो समाइ।
जिनि हरि नाम न चेतियो बादहि जनमे आइ॥ ५४॥

कबीर जहँ जहँ हौ फिरचा कौतक ठाओ ठाँइ।
इक राम सनेही बाहरा ऊजरु मेरे भाँइ॥ ५५॥

कबीर जाको खोजते पायो सोई ठौर।
सोई फिरि के तू भया जाकौ कहता और॥ ५६॥

जाति जुलाहा क्या करै हिरदै बसै गुपाल।
कबीर रमइया कंठ मिलु चूकहि सब जंजाल॥ ५७॥

कबीर जा दिन हौ मुआ पाछै भया अनंद।
मोहि मिल्यो प्रभु आपना संगी भजहि गोविंद॥ ५८॥

जिह दर आवत जातहू हटकै नाही कोइ।
सो दरु कैसे छोड़िये जौ दरु ऐसा होइ॥ ५९॥

जीया जो मारहि जोरु करि कहते हहि जु हलालु।
दफतर दई जब काढिहै होइगा कौन हवालु॥ ६०॥

कबीर जेते पाप किये राखे तलै दुराइ।
परगट भये निदान सब पूछै धर्मराइ॥ ६१॥

जैसी उपजी पेड ते जो तैसी निबहै ओडि।
हीरा किसका बापुरा पुजहि न रतन करोड़ि॥ ६२॥

जो मैं चितवौ ना करै क्या मेरे चितवे होइ।
अपना चितव्या हरि करै जो मारै चित न होइ॥ ६३॥

जोर किया सो जुलुम है लेइ जबाब खुदाइ।
दफतर लेखा नीकसै मार मुहै मुह खाइ॥ ६४॥

जो हम जंत्र बजावते टूटि गई सब तार।
जंत्र बिचारा क्या करै चले बजावनहार। ६५॥

जौं गृह कर हित धर्म करु नाहिं त करु वैराग ।
वैरागी बंधन करै ताकौं वड़ौ अभागु ॥६६॥

जौं तुहि साध पिरम्भ की सीस काटि करि गोइ ।
खेलत खेलत हाल करि जौं किछु होइ त होइ ॥६७॥

जौं तुहि साध पिरम्म की पाके सेती खेलु ।
काची सरसो पेलि कै ना खलि भई न तेलु ॥६८॥

कवीर झंखु न झंखियै तुम्हरौ कह्यौ न होइ ।
कर्म करीम जु करि रहे मेटि न साकै कोइ ॥६९॥

टालै टोलै दिन गया व्याज वढंतो जाइ ।
नाँ हरि भज्या ना खत फट्यो काल पहूँचो आइ ॥७०॥

ठाकुर पूजहि मोल ले मन हठ तीरथ जाहि ।
देखा देखी स्वाँग धरि भूले भटका खाहि ॥७१॥

कवीर डगमग क्या करहि कहा डुलावहि जीउ ।
सव सुख की नाइ को राम नाम रस पीउ ॥७२॥

डूवहिगो रे वापुरे वहु लोगन की कानि ।
परोसी के जो हुआ तू अपने भी जानि ॥७३॥

डूवा था पै उव्वर्यो गुन की लहरि झवक्कि ।
जव देख्यो वड़ा जरजरा तव उतरि पर्यो हौ फरक्कि ॥७४॥

तरवर रूपी रामु है फल रूपी वैरागु ।
छाया रूपी साधु है जिन तजिया वादु विवादु ॥७५॥

कवीर तासौं प्रीति करि जाको ठाकुर राम ।
पंडित राजे भूपती आवहि कौने काम ॥७६॥

तूँ तूँ करता तूँ हुआ मुझ मे रही न हूँ ।
जव आपा पर का मिटि गया जित देखौं तित तूँ ॥७७॥

थूनी पाई थिति भई सति गुरु वंधी धीर ।
कवीर हीरा वनजिया मानसरोवर तीर ॥७८॥

कवीर थोडे जल माछली झीवर मेल्यौ जाल ।
इहटौ घनै न छूटसिहि फिरि करि समुद सम्हालि ॥७९॥

कवीर देखि कै किह कहौं कहें न को पतिआइ ।
हरि जैसा तैसा उही रहौं हरखि गुन गाइ ॥८०॥

देखि देखि जग ढूँढिया कहूँ न पाया ठौर ।
जिन हरि का नाम न चेतिया कहा भुलाने और ॥८१॥

कवीर धरती साध की तरकस वैसहि गाहि ।
धरती भार न व्यापई उनको लाहू लाहि ॥८२॥

कबीर नयनी काठ की क्या दिखलावहि लोइ।
हिरदै राम न चेतही इह नयनी क्या होइ ॥८३॥

जा घर साध न सेवियहि हरि की सेवा नाहि।
ते घर मरहट सारखे भूत वसहि तिन माहि ॥८४॥

ना मोहि छानि न छापरी ना मोहि घर नही गाउँ।
मति हरि पूछे कौन है मेरे जाति न नाँउ ॥८५॥

निर्मल बूँद अकास की लीनी भूमि मिलाइ।
अनिक सियाने पच गये ना निरवारी जाइ ॥८६॥

नृपनारी क्यो निंदियै क्यो हरिचेरी को मान।
ओह माँगु सवारै विषै को ओह सिमरै हरिनाम ॥८७॥

नैन निहारो तुझको स्रवन सुनहु तुव नाउ।
बैन उचारहु तुव नाम जो चरन कमल रिद ठाउ ॥८८॥

परदेसी कै घाघरै चहु दिसि लागी आगि।
खिथा जल कुइला भई तागे आँच न लागि ॥८९॥

परभाते तारे खिसहि त्यो इहु खिसै सरीरु।
पै दुइ अक्खर ना खिसहि त्यो गहि रह्यो कबीरु ॥९०॥

पाटन ते ऊजरु भला राम भगत जिह ठाइ।
राम सनेही वाहरा जमपुर मेरे भाइ ॥९१॥

पापी भगति न पावई हरि पूजा न सुहाइ।
माखी चदन परहरै जहँ विगध तहँ जाइ ॥९२॥

कबीर पारस चंदनै तिन है एक सुगंध।
तिहि मिलि तेउ ऊतम भए लोह काठ निरगंध ॥९३॥

पालि समुद सरवर भरा पी न सकै कोइ नीरु।
भाग वडे ते पाइयो तू भरि भरि पीउ कबीर ॥९४॥

कबीर प्रीति इकस्यो किए आनंद वद्धा जाइ।
भावै लाँवे केस कर भावै घररि मुडाइ ॥९५॥

कबीर फल लागे फलनि पाकन लागै आँव।
जाइ पहूँचै खसम कौ जौ वीचि न खाई काँव ॥९६॥

बाम्हन गुरु है जगत का भगतन का गुरु नाहि।
उरझि उरझि कै पच मुआ चारहु वेदहु माहि ॥९७॥

कबीर बेडा जरजरा फूटे छेक हजार।
हरुये हरुये तिरि गये डूवे जिनि सिर भार ॥९८॥

भली भई जौ भौ परचा दिसा गई सब भूलि।
ओरा गरि पानी भया जाइ मिल्यौ ढलि कूलि ॥९९॥

कबीर भली मधूकरी नाना विधि को नाजु ।
दावा काहू को नहीं बड़ो देस बड़ राजु ॥१००॥

भाँग माछुली सुरापान जो जो प्रानी खाहि ।
तीरथ वरत नेम किये ते सबै रसातल जाँहि ॥१०१॥

भार पराई सिर धरै चलियो चाहै बाट ।
अपने भारहि ना डरै आगै औघट घाट ॥१०२॥

कबीर मन निर्मल भया जैसा गंगा नीर ।
पाछै लागो हरि फिरहि कहत कबीर कबीर ॥१०३॥

कबीर मन पंखी भयो उड़ि उड़ि दह दिसि जाइ ।
जो जैसी संगति मिलै सो तैसौ फल खाइ ॥१०४॥

कबीर मन मूड्या नहीं केस मुडाये काइ ।
जो किछु किया सो मन किया मूडामूड अजाइ ॥१०५॥

मया तजी तौ क्या भया जौ मानु तज्या नही जाइ ।
मान मुनी मुनिवर गले मानु सबै कौ खाइ ॥१०६॥

कबीर महदी करि घालिया आपु पिसाइ पिसाइ ।
तैसेई बात न पूछियै कबहु न लाई पाइ ॥१०७॥

माई मूढ़हू तिहि गुरू जाते भरम न जाइ ।
आप डुबे चहु बेद महि चेले दिये वहाइ ॥१०८॥

माटी के हम पूतरे मानस राख्यो नाउ ।
चारि दिवस के पाहुने बड़ बड़ रूंधहि ठाउ ॥१०९॥

मानस जनम दुर्लभ है होइ न बारै बारि ।
जौ बन फल पाके भुइ गिरहि बहुरि न लागै डारि ॥११०॥

कबीर माया डोलनी पवन झकोलनहारु ।
संतहु माखन खाइया छाछि पियै संसारु ॥१११॥

कबीर माया डोलनी पवन वहै हिवधार ।
जिन बिलोया तिन पाइया अवन बिलोवनहार ॥११२॥

कबीर माया चोरटी मुसि मुसि लावै हाटि ।
एकु कबीरा ना मुसै जिन कीनी बारह बाटि ॥११३॥

मारी मरौ कुसंग की केले निकटि जु बेरि ।
उह झूलै उह चीरिये साकत संगु न हेरि ॥११४॥

मारे बहुत पुकारिया पीर पुकारै और ।
लागी चोट मरम्म की रह्यो कबीरा ठौर ॥११५॥

मुकति दुआरा संकुरा राई दसएँ भाइ ।
मन तौ मैगल होइ रह्यो निकस्यो क्यौं कै जाइ ॥११६॥

मुल्ला मुनारे क्या चढहि साँई न बहरा होइ।
जाँ कारन बाँग देहि दिल ही भीतरि जोइ ॥११७॥
मुहि मरने का चाउ है मरौ तौ हरि के द्वार।
मत हरि पूछै को है परा हमारै बार ॥११८॥
कबीर मेरी जाति कौ सब कोइ हँसनेहारु।
बलिहारी इस जातिकौ जिह जपियो सिरजनहारु ॥ ११९॥
कबीर मेरी बुद्धि को जमु न करै तिमकार।
जिन यह जमुआ सिरजिया सु जपिया परवदिगार ॥१२०॥
कबीर मेरी सिमरनी रसना ऊपरि रामु।
आदि जगादि सगस भगत ताको सख बिश्राम ॥१२१॥
जम का ठेगा बुरा हैं ओहु नहि सहिया जा।
एक जु साधु मोहि मिलो तिन लीया अचल लाइ ॥१२२॥
कबीर यह चेतानी मत सह सारहि जाइ।
पाछै भोग जु भोगवै तिनकी गुड लै खाइ ॥१२३॥
रस को गाढो चूसिये गुन को मरिये रोइ।
अवगुन धारै मानसै भलो न कहिये कोइ ॥१२४॥
कबीर राम न चेतिये जरा पहूँच्यौ आइ।
लागी मंदर द्वारि ते अब क्या काढ्यो जाइ ॥१२५॥
कबीर राम न चेतियो फिरिया लालच माहि।
पाप करता मरि गया औध पुजी खिन माहि ॥१२६॥
कबीर राम न छोड़िये तन धन जाइ त जाउ।
चरन कमल चित बोधिया रामहि नाम समाउ ॥१२७॥
कबीर राम न ध्याइयो मोटी लागी खोरि।
काया हाड़ी काठ की ना ओहु चढै बहोरि ॥१२८॥
राम कहना महि भेदु है तामहि एकु विचारु।
सोइ राम सबै कहहि सोई कौतुकहारु ॥१२९॥
कबीर राम मैं राम कहु कहिबे माहि बिबेक।
एक अनेकै मिलि गया एक समाना एक ॥१३०॥
रामरतन मुख कोथरी पारख आगै भोलि।
कोइ आइ मिलैगो गाहकी लेगी महँगे मोलि ॥१३१॥
लागी प्रीति सुजान स्यों बरजै लोगु अजानु।
तास्यौ टूटी क्यो बनै जाके जीय परानु ॥१३२॥
बाँसु बढ़ाई बूड़िया यो मत डूबहु कोइ।
चंदन कै निकटे बसे बाँसु सुगंध न होइ ॥१३३॥

कबीर विकारह चितवते झूठे करते आस ।
मनोरथ कोइ न पूरियो चाले ऊठि निरास ।। १३४ ।।

बिरहु भुअंगम मन बसै मन्तु न मानै कोइ ।
राम वियोगी ना जियै जियै त बौरा होइ ।।१३५।।

बैदु कहै हौं ही भला दारू मेरै वस्सि ।
इह तौ वस्तु गोपाल की जब भावै ले खस्सि ।।१३६।।

वैष्णव की कूकरि भली साकत की बुरी माइ ।
ओह सुनहि हर नाम जस उह पाप बिसाहन जाइ।।१३७।।

वैष्णव हुआ त क्या भया माला मेली चारि ।
बाहर कचनवा रहा भीतरि भरी भंगारि ।।१३८।।

कबीर ससा दूरि करु कागह हेरु विहाउ ।
बावन अक्खर सोधि कै हरि चरनो चित लाउ ।।१३९।।

सगति करियै साध की अंति करै निर्वाहु ।
साकत संगु न कीजिये जाते होइ विनाहु ।।१४०।।

कबीर संगत साध की दिन दिन दूना हेतु ।
साकत कारी काँवरी धोए होइ न सेतु ।।१४१।।
संत की गैल न छांड़ियै मारगि लागा जाउ ।
पेखत ही पुन्नीत होइ भेटत जपियै नाउ ।।१४२।।

संतन की झुरिया भली भठी कुसत्ती गाँउ ।
आगि लगै तिह धौलहरि जिह नाही हरि को नाँउ ।।१४३।।

सत मुये क्या रोइयै जो अपने गृह जाय ।
रोवहु साकत बापुरो जु हाटै हाट विकाय ।।१४४।।

कबीर सति गुरु सूरमे बाह्या बान जु एकु ।
लागत की भुइ गिरि परचा परा कलेजे छेकु ।।१४५।।

कबीर सब जग हौं फिरचो माँदलु कंध चढ़ाइ ।
कोई काहू को नही सब देखी ठोक बजाइ ।।१४६।।

कबीर सब ते हम बुरे हम तजि भलो सब कोइ ।
जिन ऐसा करि बूझिया मीतु हमारा सोइ ।।१४७।।

कबीर समुंद न छोडियै जौ अति खारो होइ ।
पोखरि पोखरि ढूंढते भलो न कहियै कोइ ।।१४८।।
कबीर सेवा कौ दुइ भले एक सतु इकु रामु ।
राम जु दाता मुकति को संतु जपावै नामु ।।१४९।।

साँचा सति गुरु मैं मिल्या सबद जु बाह्या एकु ।
लागत ही भुइ मिलि गया परचा कलेजे छेकु ।।१५०।।

कवीर साकत ऐसा है जैसी लसन की खानि।
कोने बैठे खाइयै परगट होइ निदान ॥१५१॥

साकत सगु न कीजियै दूरहि जइये भागि।
वासन कारा परसियै तउ कछु लागै दागु ॥१५२॥

साँचा सतिगुरु क्या करै जो सिक्खा माही चूक।
अंधे एक न लागई ज्यो वासु वजाइयै फूँकि ॥१५३॥

साधू की सगति रही जौ की भूसी खाउ।
होनहार सो होइहै साकत सगि न जाउ ॥१५४॥

साधु को मिलने जाइये साथु न लीजै कोइ।
पाछे पाउँ न दीजियौ आगै होइ सो होइ ॥१५५॥

साधू संग परापति लिखिया होइ लिलाट।
मुक्ति पदारथ पाइयै ठाकन अवघट घाट ॥१५६॥

सारी सिरजनहार की जाने नाही कोइ।
कै जानै आपन धनी कै दासु दिवानी होइ ॥१५७॥

सिखि साखा वहुते किये केसी किधो न मीतु।
चले थे हरि मिलन को वीचै अटको चीतु ॥१५८॥

सुपने हू वरडाइकै जिह मुख निकसै राम।
ताके पा की पानही मेरे तन को चाम ॥१५९॥

सुरग नरक ते मैं रह्यो सति गुरु के परसादि।
चरन कमल की मौज महि रहौ अति अरु आदि ॥१६०॥

कवीर सूख न एह जुग करहि जु वहुतै मीत।
जो चित राखहि एक स्यो ते सुख पावहि नीत ॥१६१॥

कवीर सूरज चाँद कै उदय भई सव देह।
गुरु गोविंद के विन मिले पलटि भई सव खेह ॥१६२॥

कवीर सोई कुल भलो जा कुल हरि को दासु।
जिह कुल दासु न ऊपजे सो कुल ढाकु पलासु ॥१६३॥

कवीर सोई मारिये जिहि मूये सुख होइ।
भलो भलो सव कोइ कहै वुरो न मानै कोइ ॥१६४॥

कवीर सोइ मुख धन्नि है जा मुख कहिये राम।
देही किसकी वापुरी पवित्र होइगो ग्राम ॥१६५॥

हस उडयो तनु गाडिगो सोझाई सैनाह।
अजहूँ जीउ न छाडई रकाँई नैनाह ॥१६६॥

हज कावे हौं जाइया आगे मिल्या खुदाइ।
साँई मुझ स्यो लर परया तुझै किन फुरमाई गाइ ॥१६७॥

हरदी पीरं तनु हरे चून चिन्ह न रहाइ ।
बलिहारी इहि प्रीति कौ जिह जाति बरन कुल जाइ ॥१६८॥

हरि का सिमरन छाड़िकै पाल्यो बहुत कुटुंबु ।
धंधा करता रहि गया भाई रहा न बंधु ॥१६९॥

हरि का सिमरन छाड़िकै राति जगावन जाइ ।
सर्पनि होइकै औतरे जाये अपने खाइ ॥१७०॥

हरि का सिमरन छाड़िकै अहोई राखे नारि ।
गदही होइ कै औतरै भारु सहै मन चारि ॥१७१॥

हरि का सिमरन जो करै सो मुखिया संसारि ।
इत उत कतहु न डोलई जस राखै सिरजनहारि ॥१७२॥

हाड जरे ज्यों लाकरी केस जरे ज्यों घासु ।
सब जग जरता देखिकै भयो कबीर उदासु ॥१७३॥

है गै बाहन सघन धन छत्रपती की नारि ।
तासु पटतर ना पुजै हरि जन की पनहारि ॥१७४॥

है गै बाहन सघन धन लाख धजा फहराइ ।
या सुख तै भिक्खा भली जौ हरि सिमरत दिन जाइ ॥१७५॥

जहाँ ज्ञान तहँ धर्म है जहाँ झूठ तहँ पाप ।
जहाँ लोभ तहँ काल है जहाँ खिमा तहँ आप ॥१७६॥

कबीरा तुही कबीरु तू तेरो नाउ कबीर ।
राम रतन तब पाइयै जो पहिले तजहि सरीर ॥१७७॥

कबीरा धूर सकेल कै पुरिया बाँधी देह ।
दिवस चारि को पेखना अंत खेह की खेह ॥१७८॥

कबीरा हमरा कोइ नही हम किसहू के नाहि ।
जिन यहु रचन रचाइया तितहीं माँहि समाहि ॥१७९॥

कोई लरका बेचई लरकी बेचै कोइ ।
साँझा करे कबीर स्यों हरि सँग बनज करेइ ॥१८०॥

जहँ अनभौ तहँ भै नही जहँ भौ तहँ हरि नाहि ।
कह्यौ कबीर बिचारिकै संत सुनहु मन माँहि ॥१८१॥

जोरी किये जुलुम है कहता नाउ हलाल ।
दफतर लेखा माडिये तब होइगो कौन हवाल ॥१८२॥

ढूँढत डोले अंध गति अरु चीनत नाहीं संत ।
कहि नामा क्यों पाइयै बिन भगतई भगवंत ॥१८३॥

नीचे लोइन कर रहौं जे साजन घट माँहि ।
सब रस खेला पीव सों किसी लखावों नाहि ॥१८४॥

बूडा बस कबीर का उपज्यो पूत कमाल ।
हरि का सिमरन छाड़िकै घर ले आया माल ॥१८५॥
मारग मोती बीथरे अंधा निकस्यो आइ ।
जोति बिना जगदीस की जगत उलंघे जाइ ॥१८६॥
राम पदारथ पाइ कै कबिरा गाँठि न खोल ।
नही पहन नही पारखू नही गाहक नहीं मोल ॥१८७॥
सेख सबूरी बाहरा क्या हज काबै जाइ ॥
जाका दिल साबत नही ताको कहाँ खुदाइ ॥१८८॥
सुनु सखी पिउ महि जिउ बसै जिउ महि बसै कि पीउ ।
जीव पीउ बूझी नही घट महि जीउ कि पीउ ॥१८९॥
हरि है खाँडू रे तुमहि बिखरी हाथी चुनी न जाइ ।
कहि कबीर गुरु भली बुझाई चीटी होइ के खाइ ॥१९०॥
गगन दमामा बाजिया पर्यो निसानै घाउ ।
खेत जु मार्यो सूरमा जब जूझन को दाउ ॥१९१॥
सूरा सो पहिचानियै जु लरै दीन के हेत ।
पुरजा पुरजा कटि मरै कबहुँ न छाडै खेत ॥१९२॥

(२) पदावली

अंतरि मैल जे तीरथ न्हावै तिसु बैकुंठ न जाना ।
लोक पतीणे कछू न होवै नाही राम अयाना ।
पूजहु राम एकु ही देवा साचा नावणु गुरु की सेवा ।
जल कै मज्जन जे गति होवै नितनित मेंडुक न्हावहि ॥
जैसे मेंडुक तैसे ओइ नर फिरि फिरि जोनी आवहि ।
मनहु कठोर मरै बानारस नरक न बाँच्या जाई ॥
हरि का संत मरै हाँडवैत सगली सैन तराई ॥
दिन सुरैनि वेद नही सासतर तहाँ बसै निरकारा ।
कहि कबीर नर तिसहि धियावहु बावरिया ससारा ।१॥

अधकार सुख कबहि न सोइहै । राजा रंक दोऊ मिलि रोइहै ॥
जो पै रसना राम न कहिबो । उपजत बिनसत रोवत रहिबो ॥
जस देखिय तरवर की छाया । प्रान गये कछु बाकी माया ॥
जस जती महि जीव समाना । मुये मर्म को काकर जाना ॥
हंसा सरवर काल सरीर । राम रसाइन पीउ रे कबीर ॥२॥

अग्नि न दहै पवन नही गमनै तस्कर नेरि न आवै।
राम नाम धन करि संचौनी सो धन कतही न जावै ॥
हमारा धन माधव गोविंद धरनधर इहै सार धन कहियै।
जो सुख प्रभु गोविंद की सेवा सो सुख राज न लहियै ॥
इसु धन कारण सिव सनकादिक खोजत भये उदासी।
मन मकुंद जिह्वा नारायण परै न जम की फाँसी ॥
निज धन ज्ञान भगति गुरु दीनी तासु सुमति मन लागी।
जलत अंग थभि मन धावत भरम बंधन भौ भागी ॥
कहै कबीर मदन के माते हिरदै देखु बिचारी।
तुम घर लाख कोटि अस्व हस्ती हम घर एक मुरारी ॥ ३ ॥
अचरज एक सुनहु रे पंडिया अब किछु कहन न जाई।
सुर नर गन गंध्रब जिन मोहे त्रिभुवन मेखलि लाई ॥
राजा राम अनहद किंगुरी बाजै जाकी दृष्टि नाद लव लागै।
भाठी गगन सिंङिया अरु चुङिया कनक कलस इक पाया ॥
तिस महि धार चुए अति निर्मल रस महि रस न चुआया।
एक जु बात अनूप बनी है पवन पियाला साजिया ॥
तीन भवन महि एको जोगी कहहु कवन है राजा।
ऐसे ज्ञान प्रगट्या पुरुषोत्तम कहु कबीर रँगराता ॥
और दुनी सब भरमि भुलानी मन राम रसाइन माता ॥ ५ ॥
अनभौ कि नैन देखिया बैरागी अड़े।
बिनु भय अनभौ होइ वणाँ हवै।
सहुह दूरि देखै ताभौ पावै बैरागी अड़े।
हुक्मै बूझै न निर्भऊ होइ न वणा हवै ॥
हरि पाखंड न कीजई बैरागी अड़े।
पाखंडि रता सब लोक वणाँ हवै।
तृष्णा पास न छोडई बैरागी अड़े।
ममता जाल्या पिंड वणाँ हवै ॥
चिंता जाल तन जालिया बैरागी अड़े।
जे मन मिरतक होइ वणा हवै ॥
सत गुरु बिन बैराग न होवई बैरागी अड़े।
जे लोचै सब कोई वणाँ हवै।
कर्म होवै सतगुरु मिलै बैरागी अड़े।
सहजे पावै सोइ वणा हवै ॥

कहु कबीर इक बैरागी ग्रडे ।
मौको भव जल पारि उतारि बडा हवै ।। ५ ।।

अब मौको भये राजा राम सहाई । जनम मरन कटि परम गति पाई ।।
साधू सगति दियो रलाइ । पच्च दूत ते लियो छड़ाइ ।।
अमृत नाम जपौं जप रसना । अमोल दास करि लीनो अपना ।।
सति गुरु कीनो पर उपकारु । काढि लीन सागर ससारु ।।
चरन कमल स्यो लागी प्रीति । गोविंद बसै निता नित चीति ।।
माया तपति बुझ्या अग्यारु । मन सतोप नाम आधारु ।।
जल थल पूरि रहे प्रभु स्वामी । जत पेखौं तत अतर्यामी ।।
अपनी भगति आपही दृढ़ाई । पूरब लिखतु गिल्या मेरे भाई ।।
जिसु कृपा करे तिसु पूरन साज । कबीर को स्वामी गरीब निवाज ।।६।।

अब मोहि जलत राम जल पाइया । राम उदक तन जलत बुझाइया ।।
मन मारन कारन बन जाइयै । सो जल बिन भगवत न पाइयै ।।
जेहि पावक सुर नर है जारे । राम उदक जन जलत उबारे ।।
भवसागर सुखसागर माही । पीव रहे जल निखूटत नाही ।।
कहि कबीर भजु सारिगपानी । राम उदक मेरी तिषा बुझानी ।।७।।

अमल सिरानो लेखा देना । आये कठिन दूत जम लेना ।।
क्या तै खटिया कहा गवाया । चलहु सिताब दिवान बुलाया ।।
चलु दरहाल दिवान बुलाया । हरि फुर्मान दरगह का आया ।।
करी अरदास गाव किछु बाकी । लेउ निवेर आज की राती ।।
किछु भी खर्च तुम्हारा सारौ । सुबह निवाज सराइ गुजारौ ।।
साधु सग जाकौ हरि रँग लागा । धन धन सो जन पुरुष सभागा ।।
ईत ऊत जन सदा सुहेले । जन्म पदारथ जीति अमोले ।।
जागत सोया जन्म गँवाया । माल धन जोरचा भया पराया ।।
कहु कबीर तेई नर भूले । खसम बिसारि माटी सग रूले ।।८।।

अल्लह एकु मसीति बसतु है अवर मुलकु किसु केरा ।
हिंदू मूरति नाम निवासो दुहमति तत्तु न हेरा ।।
अल्लह राम जीउ तेरी नाई । तू करीमह राम तिसाई ।।
दक्खन देस हरी का बासा पच्छिम अलह मुकामा ।।
दिल महि खोजि दिलै दिल खोजहु एही ठौर मुकामा ।
ब्रह्म न ज्ञान करहि चौबीसा काजी महरम जाना ।।
ग्यारह मास पास कै राखे एकै माहि निधाना ।
कहा उडीसे मज्जन कियाँ क्या मसीत सिर नायें ।।

दिल महि कपट निवाज गुजारै क्या हज कावै जायें ।
एते औरत मरदा साजै ये सब रूप तुमारे ॥
कबीर पूंगरा राम अलह का सब गुरु पीर हमारे ।
कहत कबीर सुनहु नर नरवै परहु एक की सरना ॥
केवल नाम जपहु रे प्रानी तबही निहचै तरना ॥ ९ ॥

अवतरि आइ कहा तुम कीना । राम को नाम न कबहूँ लीना ॥
राम न जपहु कवन भनि लागे । मरि जैवे कौ क्या करहु अभागे ॥
दुख सुख करिकै कुटव जिवाया । मरती बार इकसर दुख पाया ॥
कंठ गहन तब कर न पुकारा । कहि कबीर आगे ते न सभारा ॥१०॥
अबर मुये क्या सोग करीजै । तौ कीजै जो आपन जीजै ॥
मैं न मरौ मरिबो ससारा । अब मोहि मिल्यो है जियावनहारा ॥
या देही परमल महकदा । ता सुख बिसरे परमानदा ॥
कुअटा एकु पच पनिहारी । टूटी लाजु भरै मनिहारी ॥
कहु कबीर इकु बुद्धि विचारी । ना ऊ कुअटा ना पनिहारी ॥११॥

अव्वल अल्लह नूर उपाया कुदरत के सब बदे ॥
एक नूर ते सब जग उपज्या कौन भले को मदे ॥
लोगा भरमि न भूलहु भाई ।
खालिकु खलक खलक महि खालिकु पूर रह्यो सब ठाईं ।
माटी एक अनेक भाँति करि साजी साजनहारे ॥
ना कछु पोच माटी के भाँडे ना कछु पोच कुँभारे ॥
सब महि सच्चा एको सोई तिसका किया सब किछु होई ॥
हुकम पछानै सु एको जानैं बदा कहियै सोई ॥
अल्लह अलख न जाई लखिया गुरु गुड दीना मीठा ॥
कहि कबीर मेरी सका नासी सर्व निरजन डीठा ॥१२॥

अस्थावर जगम कीट पतंगा । अनेक जनम कीये बहुरगा ॥
ऐसे घर हम बहुत बसाये । जब हम राम गर्भ होइ आये ॥
जोगी जपी तपी ब्रह्मचारी । कबहु राजा छत्रपति कबहु भेखारी ॥
साकत मरहि संत जन जीवहि । राम रसायन रसना पीवहि ॥
कहु कबीर प्रभु किरपा कीजै । हारि परे अब पूरा दीजै ॥१३॥

अहि निसि नाम एक जौ जागै । केतक सिद्ध भये लव लागै ॥
साधक सिद्ध सकल मुनि हारे । एकै नाम कलपतरु तारे ॥
जो हरि हरे सु होहि न आना । कहि कबीर राम नाम पछाना ॥१४॥

आकास गगन पाताल गगन है चहु दिसि गगन रहाइले ।
आनँद मूल सदा पुरुषोत्तम घट विनसै गगन न जाइलै ।
मोहि वैराग भयो इह जीउ आइ कहाँ गयो ।।
पच तत्व मिलि काया कीनो तत्व कहा ते कीन रे ।।
कर्मवद्ध तुम जीउ कहत हौ कर्महि किन जीउ दीन रे ।।
हरि महि तनु है तनु महि हरि है सर्व निरतर सोइ रे ।।
कहि कवीर राम नाम न छोडौ सहजे होइ सु होइ रे ।।१५।।

अगम दुर्गम गढ रचियौ वास । जामहि जोति करै परगास ।।
विजली चमकै होइ अनद । जिह पोडे प्रभु वाल गुविद ।।
इहु जीउ राम नाम लव लागै । जरा मरन छूटै भ्रम भागै ।।
अवरन वरन स्यो मन ही प्रीति । हौ महि गायत गावहि गीति ।।
अनहद सवद होत झनकार । जिह पौडे प्रभु श्रीगोपाल ।।
खडल मडल मडल मडा । त्रिय अस्थान तीनि तिय खडा ।।
अगम अगोचर रह्या अभ्यंत । पार न पावै को धरनीधर मत ।।
कदली पुहुप धूप परगास । रज पकज महि लियो निवास ।।
द्वादस दल अभ्यतर मत । जहँ पौडै श्रीकवलाकत ।।
अरध उरध मुख लागो कास । सुन्न मँडल महि करि परगासु ।।
ऊहाँ सूरज नाही चद । आदि निरजन करै अनद ।।
सो ब्रह्मडि पिड सो जानु । मानसरोवर करि स्नानु ।।
सोहं सो जाकहुँ है जाप । जाको लिपत न होइ पुन्न अरु पाप ।।
अवरन वरन घाम नहि छाम । अवरन पाइयै गुरु की साम ।।
टारी न टरै आवै न जाइ । सुन्न सहज महि रह्या समाइ ।।
मन मद्धे जाने जे कोइ । जो वोलै सो आपै होइ ।।
जोति मन्त्रि मनि अस्थिर करै । कहि कवीर सो प्रानी तरै ।।१६।।

आपे पावक आपे पवना । जारै खसम त राखै कवना ।।
राम जपतु तनु जरि किन जाइ । राम नाम चित रह्या समाइ ।।
काको जरै काहि होइ हानि । नटवर खेलै सारिंगपानि ।।
कहु कवीर अक्खर दुइ भाखि । होइगा खसम त लेइगा राखि ।।१७।।

आस पास घन तुरसी का विरवा माँझ वनारस गाऊँ रे ।।
वाका सरूप देखि मोही ग्वारिन मोकौ छाडि न आउ न जाहु रे ।।
तोहि चरन मन लागो । सारिंगधर सो मिलै जो वड भागी ।।
वृंदावन मन हरन मनोहर कृष्ण चरावत गाऊँ रे ।।
जाका ठाकुर तुही सारिंगधर मोहि कवीरा नाऊँ रे ।।१८।।

इंद्रलोक सिवलोकै जैबो । ओछे तप कर बाहरि ऐबो ॥
क्या मांगो किछु थिरु नाही । राम नाम राखु मन माही ॥
सोभा राज विभव बडि पाई । अंत न काहू संग सहाई ॥
पुत्र कलत्र लक्ष्मी माया । इनते कहु कौने सुख पाया ॥
कहत कबीर अवर नहि कामा । हमरे मन धन राम को नामा ॥१९॥
इक तु पतरि भरि उरकट कुरकट इक तु पतरि भरि पानी ॥
आस पास पंच जोगिया बैठे बीच नकटि देरानी ॥
नकटी को ठनगन बाडाडूं किनहि बिबेकी काटी तूं ॥
सकल माहि नकटी का वासा सकल मारिऔ हेरी ॥
सकलिया की हौ बहिन भानजी जिनहि बरी तिसु चेरी ॥
हमरो भर्ता बडो बिबेकी आपे संत कहावै ॥
ओहु हमारे माथे काइमु और हमरै निकट न आवै ॥
नाकहु काटी कानहु काटी काटि कूटि कै डारी ॥
कहु कबीर संतन की बैरनि तीनि लोक की प्यारी ॥२०॥
इन माया जगदीस गुसाईं तुमरे चरन बिसारे ॥
किंचत प्रीति न उपजै जन को जन कहा करे बेचारे ॥
धृग तन धृग धन धृग इह माया धृग धृग मति बुधि फन्नी ॥
इस माया कौ दृढ करि राखहु बांधे आप वचन्नी ॥
क्या खेती क्या लेवा देवा परपंच झूठ गुमाना ॥
कहि कबीर ते अंत बिगूते आया काल निदाना ॥२१॥
इसु तन मन मध्ये मदन चोर । जिन ज्ञानरतन हरि लीन मोर ॥
मै अनाथ प्रभु कहौ काहि । को कौन बिगूतो मै को आहि ॥
माधव दारुन दुख सह्यो न जाइ । मेरो चपल बुद्धि स्यो कहा बसाइ ॥
सनक सनंदन सिव सुकादि । नाभि कमल जाने ब्रह्मादि ॥
कबिजन जोगी जटाधारि । सब आपन औसर चले सारि ॥
तू अथाह मोहि थाह नाहिं । प्रभु दीनानाथ दुख कहौ काहि ॥
मेरो जनम मरन दुख आथि धीर । सुखसागर गुन रव कबीर ॥२२॥
इहु धन मेरो हरि को नाउ । गाँठि न बांधौ बेचि न खाउ ॥
नाँउ मेरे खेती नाँउ मेरी बारी । भगति करौ जन सरन तुम्हारी ॥
नाँउ मेरे माया नाँउ मेरे पूंजी । तुमहि छोडि जानौ नहि दूजी ॥
नाँउ मेरे बंधिप नाँउ मेरे भाई । नाँउ मेरे संगी अंति होई सहाई ॥
माया महि जिसु रखै उदास । कहि कबीर हौ ताको दास ॥२३॥

उदक समुंद सलल की साख्या नदी तरंग समावहिंगे ॥
सुन्नहि सुन्न मिल्या समदर्सी पवन रूप होइ जावहिंगे ॥
बहुरि हम काहि आवहिंगे ।
आवन जाना हुक्म तिसै का हुक्मै बूझि समावहिंगे ॥
जब चूकै पंच धातु की रचना ऐसे भर्म चुकावहिंगे ॥
दर्सन छोड भए समदर्सी एको नाम धियावहिंगे ॥
जित हम लाए तितही लागे तैसे करम कमावहिंगे ॥
हरि जी कृपा करै जो अपनी तौ गुरु के सबद कमावहिंगे ॥
जीवत मरहु मरहु फुनि जीवहु पुनरपि जन्म न होई ॥
कहु कबीर जो नाम समाने सुन्न रह्या लव सोई ॥ २४ ॥

उपजै निपजै निपजिस भाई । नयनहु देखत इह जग जाई ॥
लाज न मरहु कहौ घर मेरा । अंत की बार नही कछु तेरा ॥
अनेक जतन कर काया पाली । मरती बार अगनि संग जाली ॥
चोवा चंदन मर्दन अंगा । सो तनु जले काठ के संगा ॥
कहु कबीर सुनहु रे गुनिया । बिनसैगो रूप देखै सब दुनिया ॥ २५ ॥

उलटत पवन चक्र षट भेदे सुरति सुन्न अनरागी ॥
आवै न जाइ मरै न जीवै तासु खोज बैरागी ॥
मेरो मन मनही उलटि समाना ।
गुरु परसादि अकल भई अवरै नातरु था बेगाना ॥
निवरै दूरि दूरि फनि निवरै जिन जैसा करि मान्या ।
अलउती का जैसे भया बरेंडा जिन पिया तिन जान्या ॥
तेरी निर्गुण कथा काहि स्यो कहिये ऐसा कोई विवेकी ॥
कहु कबीर निज दिया पलीता तिनतै सीझल देखी ॥ २६ ॥

उलटि जात कुल दोऊ बिसारी । सुन्न सहजि महि बुनत हमारी ॥
हमरा झगरा रहा न कोऊ । पंडित मुल्ला छाडै दोऊ ॥
बुनि बुनि आप आप पहिरावौ । जह नही आप तहां ह्वै गावौं ॥
पंडित मुल्ला जो लिखि दिया । छाडि चले हम कछू न लिया ॥
रिदै खलासु निरिखि ले मीरा । आपु खोजि खोजि मिलै कबीरा ॥२७॥

उस्तुति निंदा दोऊ विवरजित तजहू मानु अभिमान ॥
लोहा कंचन सम करि जानहि ते मूरति भगवान ॥
तेरा जन एक आध कोई ।
काम क्रोध लोभ मोह विवरजित हरिपद चीन्है सोई ॥
रजगुण तमगुण सतगुण कहियै इह तेरी सब माया ॥
चौथे पद को जो नर चीन्है तिनंहि परम पद पाया ।

तीरथ वरत नेम सुचि संजम सदा रहै निहकामा ॥
त्रिस्ना अरु माया भ्रम चूका चितवत आतमरामा ॥
जिह मदिर दीपक परिगास्या अधकार तह नासा ॥
निरभौ पूरि रहे भ्रम भागा कहि कवीर जनदासा ॥२८॥
ऋद्धि सिद्ध जाकौ फुरी तव काहु स्यो क्या काज ॥
तेरे कहिने कौ गति क्या कहौं मैं वोलत ही वड लाज ॥
राम जह पाया राम ते भवहि न वारे वार ॥
झूठा जग डहकै घना दिन दुइ वर्तन की आज ॥
राम उदक जिह जन पिया तिह वहुरि न भई पियासा ॥
गुरु प्रसादि जिहि वूझिया आसा ते भया निरासा ॥
सव सत्रुन दरि आइया जौ आतम भया उदास ॥
राम नाम रस चाखिया हरि नामा हरि तारि ॥
कहु कवीर कचन भया भ्रम गया समुद्रै पारि ॥२६॥
एक कोट पचसिक दागा पचे मॉगहि हाला ।
जिमि नाही मैं किसी की वोई ऐसा देव दुखाला ॥
हरि के लोगा मोकौ नीति डसै पटवारी ।
ऊपर-भूजा करि मैं गुरुपहि पुकारा तिन ही लिया उवारी ॥
नव डाडी दस मुसफ धावहि रइयति वसन न देही ।
डोरी पूरी मापहि नाही वहु विप्टाला लेही ॥
वहतरि घर इक पुरुष समाया उन दीया नाम लिखाई ।
धर्मराय का दफ्तर सोध्या वाकी रिज मन काई ॥
संता कौ मति कोई निदहु सत राम है एकौ ।
कहु कवीर मैं सो गुरु पाया जाका नाउ विवेकौ ॥३०॥
एक जोति एका मिली किवा होइ न होइ ।
जितु घटना मन उपजै फूटि मरै जन सोइ ॥
सावल सुदर रामय्या मेरा मन लागा तोहि ।
साधु मिलै सिधि पाइयै किएहु योग कि भोग ॥
दुहु मिलि कारज ऊपजै राम नाम सयोग ।
लोग जानै इहु गीता है इहु तौ व्रह्म विचार ॥
ज्यो कासी उपदेस होइ मानस मरती वार ।
कोई गावै कोई सुनै हरि नामा चितु लाइ ।
कहु कवीर ससा नही अत परम गति पाइ ॥३१॥

एक स्वान के घर गावण, जननी जानत सुत बडा होत है।
इतना कुन जानै जि दिन दिन अवध घटत है।।
मोर मोर करि अधिक लाहु धरि पेखत ही जमराउ हँसै।
ऐसा तै जगु भरम भुलाया। कैसे बूझै जब मोह्या है माया।।
कहत कबीर छोडि विषया रस इतु सगति निहचौ मरना।
रमय्या जपहु प्राणी अनत जीवण बाणी इन विधि भवसागर तरना।
जाँति सुभावै ता लागे भाउ। मर्म भुलावा विचहु जाइ।
उपजै सहज ज्ञान मति जागै। गुरु प्रसाद अंतर लव लागै।।
इतु सगति नाही मरणा। हुकुम पछाणि ता खसमै मिलणा।।३२।।
ऐसो अचरज देख्यौ कबीर। दधि कै भोलै बिरोलै नीर।।
हरी अगूरी गदहा चरै। नित उठि हासै हीगै मरै।।
माता भैसा अम्मुहा जाइ। कुदि कुदि चरै रसातल पाइ।।
कहु कबीर परगट भई खेड। ल ले कौ चूघे नित भेड।।
राम रमत मति परगटि आई। कहु कबीर गुरु सोझी पाई।।३३।।

ऐसो इहु ससार पेखना रहन न कोऊ पैहै रे।
सूधे सूधे रेंगि चलहु तुम नतर कुधका दिवैहै रे।।
वारे बूढे तरुने भैया सबहु जम लै जैहै रे।
मानस बपुरा मूसा कीनौ मौच विलैया खैहै रे।।
धनवता अरु निर्धन मनई ताकी कछू न कानी रे।
राजा परजा सम करि मारै ऐसो काल बढानी रे।।
हरि के सेवक जो हरि भाये तिनकी कथा निरारी रे।
आवहि न जाहि न कबहूँ मरतो पारब्रह्म सगारी रे।।
पुत्र कलत्र लच्छमी माया इहै तजहु जिय जानी रे।
कहत कबीर सुनहु रे सतहु मिलिहै सारगपानी रे।।३४।।

ओई जू दीसहि अवरि तारे। किन ओइ चीते चीतन हारे।
कहु रे पडित अवर कास्यो लागा। बूझै बूझनहार सभागा।।
सूरज चद्र करहि उजियारा। सब महि पसरचा ब्रह्म पसारचा।।
कहु कबीर जानैगा सोई। हिरदै राम मुखि रामै होई।।३५।।
कचन स्यो पाइयै नही तोलि। मन दे राम लिया है मोलि।।
अब मोहि राम अपना करि जान्या। सहज सुभाइ मेरा मन मान्या।।
ब्रह्मै कथि कथि अत न पाया। राम भगति वैठे घर आया।।
कहु कबीर चचल मति त्यागी। केवल राम भक्ति निज भागी।।३६।।

कत नही ठौर मूल कत लावौ । खोजत तनु महि ठौर न पावौ ॥
लागी होइ सो जानै पीर । राम भगत अनियाले तीर ॥
एक भाइ देखौ सब नारी । क्या जाना सह कौन पियारी ।
कहु कबीर जाके मस्तक भाग । सब परिहरि ताको मिले सुहाग ॥३७॥

करवतु भला न करवट तेरी । लागु गले सुन बिनती मेरी ॥
हौ वारी मुख फेरि पियारे । करवट दे मोकौ काहे कौ मारे ॥
जौ तन चीरहि अग न मोरौ । पिड परै तौ प्रीति न तोरौ ॥
हम तुम बीच भयो नही कोई । तुमहि मुकत नारि हम सोई ॥
कहत कबीर सुनहु रे होई । अब तुमरी परतीति न होई ॥३८॥

कहा स्वान कौ सिमृति सुनाये । कहा साकत पहि हरि गुन गाये ॥
राम राम राम रमे रमि रहियै । साकत स्यो भूलि नहि कहियै ॥
कौआ कहा कपूर चराये । कह बिसियर को दूध पिआये ॥
सत संगति मिलि बिवेक बुधि होई । पारस परस लोहा कंचन सोई ॥
साकत स्वान सब करै कहाया । जो धुरि लिख्या सु करम कमाया ॥
अमिरत लै लै नीम सिचाई । कहत कबीर वाको सहज न जाई ॥३९॥

काम क्रोध तृष्णा के लीने गति नहि एकै जानी ॥
फूटी आँखै कछू सूझै बूड़ि मुये बिनु पानी ॥
चलत कत टेढे टेढे टेढे ।
अस्थि चर्म बिष्टा के मूँदे दुरगधहि के बेढे ॥
राम न जपहु कौन भ्रम भूले तुमते काल न दूरे ।
अनेक जतन करि इह तन राखहु रहै अवस्था पूरे ॥
आपन कीया कछू न होवै क्या को करै परानी ।
जाति सुभावै सति गुरु भेटै एको नाम बखानी ॥
बलुवा के घरुआ मैं बसते फुलवत देह अयाने ।
कहु कबीर जिह राम न चेत्यो बूडे बहुत सयाने ॥४०॥

काया कलालनि लादनि मेलै गुरु का सबद गुड कीनु रे ।
त्रिस्ना काल क्रोध मद मतसर काटि काटि कमु दीनु रे ॥
कोई हेरै सत सहज सुख अंतरि जाको जप तप देउ दलाली रे ।
एक बूँद भरि तन मन देवो जो मद देइ कलाली रे ॥
भुवन चतुरदस भाठी कीनी ब्रह्म अगिन तन जारी रे ।
मुद्रा मदक सहज धुनि लागी सुखमन पोचनहारी रे ॥
तीरथ बरत नेम सचि संजम रवि ससि गहनै देउ ।
सुरति पियास सुधारस अमृत एहु महारसु पेउ रे ॥

निरझर धार चुग्रो ग्रति निर्मल इह रस मनुग्रा रातो रे।
कहि कवीर सगने मद छूछे इहै महारस साचो रे ॥४१॥
कालवूत की हस्तनी मन वौरा रे चलत रच्यो जगदीस।
काम सुजाइ गज वसि परे मन वौरा रे ग्रकसु सह्यो सीस ॥
विषय वाचु हरि राचु समभु मन वौरा रे।
निर्भय होइ न हरि भजे मन वौरा रे गह्यो न राम जहाज ॥
मर्कट मुष्टी ग्रनाज की वन वौरा रे लीनी हाथ पसारि।
छूटन को सरा परया मन वौरा रे नाच्यो घर घर बारि ॥
ज्यो नलनी सुग्रटा गह्यो मन वौरा रे माया इहु व्योहारु।
जैसा रग कसुंम का मन वौरा रे त्यो पसरयो पासार ॥
न्हावन कौ तीरथ घने मन वौरा रे पूजन कौ वहु देव।
कहु कवीर छूटत नही मन वौरा रे छूट न हरि की सेव ॥४२॥
काहू दीने पाट पटवर काहू पलघ निवारा।
काहू गरी गोदरी नाही काहू खान परारा ॥
ग्रहि रख वादु न कीजै रे मन सुकृत करि करि लीजै रे मन।
कुमरै एक जु माटी गूंधी वहु विधि वानी लाई ॥
काहू कहि मोती मुकताहल काहू व्याधि लगाई।
सूमहि धन राखन कौ दीया मुगध कहै धन मेरा ॥
जम का दड मुड महि लागे खिन महि करै निवेरा।
हरि जन ऊतम भगत सदावै आज्ञा मन सुख पाई ॥
जो तिसु भावै सति करि मानै भाणा मन्न वसाई।
कहै कवीर सुनहु रे सतहु मेरी मेरी झूठी ॥
चिरगट फारि चटारा लै गयो तरी तागरी छूटी ॥४३॥
किनही वनज्या काँसा तावा किनही लोग सुपारी।
सतहु वनज्या नाम गोविद का ऐसी खेप हमारी।
हरि के नाम के व्यापारी।
हीरा हाथ चढचा निर्मोलक छूटि गई ससारी ॥
साँचे लाए तौ सच लागे साँचे के व्यापारी।
साँची वस्तु के भार चलाए पहुँचे जाइ भडारी ॥
ग्रापहि रतन जवाहर मानिक ग्रापै है पासारी।
ग्रापै ह्वै दस दिसि ग्राप चलावै निहचल है व्यापारी ॥
मन करि वैल सुरति करि पैडा ज्ञान गोनि भरी डारी।
कहत कवीर सुनहु रे सतहु निवही खेप हमारी ॥४४॥

किये सिंगार मिलन के ताईं। हरि न मिले जगजीवन गुसाईं।
हरि मेरो पिउ हौ हरि की बहुरिया। रान बडे मैं तनक लहुरिया॥
धनि पिय एकै संग बसेरा। सेज एक पै मिलन दुहेरा॥
धन्न सुहागनि जो पिय भावै। कहि कबीर फिर जनमि न आवै॥४५॥
कूटन सोइ जु मन को कूटै। मन कूटै तौ जम तैं छूटै॥
कुटि कुटि मन कसवही लावै। सो कूटनि मुकति बहु पावै॥
कूटन किसै कहहु ससार। सकल बोलन के माहि विचार॥
नाचन सोइ जु मन स्यौ नाचै। झूठ न पतियै परचै साचै॥
इसु मन आगै पूरै ताल। इसु नाचन के मन रखवाल॥
बाजारी सो बजारहि सोधै। पाँच पलीतह कौ परबोधै॥
नव नायक की भगतिप छानै। सो बाजारी हम गुरु मानै॥
तस्कर सोइ जिता तित करै। इद्री कै जतनि नाम ऊचरै॥
कहु कबीर हम ऐसे लक्खन। धन्न गुरुदेव अतिरूप बिचक्खन॥४६॥
कोऊ हरि समान नही राजा।
ए भूपति सब दिवस चारि के झूठे करत दिवाजा।
तेरो जन होइ सोइ कत डोलै तीनि भवन पर छाजा॥
हात पसारि सकै को जन कौ बोलि सकै न अंदाजा।
चेति अचेति मूढ मन मेरे बाजे अनहद बाजा॥
कहि कबीर ससा भ्रम चूको ध्रुव प्रह्लाद निवाजा॥४७॥
कोटि सूर जाके परगास। कोटि महादेव अरु कबिलास॥
दुर्गा कोटि जाकै मर्दन करै। ब्रह्मा कोटि वेद उच्चरै॥
जौ जाँचौ तौ केवल राम। आन देव स्यो नाही काम॥
कोटि चंद्र मे करहि चराक। सुर तेतीसौ जेवहि पाक॥
नवग्रह कोटि ठाढे दरबार। धर्म कोटि जाके प्रतिहार॥
पवन कोटि चौबारे फिरहि। बासक कोटि सेज बिस्तरहिं॥
समुंद कोटि जाके पनिहार, रोमावलि कोटि अठारहि भार॥
कोटि कुबेर भरहि भडार। कोटिक लखमी करै सिंगार॥
कोटिक पाप पुन्य बहु हिराहि। इद्र कोटि जाके सेवा कराहि॥
छप्पन कोटि जाके प्रतिहार। नगरी नगरी खियत अपार॥
लट छूटी बरतै बिकराल। कोटि कला खेलै गोपाल॥
कोटि जग जाकै दरबार। गधर्व कोटहि करहि जयकार॥
बिद्या कोटि सबै गुन कहै। ताऊ पारब्रह्म का अंत न लहै॥
बावन कोटि जाकै रोमावली। रावन सैना जह ते छली॥

सहस कोटि वहु कहत पुरान । दुर्योधन का मथिया मान ॥
कद्रप कोटि जाकै लवै न धरहि । ग्रतर ग्रतर मनसा हरहि ॥
कहि कवीर मुनि सारँगपान । देहि ग्रभयपद मानौ दान ॥४८॥

कोरी को काहु भरम न जाना । सव जग ग्रान तनायो ताना ॥
जव तुम सुनि ले वेद पुराना । तव हम इतनकु पसरचो ताना ॥
धरनि ग्रकास की करगह वनाई । चद सुरज दुह साथ चलाई ॥
पाई जोरि वात इक कीनी तह तातीं मन माना ॥
जोलाहे घर ग्रपना चीना घट हीं राम पछाना ॥
कहत कवीर कारगाह तोरी । सूतै सूत मिलाये कोरी ॥४९॥
भव निधि तरन तारन चितामनि इक निमप इहु मन लाया ॥
गोविद हम ऐसे ग्रपराधी ।
जिन प्रभु जीउ पिड था दीया तिसकी भाव भगति नहि साधी ॥
परधन परतन परतिय निदा पर ग्रपवाद न छूटै ॥
ग्रावागमन होत है फुनि फुनि इहु पर सग न छूटै ॥
जिह घर कथा होत हरि सतन इक निमप न कीनो मैं फेरा ॥
लंपट चोर धूत मतवारे तिन सँगि सदा वसेरा ॥
दया धर्म ग्रो गुरु की सेवा ए सुपनतरि नाही ।
दीन दयाल कृपाल दमोदर भगति वछल भैहारी ॥
कहत कवीर भीर जनि राखहु हरि सेवा करौ तुमारी ॥५०॥
कौन तो पूत पिता को काको । कौन मेरे को देइ संतापो ॥
हरि ठग जग को ठगौरी लाई । हरि के वियोग कैसे जियो मेरी माई ॥
कौन को पुरुप कौन की नारी । या तत लेहु सरीर विचारी ॥
कहि कवीर ठग स्यो मन मान्या । गई ठगौरी ठग पहिचान्या ॥५१॥
क्या जप, क्या तप क्या व्रत पूजा । जाकै रिदै भाव है दूजा ॥
रे जन मन माधव स्यो लाइयै । चतुराई न चतुर्भुज पाइयै ॥
परिहरि लोभ ग्ररु लोकाचार । परिहरि काम क्रोध ग्रहकार ॥
कर्म करत वद्धे ग्रहमेव । मिल पाथर की करही सेव ॥
कहु कवीर भगत कर पाया । भोलै भाइ मिलै रघुराया ॥५२॥
क्या पढिये क्या गुनियै । क्या वेद पुराना सुनियै ॥
पढे सुनै क्या होई । जौ सहज न मिलियो सोई ॥
हरि का नाम न जपसि गँवारा । क्या सोचहि वारवारा ॥

अँधियारे दीपक चहियै । इक वस्तु अगोचर लहियै ॥
वस्तु अगोचर पाई । घट दीपक रह्या समाई ॥
कहि कबीर अब जान्या । जब जान्या तौ मन मान्या ॥
मन माने लोग न पतीजै । न पतीजै तौ क्या कीजै ॥५३॥
खसम मरे तौ नारी न रोवै । उस रखवारा औरो होवै ॥
रखवारे का होइ विनास । आगै नरक इहा भोग विलास ॥
एक सुहागिन जगत पियारी । सगले जीव जंत की नारी ॥
सोहागिन गल सोहै हार । संत को विष बिगसै संसार ॥
करि सिंगार बहै पखियारी । संत की ठिठकी फिरै बिचारी ॥
संत भागि ओह पाछै परै । गुर परसादी मारहु डरै ॥
साकत की ओह पिंड पराइणि । हमसो दृष्टि परै त्रखि डाइणि ॥
हम तिसका बहु जान्या भेव । जबहू कृपाल मिले गुरु देव ॥
कहु कबीर अब बाहर परी । ससारै कै अचल लरी ॥५४॥
गंग गुसाइन गहिर गंभीर । जंजीर बांधि करि खरे कबीर ॥
मन न डिगै तन काहे को डराइ । चरन कमल चित रह्यो समाइ ॥
गगा की लहरि मेरी टूटी जंजीर । मृगछाला पर बैठे कबीर ॥
कहि कबीर कोऊ संग न साथ । जल थल राखन है रघुनाथ ॥५५॥
गगा के संग सलिता बिगरी । सो सलिता गंगा होइ निवरी ॥
बिगरयो कबीरा राम दुहाई । साचु भयो अन कतहि न जाई ॥
चदन कै सँगि तरवर बिगरयो । सो तरवर चदन ह्वै निवरयो ॥
पारस के सँग ताँबा बिगर्यो । सो ताँबा कचन ह्वै निवर्यो ॥
सतन संग कबीरा बिगर्यो । सो कबीर राम ह्वै निवरयो ॥५६॥
गगन नगरि इक बूंद न बर्षै नाद कहा जु समाना ॥
पारब्रह्म परमेसर माधव परम हंस ले सिधाना ॥
बाबा बोलते ते कहा गये देही कै संगि रहते ॥
सुरति माहि जो निरते करते कथा वार्ता कहते ॥
बजावनहारी कहाँ गयी जिन इहु मदर कीना ॥
साखी सबद सुरति नहीं उपजै खिच तेज सब लीना ॥
स्रवननि बिकल भये संगि तेरे इंद्री का बल थाका ॥
चरन रहे कर ढरक परे हैं मुखहु न निकसै बाता ॥
थाके पंचदूत सब तस्कर आप आपणे भ्रमते ॥
थाका मम कुंजर उर थाका तेज सूत धरि रमते ॥
क० ग्र० १८ (२१००-७५)

मिरतक भये दसै वद छूटे मित्र भाई सब छोरे।
कहत कबीरा जो हरि ध्यावै जीवन बधन तोरे ॥५७॥

गगन रसाल चुए मेरी भाठी। सचि महारस तन भया काठी ॥
बाको कहिये सहज मतवारा। पीवत राम रस ज्ञान विचारा ॥
सहज कलालनि जौ मिलि आई। आनदि माते अनदिन जाई ॥
चीन्हत चीत निरजन लाया। कहु कबीर तौ अनभव पाया ॥५८

गज नव गज दस गज इक्कीस पुरी आये कत नाई।
साठ सूत नव खंड बहत्तर पाटु लगो अधिकाई ॥
गई बुनावन माहो। घर छोड्यो जाइ जूलाहो।
गजी न मिनियै तोलि न तुलियै पाँच न सेर अढाई।
जौ जरि पाचन वेगि न पावै झगरू करै घर आई ॥
दिन की बैठ खसम की बरकस इह वेला कत आई।
छूटे कुंडे भीगै पुरिया चल्यो जूलाहो रिसाई ॥
छोछी नली तंतु नही निकसै नतरु रही उरझाही।
छोडि पसारई हारहु बपुरी कहु कबीर समुझाही ॥५९॥

गज साडे तै तै धोतिया तिहरे पाइनि तग्गा।
गली जिना जपमालिया लौटे हत्थिनि बग्गा ॥
ओइ हरिके सतन आखि यदि बानारसि के ठग्गा।
ऐसे संत न मोको भावहि। डाला स्यों पेडा गटकावहि ॥
बासन माजि चरावहि ऊपर काठी धोइ जलावहि।
बसुधा खोदि करहि दुइ चूल्हे सारे माणस खावहि ॥
ओई पापी सदा फिरहि अपराधी मुखहु अपरस कहावहि।
सदा सदा फिरहि अभिमानी सकल कुटव डुबावहि ॥
जित को लाया तितही लागा तैसै करम कमावै।
कहु कबीर जिसु सति गुरु भेटै पुनरपि जनमि न आवै ॥६०॥

गर्भ वास महि कुल नहि जाती। ब्रह्म विंद ते सब उतपाती ॥
कहु रे पडित बामन कब क होये। बामन कहि कहि जनम मति खोये ॥
जौ तू ब्राह्मण ब्राह्मणी जाया। तौ आन बाट काहे नही आया ॥
तुम कत ब्राह्मण हम कत शूद। हम कत लोहू तुम कत दूध ॥
कहु कबीर जो ब्रह्म विचारै। सो ब्राह्मण कहियत है हमारे ॥६१

गुड करि ज्ञान ध्यान करि महुँवा भाठी मन धारा।
सुषमन नारी सहज समानी पीवै पीवन हारा ॥

अवधू मेरा मन मतवारा ।
उन्मद चढा रस चाख्या त्रिभुवन भया उजियारा ॥
दुइ पुर जोरि रसाई भाठी पीउं महारस भारी ।
काम क्रोध दुई किये जलेता छूटि गई संसारी ॥
प्रगट प्रगास ज्ञान गुर गम्मित सति गुरु ते सुधि पाई ।
दास कबीर तासु मदमाता उचकि न कबहूँ जाई ॥६२॥
गुरु चरण लागि हम बिनवत पूछत कह जीव पाया ॥
कौन काज जग उपजै बिनसै कहहु मोहि समझाया ॥
देव करहु दया मोहि मारग लावहु जित भवबंधन टूटै ।
जनम मरण दुख फेड़ कर्म सुख जीव जनम ते छूटै ॥
माया फांस बंधन ही फारै अरु मन सुन्नि न लूके ।
आपा पद निर्वाण न चीन्ह्या इन बिधि अभिउ न चूके ॥
कही न उपजै उपजी जाणें भाव प्रभाव बिहूण ।
उदय अस्त की मन बुधि नासी तौ सदा सहजि लवलीण ॥
ज्यों प्रतिबिंब बिंब कौं मिलिहै उदक कुंभ बिगराना ।
कहु कबीर ऐसा गुण भ्रम भागा तौ मन सुन्न समाना ॥६३॥
गुरु सेवा ते भगति कमाई । तब इह मानस देही पाई ।
इस देही को सिमरहि देव । सो देही भुज हरि की सेव ॥
भजहु गुविंद भूल मत जाहु । मानस जनम की रही चाहु ॥
जब लग जरा रोग नही आया । जब लग काल ग्रसी नहिं काया ॥
जब लग बिकल भई नही बानी । भजि लेहि रे मन सारँगपानी ॥
अब न भजसि भजसि कब भाई । आवै अंत न भजिया जाई ॥
जो किछु करहि सोई अबि सारू । फिर पछताहु न पावहु पारू ॥
सो सेवक जो लाया सेव । तिनही पाये निरंजन देव ॥
गुरु मिलि ताके खूले कपाट । बहुरि न आवै योनी बाट ॥
इही तेरा अवसर इह तेरी बार । घट भीतर तू देखु बिचारि ॥
कहत कबीर जीति कै हारि । बहुबिधि कह्यो पुकारि पुकारि ॥६४॥
गृह तजि बन खंड जाइयै चुनि खाइयै कंदा ।
अजहु बिकार न छोडई पापी मन मंदा ॥
क्यौं छूटौं कैसे तरौ भवनिधि जल भारी ।
राखु राखु मेरे बीठुला जन सरनि तुमारी ॥
बिषम बिषय की वासना तजिय न जाई ।
अनिक यत्न करि राखियै फिरि लपटाई ॥

जरा जावन जोवन गया कछु कीया न नीका ।
इह जीया निर्मोल को कौडी लगि मीका ॥
कहु कबीर मेरे माधवा तू सर्वव्यापी ।
तुम सम सरि नाही दयाल मौ सम सरि पापी ॥६५॥

गृह शोभा जाकै रे नाहि । आवत पहिया खूदे जाहि ॥
वाकै अंतरि नही संतोप । बिन सोहागिन लागै कोप ॥
धन सोहागनि महा पवीत । तपे तपीसर डालै चीत ॥
सोहागनि किरपन की पूती । सेवक तजि जग तस्यो सूती ॥
साधू कै ठाढी दरबारि । सरनि तेरी मोके निस्तारि ॥
सोहागनि है अति सुंदरी । पगनेवर छनक छन हरी ॥
जौ लग प्रान तऊ लग संगे । नाहित चली बेगि उठि नंगे ॥
सोहागनि भवन त्रै लीया । दस अष्टपुराण तीरथ रसकीया ॥
ब्रह्मा विष्णु महेसर वेधे । वड़ भूपति राजै है छेधे ॥
सोहागनि उर पारि न पारि । पाँच नारद कै संग विधवारि ॥
पाँच नारद के मिटवे फूटे । कहु कबीर गुरु किरपा छूटे ॥६६॥

चंद सूरज दुइ जोति सरूप । जीता अंतरि ब्रह्म अनूप ॥
करु रे ज्ञानी ब्रह्म विचारु । जोति अंतरि धरि आप सारु ॥
हीरा देखि हीरै करो आदेस । कहै कबीर निरंजन अलेखु ॥१७॥

चरन कमल जाके रिदै वसै सो जन क्यो डोलै देव ॥
मानौ सब सुख नवनिधि ताके सहजि जस बोलै देव ॥
तब इह मति जौ सब महि पेखै कुटिल गाँठि जब खोलै देव ॥
बारबार माया ते अटकै लै नरु जो मन तौलै देव ॥
जहँ उह जाइ तही सुख पावै माया तासु न झोलै देव ॥
कहि कबीर मेरा मन मान्या राम प्रीति को ओलै देव ॥६८॥

हरि बिन बैल बिराने ह्वैहै ।
चार पाव दुइ सिंग गुंग मुख तब कैसे गुन गैहै ॥
ऊठत बैठत ठेगा परिहै तब कत मूड लुकेहै ॥
फाटे नाक न टूटै का धन कोदौ को भूस खैहै ॥
सारो दिन डोलत बन महिया अजहु न पेट अघैहै ॥
जन भगतन को कही न मानी कीयो अपनो पैहै ॥
दुख सुख करत महा भ्रम बूड़ी अनिक योनि भरमैहै ॥
रतन जनम खोयो प्रभु बिसर्यो इह अवसर कत पैहै ॥

भ्रमत फिरत तेलक के कपि ज्यों गति बिनु रैन बिहैहै ॥
कहत कबीर राम नाम बिन मुंड धुनै पछितैहै ॥ ६९ ॥
चारि दिन अपनी नौबति चले बजाइ ।
इतनकु खटिया गठिया मठिया संगि न कछु लै जाइ ॥
देहरी बैठी मेहरी रोवै द्वारे लौ संग माइ ।
मरहट लगि सब लोग कटुंब मिलि हंस इकेला जाइ ॥
वै सुत वै बित वै पुर पाटन बहुरि न देखै आई ॥
कहत कबीर राम को न सिमरहु जन्म अकारथ जाई ॥ ७० ॥
चोवा चंदन मर्दन अंगा । सो तन जलै काठ के संगा ।
इसु तन धन की कौन बडाई । धरनि परै उरवारि न जाई ॥
रात जि सोवहि दिन करहि काम । इक खिन लेहि न हरि को नाम ॥
हाथि त डोर मुख खायो तंबोर । मरती बार कसि बांध्यो चोर ॥
गुरु मति रहि रसि हरि गुन गावै । रामै राम रमत सुख पावै ॥
किरपा करि के नाम दृढ़ाई । हरि हरि वास सुगंध बसाई ॥
कहत कबीर चेते रे अंधा । सत्य राम झूठ सब धंधा ॥७१॥
जग जीवत ऐसा सुपनै जैसा जीव सुपन समान ।
साचु करि हम गांठि दीनी छोडि परम निधान ॥
बावा माया मोह हितु कीन जिन ज्ञान रतन हरि लीन ।
नयन देखि पतंग उरझै पसु न देखै आगि ॥
काल फांस न मुगध चेतै कनिक कामिनि लागि ॥
करि बिचारि बिकार परिहरि तरन तारेन सोइ ॥
कहि कबीर जग जीवन ऐसा दुतिया नही कोइ ॥७२॥
जन्म मरन का भ्रम गया गोबिद लिव लागी ।
जीवन सुन्नि समानिया गुरु साखी जागी ॥
कासी ते धुनी उपजै धुनि कासी जाई ।
कासी फूटी पंडिता धुनि कहाँ समाई ॥
त्रिकुटी संधि मैं पेखिया घटहू घट जागी ।
ऐसी बुद्धि समाचरी घट माहि तियागी ॥
आप आप जे जागिया तेज तेज समाना ॥
कहु कबीर अब जानिया गोबिंद मन माना ॥७३॥
जब जरियै तब होइ भसम तन रहै किरम दल खाई ॥
कांची गागरि नीर परतु है या तन की इहै बड़ाई ।

काहे भया फिरतौ फूला फूला ।
जब दस मास उरध मुख रहता सो दिन कैसे भूला ।
ज्यो मधु मक्खी त्यो सठोरि रसु जोरि जोरि धन कीया ।
मरती बार लेहु लेहु करिये भूत रहन क्यो दीया ॥
देहुरी लौ बरी नारि सग भई आगै सजन सुहेला ।
मरघट लौ सब लगे कुटुंब भयो आगै हस अकेला ॥
कहत कबीर सुनहु रे प्रानी परे काल ग्रस कूआ ।
झूठी माया आप बँधाया ज्यो नलनी भ्रमि सूआ ॥७४॥
जब लग तेल दीवै मुख बाती तब सूझै सब कोई ।
तेल जलै बाती ठहरानी सूना मदर होई ॥
रे बौरे तुहि घरी न राखै कोई । तूँ राम नाम जपि सोई ।
काकी माता पिता कहु काको कौन पुरुष की जोई ॥
घट फूटे कोऊ बात न पूछै काढहु काढहु होई ।
देहुरी बैठ माता रोवै खटिया ले गये भाई ॥
लट छिटकाये तिरिया रोवै हस ईकेला जाई ।
कहत कबीर सुनहु रे सतहु भौसागर के ताई ॥
इस बदे सिर जुलम होत है जम नही घटै गुसाई ॥७५॥
जब लग मेरी मेरी करै । तब लग काज एक नहि सरै ॥
जब मेरी मेरी मिट जाई । तब प्रभु काज सवारहि आई ॥
ऐसा ज्ञान विचारु मना । हरि किन सिमरहु दुखभजना ॥
जब लगि सिंघ रहे बन माहि । तब लग बन फूलई नाहि ॥
जब ही स्यार सिंघ कौ खाई । फूल रही सगली बनराई ॥
जीतौ बूडै हारो लरै । गुरु परसादि पार उतरै ॥
दास कबीर कहै समझाई । केवल राम रहहु लिव लाई ॥७६॥
जब हम एको एक करि जानिया । तब लोग कहै दुख मानिया ॥
हम अपतह अपनी पति खोई । हमरै खोज परहु मति कोई ॥
हम मदे मदे मन माहि । साँझपाति काहू स्यो नाही ॥
पति मा अपति ताकी नही लाज । तब जानहुगे जब उधरैगा पाज ॥
कहु कबीर पति हरि परवानु । सबर त्यागि भजु केवल रामु ॥७६॥
जल महि मीन माया के बेधे । दीपक पतग माया के छेदे ॥
काम मया कुजर को व्यापै । भुवगम भृग माया महि खापै ॥
माया ऐसी मोहनी भाई । जेते जीय तेते डहकाई ॥
पखी मृग माया महि राते । साकर माँखी अधिक सतापे ॥

तुरे उष्ट माया महि मेला। सिध चौरासी माया महि खेला॥
छिय जती माया के बदा। भवै नाथु सूरज अरु चदा॥
तपे रखीसर माया महि सूता। माया महि कास अरु पच दूता॥
स्वान स्याल माया महि राता। बतर चीते अरु सिघाता॥
माजर गाडार अरु लूवरा। बिरख सूख माया महि परा॥
माया अतर भीने देव। सागर इद्रा अरु धरतेव॥
कहि कबीर जिमु उदर तिमु माया। तब छूटै जब साधू पाया॥

जल है सूनक थल है सूतक सूतक आपति होई॥
जनमे सूतक मुए फुनि सूतक सूतक परज बिगोई॥
कहु रे पडिता कौन पवीता। ऐसा ज्ञान जपहु मेरे मीता॥
नैनहु सूतक बैनहु सूतक सूतक स्रवनी होई॥
ऊठत बैठत सूतक लागै सूतक परै रसोई॥
फाँसन की विधि सब कोऊ जानै छूटन की इकु कोई॥
कहि कबीर राम रिदै विचारे सूतक तिनै न होई॥७९॥

जहँ किछु अहा तहाँ किछु नाही पच तत्व तह नाही।
इडा पिंगला सुखमन बदे ते अवगुन कत जाही॥
तागा तूटा गगन विनसि गया तेरा बोलत कहा समाई।
एह संसा मोको अनदिन व्यापै मोको कौन कहै समझाई॥
जह ब्रह्मड पिड तह नाही रचनहार तह नाही।
जोड़नहारी सदा अतीता इह कहिये किसु माही॥
जोडी जुडै न तोडी तूटै जब लग होइ बिनासी।
काको ठाकुर काको सेवक को काहू के जासी॥
कहु कबीर लिव लागि रही है जहाँ बसै दिन राती।
वाका मर्म वोही पर जानै ओहु तौ सदा अविनासी॥८०॥

जाके निगम दूध के ठाटा। समुद बिलोवन कौ माटा।
ताकी होहु बिलोवनहारी। क्यों मिटैगी छाछि तुम्हारी।
चेरी तू राम न करसि भरतारा। जग जीवन प्रान अधारा॥
तेरे गलहि तौक पग बेरी। तू घर घर रमिए फेरी॥
तू अजहु न चेतसि चेरी। तू जेम बपुरी है हेरी॥
प्रभु करन करावन हारी। क्या चेरी हाथ विचारी॥
सोई सोई जागी। जितु लाई तितु लागी।
चेरी तैं सुमति कहाँ ते पाई। जाके भ्रम की लीक मिटाई॥
सुरसु कबीरै जान्या। मेरो गुरु प्रसाद मन मान्या॥८१॥

जाकै हरि सा ठाकुर भाई । सु कनि अनत पुकारन जाई ।
अब कहु राम भरोसा तोरा । तब काहू को कौन निहोरा ।
तीनि लोक जाके इहि भार । सो काहे न करै प्रतिपार ।
कहु कबीर इक बुद्धि विचारी । क्या बस जौ विष दे महतारी ।।८२।।
जिन गढ कोटि किए कचन के छोड गया सो रावन ।
काहे कीजत है मन भावन ।।
जब जम आइ केस ते पकरै तहँ हरि को नाम छुड़ावन ।।
काल अकाल खसम का कीना इहु परपच बधावन ।
कहि कबीर ते अते मुकते जिन हिरदै राम रसायन ।।८३।।
जिह मुख वेद गायत्री निकसै सो क्यो ब्राह्मन बिसरु करै ।
जाके पाय जगत सब लागै सो क्यो पडित हरि न कहै ।।
काहे मेरे ब्राह्मन हरि न कहहि । रामु न बोलहि पाँडे दोजक भरहि ।।
आपन ऊँच नीच घरि भोजन हठे करम करि उदर भरहि ।।
चौदस अमावस रचि रचि माँगहि कर दीपक लै कूप परहि ।।
तूँ ब्राह्मन मै कासी का जुलाहा मोहि तोहि बराबरि कैसे कै बनहि ।।
हमरे राम नाम कहि उबरे वेद भरोसे पाँडे डूब मरहि ।।८४।।
जिह कुल पूत न ज्ञान विचारी । विधवा कस न भई महतारी ।।
जिह नर राम भगति नही साधी । जनमत कस न मुगो अपराधी ।।
मुच मुच गर्भ गये कीन बचिया । बुडभुज रूप जीवे जग मझिया ।।
कहु कबीर जैसे सुदर स्वरूप । नाम बिना जैसे कुबज कुरूप ।।८५।।
जिह मरनै सब जगत तरास्या । सो मरना गुरु सबद प्रगास्या ।।
अब कैसे मरो मरम सब मान्या । मर मर जाते जिन राम न जान्या ।
मरनो मरन कहै सब कोई । सहजे मरै अमर होइ सोई ।।
कहु कबीर मन भया अनदा । गया भरम रहा परमानदा ।।
जिह सिमरनि होइ मुकित दुवारि । जाहि बैकुठ नही ससारि ।।
निर्भव के घर बजावहि तूर । अनहद बजहि सदा भरपूर ।।
ऐसा सिमरन कर मन माँहि । बिनु सिमरन मुक्ति कत नाँहि ।।
जिह सिमरन नाही ननकारु । मुक्ति करै उतरै बहुभारु ।।
नमस्कार करि हिरदय माँहि । फिर फिर तेरा आवन नाहि ।।
जिह सिमरन करहि तू केल । दीपक बाँधि धरचो तिन तेल ।।
सो दीपक अमर कु ससारि । काम क्रोध विष काढि ले मार ।।
जिह सिमरन तेरी गति होइ । सो सिमरन रखु कठ पिरोइ ।।
सो सिमरन करि नही राखि उतारि । गुरपरसादी उतरहि पार ।।

जिह सिमरन नही तुहि कान । मंदर सोवहि पटवरि तानि ॥
सेज सुखाली विगसै जीउ । सो सिमरन तू अनहद पीउ ॥
जिह सिमरन तेरी जाइ बलाइ । जिह सिमरन तुझ पोहै न माई ॥
सिमरि सिमरि हरि हरि मन गाइयै । इह सिमरन सति गुरु ते पाइयै ॥
सदा सदा सिमरि दिन राति । ऊठत बैठत सासि गिरासि ॥
जागु सोइ सिमरन रस भोग । हरि सिमरन पाइयै सजोग ॥
जिहि सिमरन नाही तुझ भारू । सो सिमरन राम नाम अधारू ॥
कहि कबीर जाका नही अनु । तिसके आगे ततु न मंतु ॥८७॥
जिह मुख पाँचो अमृत खाये । तिहि मुख देखत लूकट लाये ॥
इक दुख राम राइ काटहु मेरा । अग्नि दहै अरु गरभ बसेरा ॥
काया बिगति बहु बिधि भाती । को जारे को गडले माटी ॥
कहु कबीर हरि चरण दिखावहु । पाछे ते जम को न पठावहु ॥८८॥
जिह सिर रचि बाँधत पाग । सो सिर चुंच सवारहि काग ॥
इसु तन धन को क्या गर्बीया । राम नाम काहे न दृढीया ॥
कहत कबीर सुनहु मन मेरे । इही हवाल होहिंगे तेरे ॥८९॥

जीवत पितर न मानै कोऊ मुएँ सराद्ध कराही ।
पीतर भी बपुरे कहु क्यो पावहि कौआ कूकर खाही ।

मोको कुसल बतावहु कोई ।
कुसल कुसल करते जग बिनसै कुसल भी कैसे होई ।
माटी के करि देवी देवा तिसु आगे जीउ देही ।
ऐसे पितर तुम्हरे कहियहि आपन कह्या न लेही ॥
सरजीव काटहि निरजीव पूजहि अत काल कौ भारी ।
राम नाम की गति नही जानी भय डूबे ससारी ॥
देवी देवा पूजहि डोलहि पारब्रह्म नही जाना ।
कहत कबीर अकुल नही चेत्या बिषया स्यों लपटाना ।।
जीवत मरै, मरै फुनि जीवै ऐसे सुन्नि समाया ।
अंजन माहि निरंजन रहियै बहुरि न भव जल पाया ॥
मेरे राम ऐसा खीर बिलोइये ।
गुरु मति मनुवा अस्थिर राखहु इन बिधि अमृत पिओइयै ॥
गुरु कै बाणी बजर कलछेदी प्रगट्या पद परगासा ॥
सक्ति अधेर जेवणी भ्रम चूका निहचल सिव घर बासा ॥

तिन बिनु बाणैं धनुप चढाइयै इहु जग बेध्या भाई।
दस दिसि बूड़ी पवन झुलावै डोरि रही लिव लाई॥
जनमत मनुवा सुन्नि समाना दुविधा दुर्मति भागी।
वहु कबीर अनुभौ इकु देख्या राम नाम लिव लागी॥६१॥

जो जन भाव भगति कछु जाने ताको अचरज काहो।
बिनु जल जल महि पैसि न निकसै तो ढरि मिल्या जुलाहो॥
हरि के लोग मै तो मति का भोरा।
जौ तन कासीं तजहि कबीरा रामहि कहा निहोरा॥
कहतु कबीर सुनहु रे लोई भरम न भूलहु कोई।
क्या कासी क्या ऊसर मगहर राम रिदय जौ होई॥ ६२॥

जेते जतन करत ते डूबे भव सागर नही तारचौ रे॥
कर्म धर्म करते बहु सजम अह बुद्धि मन जारचौ रे।
साँस ग्रास को दातो ठाकुर सो क्यो मनहुँ बिसारचौ रे॥
हीरा लाल अमोल जनम है कौडी बदलै हारचौ रे।
तृष्णा तृपा भूख भ्रमि लागी हिरदै नाहि बिचारचौ रे॥
उनमत मान हिरचो मन माही गुरु का सबद न धारचौ रे।
स्वाद लुभत इद्री रस प्रेरचो मद रस लैत बिकारचौ रे॥
कर्म भाग सतन सगा ते काष्ठ लोह उद्धारचौ रे।
धावत जोनि जनम भ्रमि थाके अब दुख करि हम हारचौ रे॥
कहि कबीर गुरु मिलत महा रस प्रेम भगति निस्तारचौ रे॥६३॥

जेइ बाझु न जीया जाई। जौ मिलै तौ घाल अघाई।
सद जीवन भलो कहाही। मुए बिन जीवन नाही।
अब क्या कथियै ज्ञान बिचारा। निज निर्खत गत ब्यौहारा॥
घसि कुकम चदन गारचा। बिन नयनहु जगत निहारचा।
पूत पिता इक जाया। बिन ठाहर नगर बनाया॥
जाचक जन दाता पाया। सो दिया न जाई खाया।
छाड़चा जाइ न मूका। औरन पहि जाना चूका॥
जो जीवन मरना जानं। सो पच सैल सुख मानै।
कबीरै सो धन पाया। हरि भेट आप मिटाया॥६४॥

जैसे मदर महि बल हरना ठाहरै। नाम बिना कैसे पार उतारै॥
कुभ बिना जल ना टिकावै। साधू बिन ऐसे अवगत जावै॥
जारौ तिसै जु राम न चेतै। तन तन रमत रहै महि खेतै॥
जैसे हलहर बिना जिमी नहि बोइये। सूत बिना कैसे मणी परोइयै॥

घुंडी बिन क्या गंठि चढ़ाइये। साधू विन तैसे अवगत जाइयै॥
जैसे मात पिता विन वाल न होई। विंव विना कैसे कपरे धोई॥
घोर विना कैसे असवार। साधू विन नाही दरवार॥
जैसे बाजे विन नही लीजै फेरी। खसम दुहागनि तजिहाँ हेरी॥
कहै कबीर एकै करि जाना। गुरुमुखि होइ वहुरि नही मरना॥९५॥

जोड खसम है जाया।
पूत वाप खेलाया। विन रसना खीर पिलाया॥
देखहु लोगा कलि को भाऊ। सुति मुकलाई अपनी माऊ॥
पगा विन हुरिया मारता। वदनै विन खिन खिन हासता॥
निद्रा विन नरु पै सोवै। विन वासन खीर विलोवै॥
विनु अस्थन गऊ लवेरी। पडे विनु घाट घनेरी॥
विन सत गुरु वाट न पाई। कहु कबीर समझाई॥९६॥

जो जन लेहि खसम का नाउ। तिनकै सद वलिहारै जाउ॥
सो निर्मल हरि गुन गावै। सो भाई मेरै मन भावै॥
जिहि घर राम रह्या भरपूरि। तिनकी पग पकज हम धूरि॥
जाति जुलाहा मति का धीरु। सहजि सहजि गुन रमै कबीरु॥९७॥

जो जन परमिति परमनु जाना। बातन ही वैकुंठ समाना॥
ना जानी वैकुंठ कहाही। जान न सव कह हित हाही॥
कहन कहावन नहि पतियैहै। तौ मन मानै जातहु मैं जइहै॥
जब लग मन वैकुंठ की आस। तव लगि होहि नही चरन निवास॥
कहु कबीर इह कहियै काहि। साध सगति वैकुंठै आहि॥९८॥

जो पाथर को कहिते देव। ताकी विरथा होवै सेव॥
जो पाथर की पाँई पाई। तिस की घाल अजाई जाई॥
ठाकुर हमरा सद वोलता। सर्वै जिया को प्रभु दान देता॥
अतर देव न जानै अंधु। भ्रम का मोह्या पावै फधु॥
न पाथर बोलै ना किछु देइ। फोकट कर्म निहफल है सेइ॥
जे मिरतक के चंदन चढावै। उससे कहहु कौन फल पावै॥
जो मिरतक को विष्टा माँहि मुलाई। तो मिरतक का क्या घटि जाई॥
कहत कबीर हौ करहुँ पुकार। समझ देखु साकत गावार॥
दूजै भाइ वहुत घर घाले। राम भगत है सदा सुखाले॥९९॥

जो मैं रूप किये वहुतेरे अव फुनि रूप न होई।
ताँगा तंत साज सव थाका राम नाम वसि होई॥
अव मोहि नाचनो न आवै। मेरा मन मंदरिया न वजावै॥

तू मेरो मेरु परवत सुवामी ओट गही मैं तेरी ॥
ना तुम डोलहु ना हम गिरते रखि लीनी हरि मेरी ॥
अब तब जब कब तूही तूही। हम तुम परसाद सुखी सदाही ॥
तोरे भरोसे मगहर बसियो। मेरे तन की तपति बुझाई ॥
पहिले दर्सन मगहर पायो। फुनि कासी बसे आई ॥
जैसा मगहर तैसी कासी हम एकै करि जानी ॥
हम निर्धन ज्यो इह धन पाया मरते फूटि गुमानी ॥
करे गुमान चुभहि तिसु सूला कोऊ काढन कौ नाही ॥
अजै सुचोभ कौ बिलल बिलाते नरके घोर पचाही ॥
कौन नरक क्या स्वर्ग विचारा सतन दोऊ रादे ॥
हम काहू की काणि न कढते अपने गुरु परसादे ॥
अब तौ जाइ चढे सिघासन मिलिहैं सारगपानी ॥
राम कबीरा एक भये है कोई न सकै पछानी ॥११०॥
थरथर कपै बाला जीउ। ना जानौ क्या करसी पीउ ॥
रैनि गई मति दिन भी जाइ। भवर गये बग बैठे आइ ॥
काचै करवै रहै न पानी। हंस चला काया कुम्हिलानी ॥
क्वारी कन्या जैसे करत सिगारा। क्यो रलिया मानै बाझ भतारा ॥
काग उड़ावत भुजा पिरानी। कहि कबीर इह कथा सिरानी ॥१११॥
थाके नयन स्रवण सुनि थाके थाकी सुदर काया।
जरा हाक दी सब मति थाकी एक न थाकिस माया ॥
बावरे तै ज्ञान विचार न पाया। बिरथा जनम गँवाया ॥
तब लगि प्रानी तिसे सरेवहु जब लगि घट मही साँसाँ ॥
जे घट जाइत भाव न जासी हरि के चरन निवासा ॥
जिसकौ सबद बसावै अवर चूकहि तिसहि पियासा ॥
हुकमैं बूझै चौपडि खेलै मन जिन ढाले पासा ॥
जो मन जनि भजहि अवगति कौ तिनका कछू न नासा ॥
कहु कबीर ते जन कबहु न हारहि ढालि जु जानहि पासा ॥११२॥
दरमादे ठाढे दरबारि।
तुझ बिन सुरति करै को मेरी दर्सन दीजै खोलि किवार।
तुम धन धनी उदार तियागी स्रवनन सुनियत सुजस तुमार।
माँगौ काहि रक सब देखौं तुम ही ते मेरो निसतार ॥
जयदेव नामा विप्प सुदामा तिनकौ कृपा भई है अपार।
कहि कबीर तुम समरथ दाते चारि पदारथ देत न बार ॥११३॥

दिन ते पहर पहर ते घरियाँ आयु घटै तनु छीजै।
काल अहेरी फिरहि बधिक ज्यौ कहहु कौन विधि कीजै।।
सो दिन आवन लागा।
माता पिता भाई सुत वनिता कहहु कोऊ है काका।।
जब लगु जोति काया महि वरतै आपा पसू न बूझै।
लालच करै जीवन पद कारन लोचन कछू न सूझै।।
कहत कबीर सुनहु रे प्रानी छोड़हु मन के भरमा।
केवल नाम जपहु रे प्रानी परहु एक की सरना।।११४।।
दीन विसार्‍यो रे दीवाने दीन विसार्‍यो।
पेट भर्‍यो पसुआ ज्यों सोयो मनुष जनम है हार्‍यो।।
साध संगति कबहूँ नहि कीनी रचियो धंधै झूठ।
स्वान सूकर वायस सम जीवै भटकत चाल्यो ऊठि।।
आपन की दीरघ करि जानै औरन कौ लघु मान।
मनसा वाचा करमना मैं देखे दोजक जान।।
कामी क्रोधी चातुरी बाजीगर बेकाम।
निंदा करते जनम सिरानो कबहु न सिमर्‍यो राम।।
कहि कबीर चेतै नहि मूरख मुगध गवार।
राम नाम जानियो नही, कैसे उतरसि पार।।११५।।
दुइ दुइ लोचन पेखा। हौ हरि बिन और न देखा।।
नैन रहे रंग लाई। अब बेगल कहन न जाई।।
हमरा भर्म गया भय भागा। जब रॉम नाँम चितु लागा।।
बाजीगर डक बजाई। सब खलक तमासे आई।।
बाजीगर स्वॉग सकेला। अपने रंग रवै अकेला।।
कथनी कहि भर्म न जाई। सब कथि कथि रही लुकाई।।
जाकौ गुरु मुखि आप बुझाई। ताके हिरदै रह्या समाई।।
गुरु किंचित किरपा कीनी। सब तन मन देह हरि लीनी।।
कहि कबीर रँगि राता। मिल्यो जग जीवनदाता।।११६।।
दुनिया हुसियार बेदार जागत मुसियत हौ रे भाई।।
निगम हुसियार पहरुआ देखत जम ले जाई।।
नीबु भयो आँबु आँबु भयो नीबा केला पाका झारि।।
नालिएर फल सेबरिया पाका मूरख मुगध गवार।।
हरि भयो खाँडु रे तुमहि बिखरियो हस्ती चुन्यो न जाई।
कहि कबीर कुल जाति पाँति तजि चींटी होइ चुनि खाई।।११७।।

देखो भाई ज्ञान की आई आँधी ।
सबै उड़ानी भ्रम की टाटी रहै न माया बाँधी ॥
दुचिते की दुई थूनि गिरानी मोह बलेडा टूटा ।
तिष्णा छानि परी घर ऊपर दुमिति भाडा फूटा ॥
आँधी पाछै जो जल वर्षे तिहि तेरा जन भीना ।
कहि कबीर मन भया प्रगासा उदय भानु जब चीना ॥११८॥
देइ मुहार लगाम पहिरावौ । सगल तजीनु गगन दौरावौ ॥
अपने विचारै असवारी कीजै । सहज के पावडे पग धरि लीजै ॥
चलु रे बैकुंठ तुझहि ले तारी । हित चित प्रेम के चाबुक मारी ॥
कहत कबीर भले असवारा । बेद कतेब ते रहहि निरारा ॥११९॥
देही गावा जीउ धर्म हत उवसहि पंच किरसाना ।
नैनू नकटू स्रवनू रसपति इंद्री कह्या न माना ॥
बाबा अब न बसहु इह गाउ ।
घरी घरी का लेखा माँगै काइथु चेतू नाउँ ।
धर्मराय जब लेखा माँगै बाकी निकसी भारी ॥
पंच कृसनवा भागि गए लै बाध्यौ जीउ दरबारी ॥
कहहि कबीर सुनहु रे संतहु खेतहि करौ निबेरा ॥
अबकी बार बखसि बंदे को बहुरि न भव जल फेरा ॥१२०॥
धन्न गुपाल धन्न गुरु देव । धन्न अनादि भूखे कवल टहकेव ॥
धन ओहि संत जिन ऐसी जानी । तिनकौ मिलिबो सारंगपानी ॥
आदि पुरुष ते होई अनादि । जपियै नाम अन्न कै सादि ॥
जपिये नाम जपियै अन्न । अंभै कै संग नीका वन्न ॥
अन्नै बाहर जो नर होवहि । तीनि भवन महि अपनी खोवहि ॥
छोडहि अन्न करै पाखंड । ना सोहागनि ना ओहि रंड ॥
जग महि बकते दूधाधारी । गुप्ती खावहि वटिका सारी ॥
अन्नै बिना न होइ सुकाल । तजियै अन्न न मिलै गुपाल ॥
कहु कबीर हम ऐसे जान्या । धन्य अनादि ठाकुर मन मान्या ॥१२१॥
नगन फिरत जो पाइये जोग । बन का मिरग मुकति सब होग ॥
क्या नागे क्या बाँधे चाम । जब नहि चीन्हसि आतम राम ॥
मूँड मुडाए जो सिद्धि पाई । मुक्ती भेड न गय्या काई ॥
बिंदु राख जो तरयै भाई । खुसरै क्यों न परम गति पाई ॥
कहु कबीर सुनहू नर भाई । राम नाम बिन किन गति पाई ॥१२२॥

नर मरै नर काम न आवै । पशु मरै दस काज सँवारे ।
अपने कर्म की गति मैं क्या जानौं । मैं क्या जानौं वावा रे ।
हाड जले जैसे लकड़ी का तूला । केस जले जैसे घास का पूला ।।
कहत कबीर तवही नर जागै । जम का डंड मूंड महि लागै ।।१२३।।

नांगे आवत नांगे जाना । कोई न रहिहै राजा राना ।।
राम राजा नव निधि मेरै । सर्प हेतु कलतु धन तेरै ।।
आवत संग न जात सँगाती । कहा भयो दर वांधे हाथी ।।
लका गढ़ सोने का भया । मूरख रावन क्या ले गया ।।
कह कवीर कुछ गुन वीचारि । चलै जुआरी दुइ हथ झारि ।।१२४।।

नाइक एक वनजारे पाँच । वरध पचीसक सग काच ।
नव वहियाँ दस गोनी आहि । कसन वहत्तरि लागी ताहि ।।
मोहि ऐसे वनज स्यो ही काजु । जिह घटै मूल नित वढै व्याजु ।।
सत्त सूत मिलि वनजु कीन । कर्म भावनी संग लीन ।।
तीनि जगाती करत रारि । चलो वनजारा हाथ झारि ।।
पूंजी हिरानी वनजु टूटि । दह दिस टाँडो गयो फूटि ।।
कहि कबीर मन सरसी काज । सहज समानो त भर्म भाजि ।।१२५।।

ना इहु मानुष ना इहु देव । ना इहु जती कहावै सेव ।।
ना इहु जोगी ना अवधूता । ना इसु माइ न काहू पूता ।।
या मदर मह कौन वसाई । ता का अत न कोऊ पाई ।।
ना इहु गिरही ना ओदासी । ना इहु राज न भीख मँगासी ।।
ना इहु पिड न रकतू राती । ना इहु ब्रह्मन ना इहु खाती ।।
ना इहु तया कहावै सेख । ना इहु जीवै न मरता देख ।।
इमु मरते कौ जे कोऊ रोवै । जो रोवै सोई पति खोवै ।।
गुरु प्रसादि मै डगरो पाया । जीवन मरन दोऊ मिटवाया ।।
कहु कबीर इहु राम की अंसु । उस कागद पर मिटै न मंसु ।।१२६।।

ना मैं जोग ध्यान चित लाया । विन वैराग न छूटसि माया ।।
कैसे जीवन होइ हमारा । जव न होइ राम नाम अधारा ।।
कहु कवीर खोजौ असमान । राम समान न देखौ आन ।।१२७।।

निंदौ निंदौ मोकौ लोग निंदौ । निंदौ निंदौ मोकौ लोग निंदौ ।।
निंदा जन कौ खरी पियारी । निंदा वाप निंदा महतारी ।।
निंदा होय त वैकुंठ जाइयै । नाम पदारथ मनहि वसाइयै ।।
रिदै सुद्ध जौ निंदा होइ । हमरे कपरे निंदक धोइ ।।

निंदा करै सु हमरा मीत । निंदक माहि हमारा चीत ॥
निंदक सो जो निंदा होरै । हमरा जीवन निंदक लोरै ॥
निंदा हमरी प्रेम पियार । निंदा हमरा करै उधार ॥
जन कबीर कौ निंदा सार । निंदक डूबा हम उतरे पार ॥१२८॥
नित उठि कोरी गागरिया लै लीपत जनम गयो ।
ताना बाना कछू न सूझै हरि हरि रस लपट्यो ॥
हमरे कुल कौने राम कह्यौ ।
जब की माला लई निपूते तब ते सुख न भयो ॥
सुनहु जिठानी सुनहु दिरानी अचरज एक भयो ॥
सात सूत इन मुडिये खोये इहु मुडिया क्यो न मयो ॥
सर्व सखा का एक हरि स्वामी सो गुरु नाम दयो ॥
सत प्रह्लाद की पैज जिन राखी हरनाखसु नख विदरयो ॥
घर के देव पितर की छोडो गुरु को सबद लयो ॥
कहत कबीर सकल पाप खडन संतह ले उधरयो ॥१२९॥
निर्धन आदर कोई न देई । लाख जतन करै ओहु चित न धरेई ॥
जौ निर्धन सरधन कै जाई । आगै बैठा पीठ फिराई ॥
जौ सरधन निर्धन कै जाई । दीया आदर लिया बुलाई ॥
निर्धन सरधन दोनो भाई । प्रभु की कला न मेटी जाई ॥
कहि कबीर निर्धन है सोई । जाकै हिरदै नाम न होई ॥१३०॥
पडित जन माते पढि पुरान । जोगी माते जोग ध्यान ।
संन्यासी माते अहमेव । तपसी माते तप के भेव ॥
सब मदमाते कोऊ न जाग । सग ही चोर घर मुसन लाग ॥
जागै सुकदेव अरु अक्रूर । हणवंत जागे धरि लंकूर ॥
संकर जागे चरन सेव । कलि जागे नामा जैदेव ॥
जागत सोवत बहु प्रकार । गुरु मुखि जागे सोई सार ॥
इस देही के अधिक काम । कहि कबीर भजि राम नाम ॥१३१॥
पडिया कौन कुमति तुम लागे ।
बूडहु गे परवार सकल स्यो राम न जपहु अभागे ॥
वेद पुरान पढे का किया गुन खर चदन जस भारा ॥
राम नाम की गति नही जानी कैसे उतरसि पारा ॥
जीव बधहु सुधर्म करि थापहु अधर्म कहौ कत भाई ॥
आपस को मुनि वर करि थापहु काकहु कहौ कसाई ॥

मन के अंधै आपि न बूझहु का कहि बुझावहु भाई ॥
माया कारन विद्या वेचहु जनम अविर्था जाई ॥
नारद वचन वियास कहत है सुक कौ पूछहु जाई ॥
कहि कबीर रामहि रमि छूटहु नाहि त बूड़े भाई ॥१३२॥[1]

पंथ निहारै कामनी लोचनि भरि लेइ उसासा ॥
उर न भीजै पग ना खिसै हरि दर्सन की आसा ।
उडहु न कागा कारे । वेग मिलीजै अपने राम प्यारे ॥
कहि कबीर जीवन पद कारन हरि की भक्ति करीजै ॥
एक अधार नाम नारायण रसना राम रवीजै ॥१३३॥

पंद्रह तिथि सात वार । कहि कबीर उर वार न पार ॥
साधक सिद्ध लखै जौ भेउ । आपे करता आपे देउ ॥
अम्मावस महि आय निवारौ । अन्तरयामी राम समारहु ॥
जीवत पावहु मोख दुवारा । अनभौ सवद तत्व निज सारा ॥
चरन कमल गोविंद रग लागा ।
संत प्रसाद भये मन निर्मल हरि कीर्त्तन महि अनदिन जागा ॥
परवा प्रीतम करहु वीचार । घट महि खेलै अघट अपार ॥
काल कल्पना कदे न खाइ । आदि पुरुष महि रहै समाइ ॥
दुतिया दुइ करि जानै अग । माया ब्रह्म रमै सव संग ॥
ना ओहु वडै न घटता जाइ । अकुल निरजन एकै भाइ ॥
तृतीया तीने सम करि ल्यावै । आनंद मूल परम पद पावै ॥
साध सगति उपजै विस्वास । वाहर भीतर सदा प्रगास ॥
चौथहि चचल मन कौ गहहु । काम क्रोध संग कवहु न वहहु ॥
जल थल माहे आपही आप । आपै जपहु अपना जाप ॥
पाँचे पंच तत्त विस्तार । कनक कामिनि जुग व्योहार ॥
प्रेम सुधा रस पीवै कोई । जरा मरण दुख फेरि न होई ॥
छटि षट चक्र चहूँ दिसि धाइ । विनु परचै नही थिरा रहाइ ॥
दुविधा मेटि खिमा गहि रहहु । कर्म धर्म की सूल न सहहु ॥
सातैं सति करि वाचा जाणि । आतम राम लेहु परवाणि ॥
छूटै ससा मिटि जाहि दुक्ख । सुन्य सरोवरि पावहु सुक्ख ॥

---

१. एक दूसरे स्थान पर यह पद इस प्रकार आरंभ होता है 'वड़ी आकवत कुमति तुम लोग' शेष सव ज्यों का त्यों है । मूल प्रति मे जो ३६ नंवर का पद है वह भी कुछ थोडे से हेर फेर के साथ ऐसा ही है ।

अष्टमी अष्ट धातु की काया । तामहि अकुल महा निधि राया ॥
गुरु गम ज्ञान बतावै भेद । उलटा रहै अभग अछेद ॥
नौमी नवै द्वार को साधि । बहती मनसा राखहु बाँधि ॥
लोभ मोह सब बीसरी जाहु । जुग जुग जीवहु अमर फल खाहु ॥
दसमी दह दिसि होइ अनदा । छूटै भर्म मिलै गोविंदा ॥
ज्योति स्वरूप तत्त अनूप । अमल न मल न छाँह नहि धूप ॥
एकादसी एक दिसि धावै । तो जोनी सकट बहुरि न आवै ॥
सीतल निर्मल भया सरीरा । दूरि बतावत पाया नीरा ॥
बारसि बारही गवै सूर । अहि निसि बाजे अनहद तूर ॥
देख्या तिहूँ लोक का पीउ । अचरज भया जीव ते सीउ ॥
तेरसि तेरह अगम बखाणि । अर्द्ध उर्द्ध बिच सम पहिचाणि ॥
नीच ऊँच नही मान प्रमान । व्यापक राम सकल सामान ॥
चौदसि चौदह लोक मझारि । रोम रोम महि बसहि मुरारि ॥
सत सतोष का धरहु धियान । कथनी कथियै ब्रह्म गियान ॥
पून्यो पूरा चद्र अकास । पसरहि कला सहज परगास ॥
आदि अंत मध्य होइ रह्या बीर । सुखसागर महि रमहि कबीर ॥१३४॥

पहिला पूत पिछैरी माई । गुरु लागो चेले की पाई ॥
एक अचभौ सुनहु तुम भाई । देखत सिह चरावत गाई ॥
जल की मछुली तरवर ब्याई । देखत कुतरा लै गई बिलाई ॥
तलेरे बैसा ऊपर सूला । तिसकै पेड लगै फल फूला ॥
घोरै चरि भैंस चरावन जाई । बाहर बैल गोनि घर आई ॥
कहत कबीर जो इस पद बूझै । राम रमत तिसु सब किछु सूझै ॥

पहिली कुरुप कुजाति कुलक्खनी साहुरै पेइयै बुरी ।
अब की सरूप सुजाति सुलक्खनी सहजे उदरधरी ॥
भली सरी मुई मेरी पहली बरी ।
जुग जुग जीवो मेरी अबकी धरी ॥
कहु कबीर जब लहुरी आई बडी का सुहाग टरयो ।
लहुरी सग भई अब मेरे जेठी और धरयो ॥१३६॥

पाती तौरै मालिनी पाती पाती जीउ ।
जिसु पाहन कौ पाती तोरै सो पाहनु निरजीउ ॥
भूली मालिनी है एउ । सति गुरू जागता है देउ ॥
ब्रह्म पाती बिस्नु डारी फूल सकर देव ॥
तीन देव प्रतख्य तोरहि करहि किसकी सेव ॥

पापान गढ़ि कै मूरति कीनी देकै छाती पाउ ॥
जे एइ मूरति साची है तो गडणहारे खाउ ॥
भातु पहिति और लापसी करकरा का सारु ॥
भोगनु हारे भोगिया इसु मूरति के मुख छार ॥
मालिन भूलि जग भुलाना हम भुलाने नाहि ॥
कह कबीर हम राम राखे कृपा करि हरि राइ ॥१३७॥

पानी मैला माटी गोरी । इस माटी की पुतरी जोरी ॥
मैं नाही कछु आहि न मोरा । तन धन सब रस गोबिंद तोरा ॥
इस माटी महि पवन समाया । झूठा परपच जोरि चलाया ।
किनहू लाख पाँच की जोरी । अत की बाट गगरिया फोरी ।
कहि कबीर इक नीवी सारी । खिन महि बिनसि जाइ अहकारी ॥१३८॥

पाप पुन्य दोइ बैल बिसाहे पवन पूंजी परगास्यो ॥
तृष्णा गूणि भरी घट भीतर इन विधि टाँड बिसाह्यो ॥
ऐसा नायक राम हमारा सकल ससार कियो बजारा ॥
काम क्रोध दुइ भये जगाती मन तरग बटवारा ॥
पच तत्तु मिलि दान निबेरहि टांडा उतरयो पारा ॥
कहत कबीर सुनहु रे सतहु अब ऐसी बनि आई ॥
घाटी चढत बैल इक थाका चलो गोनि छिटकाई ॥१३९॥

पिंड मुए जिउ किहि घर जाता । सबद अतीत अनाहद राता ॥
जिन राम जान्या तिन्ही पछान्या । ज्यों गूंगे साकर मन मान्या ॥
ऐसा ज्ञान कथै बनवारी । मन रे पवन दृढ़ सुषमन नाड़ी ॥
सो गुरु करहु जि बहुरि न करना । सो पद रवहु जि बहुरि न रवना ॥
सो ध्यान धरहु जि बहुरि न धरना । ऐसे मरहु जि बहुरि न मरना ॥
उलटी गंगा जमुन मिलावौ । बिनु जल सगम मन महि नावौ ॥
लोचा सम सरिहहु ब्योहारा । तत्तु बिचारि क्या अवर बिचारा ॥
अप तेज वायु पृथमी अकासा । ऐसी रहनि रहौ हरि पासा ॥
कहै कबीर निरजन ध्यावौ । तित घर जाहु जि बहुरि न आवौ ॥१४०॥

पेवक दै दिन चारि है साहुरडे जाणा ।
अंधा लोक न जाणई मूरखु एयाणा ॥
कहु डड़िया बाँधे धन खड़ी । याहू घर आये मुकलाऊ आये ॥
ओह जि दिसै खूहड़ी को न लाजु बहारी ।
लाज घडी स्यो टूटि पड़ी उठि चलि पनिहारी ॥

साहिव होइ दयाल कृपा करे अपना कारज सवारे ।
ता सोहागणि जानिए गुरु सवद विचारै ॥
किरत की बाँधी सव फिरै देखहु विचारी ।
एसनो क्या आखियै क्या करे विचारी ॥
भई निरासी उठि चली चित वँधी न धीरा ।
हरि की चरणी लागि रहु भजु सरण कवीरा ॥१४१॥

प्रहलाद पठाये पठन साल । संगि सखा वहु लिए वाल ॥
मोकौ कहा पढ़ावसि आल जाल । मेरी पटिया लिखि देहु श्रीगोपाल ॥
नही छोड़ौ रे वावा राम नाम । मेरो और पढन स्यों नही काम ॥
संडै मरकै कह्यौ जाइ । प्रहलाद वुलाये वेगि धाइ ॥
तू राम कहन की छोडु वानि । तुझ तुरत छडाऊँ मेरा कह्यो मानि ॥
मोकौ कहा सतावहु वार वार । प्रभु भज थल गिरि किये पहार ॥
इक राम न छोड़ौं गुरुहि गारि । मोकौं घालि जारि भावै मारि डारि ॥
काढि खड्ग कोप्यो रिसाइ । तुझ राखनहारो मोहि वताइ ॥
प्रभु थभ ते निकसे कै विस्तार । हरनाखस छेद्यो नख विदार ॥
ओइ परम पुरुष देवाधिदेव । भगत हेत नरसिंघ भेव ॥
कहि कवीर को लखै न पार । प्रहलाद उवारे अनिक वार ॥१४२॥

फील रवावी वलुद पखावज कौआ ताल वजावै ।
पहरि चोलना गदहा नाचै भैसा भगति करावै ॥
राजा राम क करिया वरपे काये । किनै वूझन हारै खाय ॥
वैठि सिंह घर पान लगावहि घीस गल्योरे लावै ॥
घर घर मुसरी मगल गावहि कछुआ संख वजावै ॥
वंस को पूत विआहन चलिया सुइने मंडप छाये ॥
रूप कन्निया सुदर वेधी ससै सिंह गुन गाये ॥
कहत कवीर सुनहु रे पडित कीटी परवत खाया ॥
कछुआ कहै अगार भिलोरौ लूकी सवद सुनाया ॥१४३॥

फुरमान तेरा सिरै ऊपर फिरि न करत विचार ॥
तुही दरिया तुही करिया तुझै ते निस्तार ॥
वदे वदगी इकतीयार । साहिव रोप धरौ कि पियार ।
नाम तेरा आधार मेरा जिउ फूल जइहै नारि ॥
कहि कवीर गुलाम घर का जीआइ भावै मारि ॥१४४॥

वधचि वंधनु पाइया । मुकतै गुरि अनलु वुझाइया ।
जव नख सिख इहु मनु चीना । तव अंतर मंजनु कीना ॥

पवन पति उनमनि रहनु खरा । नही मिसु न जनमु जरा ।।
उलटीले सकति संहार । फैसीले गगन मझार ।।
वेधिये ले चक्र भुअंगा । भेटिय ले राइन संगा ।।
चूकिय ले मोह मइ आसा । ससि कीनो सूर गिरासा ।।
जब कुंभ कुभरि पुरि जीना । तब बाजे अनहद वीना ।।
बकतै बकि सबद सुनाया । सुनतै सुनि माल बसाया ।।
करि करता उतरसि पारं । कहै कबीरा सारं ।।१४५।।

बटूआ एक बहत्तरि आधारी एको जिसहि दुवारा ।
नवै खंड की प्रथमी मांगै सो जोगी जगसारा ।
ऐसो जोगी नव निधि पावै । तल का ब्रह्म ले गगन चरावै ।।
खिथा ज्ञान ध्यान करि सूई सबद ताग मथि घालै ।
पंच तत्व की करि मिरगाणी गुरु कै मारग चालै ।।
दया फाहुरी काया करि धुई दृष्टि की अगनि जलावै ।
तिसका भाव लए रिद अंतर चहु जुग ताडी लावै ।।
सभ जोगत्तण राम नाम है जिसका पिंड पराना ।
कहु कबीर जे किरपा धारै देइ सचा नीसाना ।।१४६।।

बनहि बसे क्यो पाइये जौ लौ मनहु न तजै बिकार ।
जिह घर बन समसरि किया ते पूरे ससार ।।
सार सुख पाइये रामा रंगि रवहु आतमै रामा ।
जटा भस्म लै लेपन किया कहा गुफा महि बास ।।
मन जीते जग जीतिया ते विपिया ते होइ उदास ।
अजन देइ सब कोई टुक चाहन माहि विडानु ।।
ज्ञान अंजन जिह पाइया ते लोइन परवानु ।
कहि कबीर अब जानिया गुरु ज्ञान दिया समुझाइ ।
अंतर मति हरि भेटिया अब मेरा मन कतहू न जाइ ।।१४७।।

बहु प्रपंच करि परधन ल्यावै । सुत दारा पहि आनि लुटावै ।।
मन मेरे भूले कपट न कीजै । अंत निबेरा तेरे जीय पहि लीजै ।।
छिन छिन तन छीजै जरा जनावै । तब तेरी ओक कोई पानियो न पावै ।।
कहत कबीर कोई नही तेरा । हिरदै राम किन जपहि सबेरा ।।१४८।।
बाती सूखी तेल निखूटा । मदल न बाजै नट पै सूता ।।
बुझि गई अगनि न निकस्यो धूआ । रवि रह्या एक अवर नहीं दूआ ।।
तूटी ततु न बजै रवाव । भूलि बिगारयो अपना काज ।।

कथनी बदनी कहन कहावन। समझ परी तो बिसर्यो गावन॥
कहत कबीर पच जो चूरे। तिनते नाहि परम पद दूरे॥१४६॥

बाप दिलासा मेरो कीना। सेज सुखाली मुखि अमृत दीना॥
तिसु बाप की क्यो मनहु बिसारी। आगे गया न बाजी हारी॥
मुई मेरी माई हौं खरा सुखाला। पहिरौ नही दगली लगै न पाला॥
बलि तिसु बापै जिन ही जाया। पचा ते मेरा संग चुकाया॥
पच मारि पावा तलि दीने। हरि सिमरन मेरा मन तन भीने॥
पिता हमारो वड गोसाईं। तिसु पिता पहि हौं क्यो करि जाईं॥
सति गुरु मिले ता मारग दिखाया। जगत पिता मेरे मन भाया॥
हौ पूत तेरा तू बाप मेरा। एकै ठाहरि दुहा बसेरा॥
कह कबीर जनि एको बूझिया। गुरु प्रसाद मै सब कछु सूझिया॥१५०॥

बारह बरस बालपन बीते बीस बरस कछु तपु न कियो।
तीस बरस कछु देव न पूजा फिर पछुताना बिरध भयो॥
मेरी मेरी करते जनम गयो। साइर सोखी भुज बल्यो॥
सूके सरवर पालि बँधावै लूणै खेत हथवारि करै।
आयो चोर तुरत ही ले गयो मेरी राखत मुगध फिरै॥
चरन सीस कर कपन लागे नैनो नीर असार बहै॥
जिहिवा बचन सुद्ध नही निकसै तब रे धरम की आस करै।
हरि जी कृपा करै लिव लावै लाहा हरि हरि नाम लियो।
गुरु परसादी हरि धन पायो अते चल दिया नालि चल्यो॥
कहत कबीर सुनहु रे सतहु अन धन कछु ऐलै न गयो।
आई तलब गोपाल राइ की माया मदर छोड़ चल्यो॥१५१॥

बावन अक्षर लोक त्रय सब कछु इनही माहि।
जे अक्खर खिरि जाहिगे ओइ अक्खर इन महि नाहि॥
जहाँ बोल तह अक्खर आवा। जहँ अबोल तहँ मन न रहावा॥
बोल अबोल मध्य है सोई। जस ओहु है तस लखै न कोई॥
अलह लहौ तौ क्या कहौ कहौ तो को उपकार।
वटक बीजि महि रवि रह्यो जाको तीनि लोक विस्तार॥
अलह लहता भेद छै कछु कछु पाया भेद।
उलटि भेद मन बेधियो पायो अभग अछेद॥
तुरक तरीकत जानियै हिंदू वेद पुरान।
मन समझावन कारनै कछु यक पढियै ज्ञान॥

ओंकार आदि मैं जाना। लिखि और मेटै ताहि न माना ॥
ओंकार लखै जौ कोई। सोई लखि मेटणा न होई ॥
कक्का किरणि कमल महि पावा। ससि विगास संपट नहि आवा ॥
अरु जे तहा कुसम रस पावा। अकह कहा कहि का समझावा ॥
खक्खा इहै खोड़ि मन आवा। खोडे छाड़ि न दह दिसि धावा ॥
खसमहि जाणि खिसा करि रहै। तौ होइ निरखऔ अखै पद लहै ॥
गग्गा गुरु के बचन पछाना। दूजी बात न धरई काना ॥
रहै विहंगम कतहि न जाई। अगह गहै गहि गगन रहाई ॥
घघ्घा घट घट निमसै सोई। घट फूटे घट कबहि न होई ॥
ता घट माहि घाट जौ पावा। सो घट छाँड़ि अवघट कत धावा ॥

ङङा निग्रह सनेह करि निरवारो सदेह।
नाहीं देखि न भाजिये परम सियानप एह ॥

चच्चा रचित चित्र है भारी। तजि चित्रै चेतहु चितकारी ॥
चित्र विचित्र इहै अवझेरा। तजि चित्रै चितु राखि चितेरा ॥
छछ्छा इहै छत्रपति पासा। छकि किन रहहु छाड़ि किन आसा ॥
रे मन मैं तो छिन छिन समझावा। ताहि छाडि कत आप बँधावा ॥
जज्जा जौ तन जीवत जरावे। जीवन जारि जुगति सो पावै ॥
अस जरि परजरि जरि जब रहै। तब जाइ ज्योति उजारी लहै ॥
झझ्झा उरझि सुरझि नहि जाना। रह्यो झझकि नाहीं परवाना ॥
कत झकि झकि औरन समझावा। झगर किये झगरौ ही पावा ॥

ञञा निकट जु घट रह्यो दूरि कहा तजि जाइ।
जा कारण जग ढूँढियौ नेरौ पायो ताहि ॥

टट्टा विकट घाट घट माहीं। खोलि कपाट महल किन जाहीं।
देखि अटल टलि कतहि न जावा। रहै लपटि घट परचौ पावा ॥
ठट्ठा इहै दूरि ठग नीरा। नीठि नीठि मन कीया धीरा ॥
जिन ठग ठग्या सकल जग खावा। सो ठग ठग्या ठौर मन आवा ॥
डड्डा डर उपजै डर जाई। ता डर महि डर रह्या समाई ॥
जौ डर डरै तौ फिरि डर लागै। निडर हुआ डर उर होइ भागै ॥
ढढ्ढा ढिग ढूँढहि कत आना। ढूँढत ही ढहि गये पराना ॥
चढ़ि सुमेर ढुढि जब आवा। जिह गढ़ गढ्या सुगढ़ महि पावा ॥

णण्णा रणि रूतौ नर नेही करै । नानि वैना फुनि मनचरै ॥
धन्य जनम ताही को गणैं । मारि एकहि तजि जाइ घणैं ॥
तत्ता अतर तर्यो नह जाई । तन त्रिभुवण मे रह्यो समाई ॥
जौ त्रिभुवण तन माहि समावा । तौ ततहि तत मिल्या सचु पावा ॥
थथ्था अथाह थाह नही पावा । ओहु अथाह इहु थिर न रहावा ॥
थोड़ै थल थानक आरंभै । विनु ही थाहर मंदिर थंभै ॥
दद्दा देखि जु बिनसन हारा । जस अदेखि तस राखि विचारा ॥
दसवै द्वार कुंजी जब दीजै । तौ दयाल कौ दर्सन कीजै ॥
धद्धा अर्द्धहि अर्द्ध निबेरा । अद्धहि उर्द्धह मंझि बसेरा ॥
अर्द्धह छाडि अर्द्ध जौ आवा । तौ अर्द्धहि उर्द्ध मिल्या सुख पावा ॥
नन्ना निसि दिन निरखत जाई । निरखत नयन रहे रतवाई ॥
निरखत निरखत जब जाइ पावा । तब ले निरखहि निरख मिलावा ॥
पप्पा अपर पार नही पावा । परम ज्योति स्यो परचो लावा ॥
पांचो इंद्री निग्रह करई । पाप पुण्य दोऊ निरवरई ॥
फफ्फा बिनु फूलै फल होई । ता फल फंक लखै जौ कोई ॥
दूणि न परई फंक विचारै । ता फल फंक सबै नर फारै ॥
बब्बा बिंदहि बिंद मिलावा । बिंदहि बिंद न बिछुरन पावा ॥
बंदौ होइ बंदगी गहै । बंधक होइ बंधु सुधि लहै ॥
भभ्भा भेदहि भेद मिलावा । अब भौ भांति भरोसौ आवा ॥
जो बाहर सो भीतर जान्या । भया भेद भूपति पहिचान्या ॥
मम्मा मूल रह्या मन मानै । मर्मी हो सो मन को जानै ॥
मत कोइ मन मिलता बिलमावै । मगन भया तेनो सचु पावै ॥

मम्मा मन स्यो काजु है मन साधे सिधि होइ ॥
मनही मन स्यो कहै कबीरा मनसा मिल्या न कोइ ॥

इहु मन सकती इहु मन सीउ । इहु मन पंच तत्व को जीउ ॥
इहु मन ले जौ उनमनि रहै । तौ तीनि लोक की बातै कहै ॥

यय्या जो जानहि तो दुर्मति हनि वसि काया गाउ ॥
रणि रूतौ भाजै नही सूर उधारो नाउ ॥

रारा रस निरस्स करि जान्या । होइ निरस्स सुरस पहिचान्या ॥
इह रस छाडे उह रस आवा । उह रस पीया इह रस नही भावा ॥
लल्ला ऐसे लिव मन लावै । अनत न जाइ परम सचु पावै ॥

अरु जौ तहा प्रेम लिव लावैं। तौ अलह लहै लहि चरन समावै ॥
ववा वार वार विष्णु समारि। विष्णु समारि न आवैं हारि ॥
वलि वलि जे विष्णु तना जस गावें। विष्णु मिलै सवही सचु पावै ॥

वावा वाही जानियैं वा जाने इहु होइ।
इहु अरु ओहु जव मिलैं तव मिलत न जानै कोइ ॥

शश्शा सो नीका करि सोधहु। घट परचा की वात निरोधहु।
घट परचैं जो उपजै भाउ। पूरि रह्या तह त्रिभुवन राउ ॥
षष्षा खोजि परैं जो कोई। जो खोजे सो वहुरि न होई।
खोजि वूझि जौ करैं विचारा। तौ भवजल तरन न लावैं वारा ॥
सस्सा सो सह सेज सवारै। सोई सही सदेह निवारै ॥
अल्प सुख छाड़ि परमसुख पावा। तव इह त्रिय ओहु कत कहावा ॥
हाहा होत होइ नही जाना। जवही होइ तवहि मन माना।
है तौ सही लखैं जौ कोई। तव ओही उह एहु न होई ॥
लिउँ लिउँ करत फिरै सव लोग। ता कारण व्यापै वहु सोग।
लक्ष्मीवर स्यो जौ लिव लागै। सोग मिटै सव ही सुख पावैं ॥
खख्खा खिरत खपत गये केते। खिरत खपत अजहूँ नहिं चेते।
अव जग जानि जो मना रहै। जह का विछुरा तह थिरु लहै ॥
वावन अक्खर जोरे आन। सवया म अक्खरु एक पछानि।
सत का सवद कवीरा कहै। पंडित होइ सो अनभै रहै ॥
पंडित लोगह कौ व्यवहार। दानवत कौं तत्व विचार।
जाकै जीय जैसी वुधि होई। कहि कवीर जानैगा सोई ॥१५२॥

विंदु ते जिन पिंड किया अगनि कुंड रहाइया।
दस मास माता उदरि राख्या वहुरि लागी माइया ॥
प्रानी काहै कौं लोभि लागै रतन जनम खोया।
पूरव जनम करम भूमि वीजु नाही वोया ॥
वारिक ते विरध भया होना सो होया ॥
जा जम आइ झोट पकरै तवहि काहे रोया ॥
जीवन की आसा करै जम निहारै सासा।
वाजीगरी संसार कवीरा चेति ढालि पासा ॥१५३॥

वुत पूजि हिंदू मुये तुरक मुये सिर नाई।
ओइ ले जारे ओइ ले गाड़े तेरी गति दुहूँ न पाई ॥

मन रे संसार अंध गहेरा। चहुँ दिसि पसरचो है जम जेवरा।
कबित पढ़े पढि कबिता मूये पकड के दारैं जाई॥
जटा धारि धारि जोगी मूये मेरी गति इनहि न पाई॥
द्रव्य सचि सचि राजे मूये गड़ि ले कंचन भारी।
बेद पढ़े पढि पंडित मूये रूप देखि देखि नारी।
राम नाम बिन सबै बिगूते देखहु निरखि सरीरा।
हरि के नाम बिन किन गति पाई कहि उपदेस कबीरा॥१५४॥
भुजा बाँधि मिला करि डारयो। हस्ती कोपि मूंड महि मार्‍यो।
हस्ती भागि कै चीसा मारै। या मूरति कै हौं बलिहारै॥
आहि मेरे ठाकुर तुमरा जोर। काजी बकिबो हस्ती तोर।
हस्त न तोरै धरै ध्यान। वाकै रिदै बसै भगवान॥
क्या अपराध सत है कीना। बाँधि पाट कुंजर को दीना।
कुंजर पोटलै लै नमस्कारै। बूझी नही काजी अँधियारैं॥
तीन बार पतिया भरि लीना। मन कठोर अजहू न पतीना।
कहि कबीर हमारा गोबिंद। चौथे पद महि जन की जिंद॥१५५॥
भूखे भगति न कीजै। यह माला अपनी लीजै।
हौं माँगो सतन रेना। मैं नाही किसी का देना॥
माधव कैसी बने तुम संगे। आपि न देउ तले बहु मगे।
दुइ सेर माँगौ चूना। पाव घीउ सग लूना॥
अधसेर माँगौ दाले। मोको दोनौ वखत जिवाले।
खाट माँगौ चौपाई। सिरहाना और तुलाई।
ऊपर की माँगौ खीधा। तेरी भगति करै जनु थीधा।
मैं नाही कीता लब्बो। इक नाउ तेरा मैं फब्बो॥
कहि कबीर मन मान्या। मन मान्या तौ हरि जान्या॥१५६॥
मन करि मक्का किबला करि देही। बोलनहार परम गुरु एही।
कहु रे मुल्ला बाँग निवाज। एक मसीति दसै दरवाज॥
मिसमिलि तामसु भर्म क दूरी। भाखि ले पचे होइ सबूरी।
हिंदू तुरक का साहिब एक। कह करै मुल्ला कह करै सेख॥
कहि कबीर हौ भया दिवाना। मुसि मुसि मनुआ सहजि समाना॥१५७॥
मन का स्वभाव मनहि बियापी। मनहि मार कवन सिधि थापी॥
कवन मुनि मनि जो मन को मारै। मन को मारि कवहुँ किस तारै।

मन अंतर बोलै सब कोई। मन मारै बिन भगत न होई॥
कहु कबीर जो जानै भेउ। मन मधुसूदन त्रिभुवण देउ॥१५८॥

मन रे छाड़हु मर्म प्रगट होइ नाचहु या माया के डाड़े।
सूर कि सनमुख रन ते डरपै सती कि साँचे भाँड़े॥
डगमग छाँडि रे मन बौरा।
अब तो जरै मरै सिधि पाइये लीनो हाथ सिंधोरा।
काम क्रोध माया के लीने या बिधि जगत बिगूचा॥
कहि कबीर राजा राम न छोड़ौ सगल ऊँच ते ऊँचा॥१५६॥

माता जूठी पिता भी जूठा जूठा जूठेही फल लागे।
आवहि जूठे जाहि भी जूठे जूठे मरहि अभागे।
कहु पंडित सूचा कवन ठाउ। जहाँ बैसि हौं भोजन खाउ॥
जिह्वा जूठी बोलन जूठा करन नेत्र सब जूठे।
इंद्री की जूठी उतरसि नाहि ब्रह्म अगनि के जूठे॥
अगनि भी जूठी पानी जूठा जूठी बैसि पकाइया।
जूठी करछी परोसन लागा जूठे ही बैठि खाइया॥
गोबर जूठा चौका जूठा जूठी दीनो कारा।
कहि कबीर तेई नर सूचे साची परी बिचारा॥१६०॥

मरन जीवन की संका नासी। आपन रंगि सहज परगासी।
प्रकटी ज्योति मिटया अँधियारा। राम रतन पाया करत बिचारा॥
जहँ अनंद दुख दूर पयाना। मन मानकु लिव ततु लुकाना।
जो किछु होआ सु तेरा भाणा। जौ इन बूझै सु सहजि समाणा॥
कहत कबीर किलविप गये खीणा। मन माया जग जीवन लीणा॥१६१॥

माई मोहि अवरु न जान्यो आनाँ।
सिव सनकादि जासु गुन गावहि तासु बसहि मेरे प्रानाँ।
हिरदै प्रगास ज्ञान गुरु गम्मित गगन मंडल महि ध्यानाँ।
विषय रोग भव बंधन भागे मन निज घर सुख जानाँ॥
एक सुमति रति जानि मानि प्रभु दूसर मनहि न आना।
चंदन बास भये मन बास न त्यागि घट्यो अभिमानाँ॥
जो जन गाइ ध्याइ जस ठाकुर तासु प्रभू है थानाँ।
तिह बड भाग बस्यो मन जाके कर्म प्रधान मथानाँ॥
काटि सकति सिव सहज प्रगास्यौ एकै एक समानाँ।
कहि कबीर गुर भेटि महासुख भ्रमत रहे मन मानाँ॥१६२॥

माथे तिलक हथि माला बांना। लोगन राम खिलौना जानां॥
जौ-हौ बौरा तौ राम तोरा। लोग मर्म कह कह जानै मोरा॥
तोरौं न पाती पूजौं न देवा। राम भगति बिन निहफल सेवा॥
सतिगुरु पूजौं सदा मनावौ। ऐसो सेव दरगह सुख पावौ॥
लोग कहै कबीर बौराना। कबीर का मर्म राम पहिचाना॥१६३॥

माधव जल की प्यास न जाइ। जल महि अगनि उठी अधिकाइ॥
तू जलनिधि हौं जल का मीन। जल महि रही जलै बिन खीन॥
तू पिंजर हौं सुअटा तोर। जम मजार कहा करे मोर॥
तू तरवर हौ पखी आहि। मंदभागी तेरो दर्शन नाहि॥१६४॥

मुद्रा मोनि दया करि झोली पत्र का करहु विचारू रे।
खिंथा इहु तन सीओ अपना नाम करो आधारू रे॥
ऐसा जोग कमावै जोगी जप तप संजम गुरु मुख भोगी।
बुद्धि विभूति चढाओ अपनी सिंगी सुरति मिलाई॥
करि बैराग फिरौं तन नगर मन की किंगुरी बजाई॥
पंच तत्व लै हिरदै राखहु रहै निराल मताड़ी।
कहत कबीर सुनहु रे संतहु धर्म दया करि वाढी॥१६५॥

मुसि मुसि रोवै कबीर की माई। ए बारिक कैसे जीवहि रघुराई।
तनना बुनना सब तज्या है कबीर। हरि का नाम लिखि लियो सरीर।
जब लग तागा बाहउ वेही। तब लग बिसरै राम सनेही।
ओछी मति मेरी जाति जुलाहा। हरि का नाम लह्यो मै लाहा॥
कहत कबीर सुनहु मेरी माई। हमरा इनका दाता एक रघुराई॥१६६॥

मेरी बहुरिया को धनिया नाउ। ले राख्यौ रामजनिया नाउ॥
इन मुडियन मेरा घर धुंधरावा। बिटवहि राम रमौआ लावा॥
कहत कबीर सुनहु मेरी माई। इन मुडियन मेरी जाति गवाई॥१६७॥

मैला ब्रह्म मैला इंदु। रवि मैला है मैला चंदु॥
मैला मलता इहु संसार। इक हरि निर्मल जाका अंत न पार॥
मैला ब्रह्मंडा इक्कै ईस। मैले निसि बासुर दिन तीस॥
मैला मोती मैला हीरु। मैला पवन पावक अरु नीरु॥
मैले सिव संकरा महेस। मैले सिध साधिक अरु भेष॥
मैले जोगी जंगम जटा समेति। मैली काया हंस समेति॥
कहि कबीर ते जन परवान। निर्मल ते जो रामहि जान॥१६८॥

मौलो धरती मौला आकास। घटि घटि मौलिया आतम प्रगास ॥
राजा राम मौलिया अनत भाइ। जव देखो तह रहा समाइ ॥
दुतिया मौले चारि वेद। सिमृति मौली सिउ कतेव ॥
सकर मौल्यौ जोग ध्यान। कवीर को स्वामी सव समान ॥१६९॥
जम ते उलटि भये है राम। दुख विनसे सुख कियो विश्राम।
वैरी उलटि भये है मीता। साकत उलटि सुजन भये चीता ॥
अव मोहि सर्व कुसल करि मान्या। साति भई जव गोविंद जान्या।
तन महि होती कोटि उपाधि। उलटि भई सुख सहजि समाधि ॥
आप पछानै आपै आप। रोग न व्यापै तीनो ताप।
अव मन उलटि सनातन हूआ। तव जान्या जव जीयत मूआ ॥
कहु कवीर सुख सहज समाओ। आपि न डरो न अवर डराओ ॥१७०॥

जोगी कहहिं जोग भल मीठी अवर न दूजा भाई।
रुडित मुडित एकै सवदी एकहहि सिधि पाई।
हरि विन भरमि भुलानै अंधा।
जा पहि जाउ आप छुटकावनि ते वाँधे वहु फदा।
जह ते उपजी तही समानी इहि विधि विसरी तवही ॥
पडित गुणी सूर हम दाते एहि कहहिं वड हमही।
जिसहि वुझाए सोई वूझै विनु वूझै क्यौ रहियै ॥
तिस गुरु मिलै अँधेरा चूके इन विधि प्राण कु लहियै।
तजिवा वेदा हने विकारा हरि पद दृढ़ करि रहियै ॥
कहु कवीर गूँगै गुण खाया पूछे ते क्या कहियै ॥१७१॥
जोगी जती तपी सन्यासी वहु तीरथ भ्रमना।
लुजित मुजित मौनि जटा धरि अत तऊ मरना ॥
ताते सेविअ ले रामना।
रसना राम नाम हितु जाकै कहा करे जमना ॥
आग निगम जोतिक जानहि वहु वह व्याकरना।
तंत्र मत्र सव औषध जानहि अत तऊ मरना ॥
राज भोग अरु छत्र सिहासन वहु सुदरि रमना।
पान कपूर सुवासक चंदन अत तऊ मरना।
वेद पुरान सिमृति सव खोजे कहूँ न ऊवरना।
क कवीर यो रामहि जपौ मैंटि जनम मरना ॥१७२॥

जोनि छाडि जौ जग महि आयो। लागत पवन खसम बिसरायो।
जियरा हरि के गुन गाउ।
गर्भ जोनि महि ऊर्ध्व तपु करता। तौ जठर अग्नि महि रहता।
लख चौरासीह जोनि भ्रमि आयो। अब के छुटके ठौर न ठायो॥
कहु कबीर भजु सारिगपानी। आवत दीसै जात न जानी॥१७३॥
रहु रहु री बहुरिया घूँघट जिनि काढै। अत की बार लहैगी न आढै।
घूँघट काढि गई तेरी आगै। उनकी गैल तोहि जिनि लागै॥
घूँघट काढ की इहै बडाई। दिन दस पाँच बहू भले आई।
घूँघट तेरी तौपरि साँचै। हरि गुन गाइ कूदहि अरु नाचै।
कहत कबीर बहू तब जीतै। हरि गुन गावत जनम व्यतीतै॥१७४॥
राखि लेहु हमते बिगरी।
सील धरम जप भगति न कीनी हौ अभिमान टेढ पगरी।
अमर जानि सची इह काया इह मिथ्या काची गगरी॥
जिनहि निवाजि साजि हम कीये तिनहि बिसारि औ लगरी।
संधि कोहि साध नहि कहियौ सरनि परे तुमरी पगरी॥
कह कबीर इहि बिनती सुनियहु मत घालहु जम की खबरी।
राजन कौन तुमारे आवै।
ऐसो भाव बिदुर को देख्यो ओहु गरीब केहि भावै।
हस्ती देखि भर्म ते भूला श्री भगवान न जान्या॥
तुमरो दूध बिदुर को पानी अमृत करि मैं मान्या।
खीर समान सागु मै पाया गुन गावत रैनि बिहानी॥
कबीर को ठाकुर अनद बिनोदी जाति न काहूँ की मानी॥१७६॥
राजा राम तू ऐसा निर्भव तरन तारन राम राया।
जब हम होते तब तुम नाही अब तुम इह हम नाही॥
अब हम तुम एक भये हहि एकै देखति मन पतियाही।
जब बुधि होती तब बल कैसा अब दुद्धि बल न खटाई॥
कही कबीर बुधि हरि लई मेरी बुद्धि बदली सिधि पाई॥१७७॥
राजा स्रिमामति नही जानी तोरी। तेरे सतन की हौ चेरी।
हसतो जाइ सु रोवत आवै रोवत जाइ सु हँसै॥
बसतो होइ सो ऊजरु उजरु होइ सु बसै।
जल ते थल करि थल ते कूआ कूप ते मेरु करावै॥
धरती ते आकास चढावै चढे अकास गिरावै॥

भेखारी ते राज करावै राजा ते भेखारी।
खल मूरख ते पंडित करिबो पंडित ते मुगधारी ॥
नारी ते जे पुरुख करावै पुरखन ते जो नारी ॥
कहु कबीर साधू का प्रीतम सुमूरति बलिहारी ॥१७८॥

राम जपौ जिय ऐसे ऐसे। ध्रुव प्रह्लाद जप्यो हरि जैसे ॥
दीनदयाल भरोसे तेरे। सब परवार चढ़ाया बेड़े ॥
जाति सुभावै ताहु कम मनावै। इस बेड़े कौ पार लंघावै ॥
गुरु प्रसादि ऐसी बुद्धि समानी। चूकि गई फिरि आवन जानी ॥
कहु कबीर भजु सारिंगपानी। उरवार पार सब एको दानी ॥१७९॥

राम सिमरि राम सिमरि राम सिमरि भाई।
राम नाम सिमिरन बिनु बूडते अधिकाई ॥
वनिता सुत देह ग्रेह संपति सुखदाई।
इनमे कछु नाहि तेरो काल अवधि आई ॥
अजामल गज गनिका पतित कर्म कीने।
तेऊ उतरि पार परे राम नाम लीने ॥
सूकर कूकर जोनि भ्रमतेऊ लाज न आई।
राम नाम छाडि अमृत काहे विप खाई ॥
तजि भर्म कर्म विधि निषेध राम नाम लेही।
गुरु प्रसाद जन कबीर राम करि सनेही ॥१८०॥

री कलवारि गवारि मूढ मति उलटो पवन फिरावौ।
मन मतवार मेर सर भाठी अमृत धार चुवावौ ।
बोलहु भैया राम की दुहाई ।
पीवहु सत सदा मति दुर्लभ सहजे प्यास बुझाई ॥
भय बिच भाउ भाई कोउ बूझहि हरि रस पावै भाई।
जेते घट अमृत सबही महि भावै तिसहि पियाई ॥
नगरी एकै नव दरवाजे धावत वर्जि रहाई ।
त्रिकुटी छूटै दस बादर खूलै ताम न खीवा भाई ॥
अभय पद पूरि ताप तह नासे कहि कबीर बीचारी ॥
उबट चलते इहु मद पाया जैसे खोद खुमारी ॥१८१॥

रे जिय निलज्ज लाज तोहि नाही। हरि तजि कत काहू के जाही ॥
जाको ठाकुर ऊँचा होई। सो जन पर घर जात न सोही।
सो साहिब रहिया भरपूरि। सदा सगि नाहीं हरि दूरि ॥

कवला चरन सरन है जाके। कहु जन का नाही घर ताके।
सब कोऊ कहै जासु की बाता। जो सम्रथ निज पति है दाता॥
कहै कबीर पूरन जग सोई। जाके हिरदै अवर न होई॥१८२॥

रे मन तेरो कोइ नहीं खिंचि लेइ जिन भार।
बिरख बसेरा पखि को तैसो इहु संसार॥
राम रस पीया रे जिह रस बिसरि गये रस और।
और मुये क्या रोइये जो आपा थिर न रहाइ॥
जो उपजै सो बिनसिहै दुख करि रोवै बलाइ।
जह की उपजी तह रची पीवत मरद न लाग॥
कहु कबीर चित चेतिया राम सिमिर बैराग॥१८३॥

रोजा धरै मनावै अलहु स्वादति जीय संघारै।
आपा देखि अवर नहीं देखै काहे कौ झख मारै॥
काजी साहिब एक तोही महि तेरा सोच बिचार न देखै।
खबरि न करहि दीन के बौरे ताते जनम अलेखै॥
साच कतेब बखानै अलहु नारि पुरख नहि कोई।
पढ़ै गुनै नाही कछु बौरे जो दिल महि खबरि न होई॥
अलहु गैब सगल घट भीतर हिरदै लेहु बिचारी।
हिंदू तुरक दुहु महि एकै कहै कबीर पुकारी॥१८४॥

लंका सा कोट समुंद सी खाई। तिह रावन घर खबरि न पाई॥
क्या मांगै किछु थिरु न रहाई। देखत नयन चल्यो जग जाई॥
इक लख पूत सवा लख नाती। तिह रावन घर दिया न बाती।
चंद सूर जाके तपत रसोई। बैसंतर जाके कपरे धोई॥
गुरु मति रामै नाम बसाई। अस्थिर रहै न कतहू जाई॥
कहत कबीर सुनहु रे लोई। राम नाम बिनु मुकुति न होई॥१८५॥

लख चौरासी जीअ जोनि महि भ्रमत नंदुबहु थाको रे।
भगति हेतु अवतार लियो है भाग बडो बपुरा को रे॥
तुम जो कहत हौ नंद को नंनन नंद सु नंदन काको रे।
धरनि अकास दसो दिसि नाही तब इहु नंद कहा था रे॥
संकट नही परै जोनि नहि आवै नाम निरंजन जाको रे।
कबीर को स्वामी ऐसो ठाकुर जाकै माई न बापो रे॥१८६॥

विद्या न पढ़ो बाद नहीं जानो। हरि गुन कथत सुनत बौरानी ॥
मेरे बाबा मैं बौरा, सब खलक सयानो, मैं बोरा।
मैं बिगर्यो बिगरै मति औरा। आपनबौरा राम कियो बौरा ॥
सतिगुरु जारि गयो भ्रम मोरा ॥
मैं बिगरे अपनी मति खोई। मेरे भर्मि भूलौ मति कोई ॥
सो बौरा आपु न पछानै। आप पछानै त एकै जानै ॥
अबहिं न माता सु कबहुँ न माता। कहि कबीर रामै रँगि राता ॥ १८७ ॥
बिनु तत सती होई कैसे नारि। पंडित देखहु रिदे बिचारि ॥
प्रीति बिना कैसे बँधे सनेहू। जग लग रस तब लग नहिं नेहू ॥
साहु निसत्तु करै जिय अपनै। सो रमय्यै को मिलै न स्वपनै ॥
तन मन धन गृह सौंपि सरीरू। सोई सोहागनि कहै कबीरू ॥ १८८ ॥

विमल वस्त्र केते है पहिरे क्या बन मध्ये बासा।
कहा भया नर देवा धोखे क्या जल बोरचो गाता ॥
जीय रे जाहिगा मैं जाना। अविगत समझ इयाना।
जत जत देखौ बहुरि न पेखौं संग माया लपटाना।
ज्ञानी ध्यानी बहु उपदेसी इहु जन सगलो धंधा।
कहि कबीर इक राम नाम बिनु या जग माया अंधा।
कहि कबीर इक राम नाम बिनु या जग माया अंधा ॥ १८९ ॥

बिषया व्यापा सकल संसारू। बिषया लै डूबा परवारू ॥
रे नर नाव चौडि कत बोडी। हरि स्यो तोडि बिषया संगि जोडी ॥
सुर नर दाधे लागी आगि। निकट नीर पसु पीवसि न झाँगि ॥
चेतत चेतत निकस्यो नीर। सो जल निर्मल कथत कबीर ॥ १९० ॥

बेद कतेब इफतरा भाई दिल का फिकर न जाई।
टुक दम करारी जौ करहु हाजिर हजूर खुदाई ॥
बदे खोजु दिल हर रोज ना फिरि परेसानी माहि।
इह जु दुनिया सहरु मेला दस्तगीरी नाहि ॥
दरोग पढ़ि पढि खुसी होइ बेखबर बाद बकाहि।
हक सच्च खालक खलक म्याने स्याम मूरति नाहि ॥
असमान म्याने लहग दरिया गुसल करद त बूद।
करि फिकरु दाइम लाइ चसमे जँह तहाँ मौजूद ॥
अल्लाह पाक पाक है सक करो जे दूसर होइ।
कबीर कर्म करीम का उहु करे जानै सोइ ॥ १९१ ॥

वेद कतेब कहहु मत झूठेइ झूठा जो न बिचारै ॥
जौ सब मैं एकु खुदा कहत हौ तौ क्यो मुरगी मारै ।
मुल्ला कहहु नियाउ खुदाई तेरे मन का भरम न जाई ॥
पकरि जीउ आन्या देह बिनती माटी की बिसमिल कीया ।
जोति सरूप अनाहत लागी कहु हलाल क्यो कीया ॥

क्या उज्जू पाक किया मुह धोया क्या मसीति सिर लाया ।
जौ दिल मैहि कपट निवाज छुजारहु क्या हज कावै जाया ॥
तू नापाक पाक नही सूझ्या तिसका मरम न जान्या ।
कहि कबीर भिस्त ते चूका दोजक स्यो मन मान्या ॥ १९२ ॥

वेद की पुत्री सिमृति, भाई । साँकल जवरी लैहै आई ॥
आपन नगर आप ते बाँध्या । मोह कै फाधि काल सरु साध्या ॥
कटी न कटै तूटि नह जाई । सो सापनि होइ जग कौ खाई ॥
हम देखत जिन्ह सब जग लूटया । कहु कबीर मैं राम कहि छूटया ॥१९३॥

वेद पुरान सबै मत सुनि कै करी करम की आसा ।
काल ग्रस्त सब लोग सियाने उठि पंडित पै चले निरासा ॥
मन रे सर्यो न एकै काजा । भज्यो न रघुपति राजा ।
बन खड जाइ जोग तप कीनो कद मूल चुनि खाया ।
नादी वेदी सबदी मौनी जम के पटै लिखाया ॥
भगति नारदी रिदै न आई काछि कूछि तन दीना ।
राग रागनी डिभ होइ बैठा उन हरि पहि क्या लीना ॥
परयो काल सबै जग ऊपर माहि लिखे भ्रम ज्ञानी ।
कहु कबीर जन भये खलासे प्रेम भगति जिह जानी ॥ १९४ ॥

पट नेम कर कोठडी बाँधी वस्तु अनूप बीच पाई ॥
कुजी कुलफ प्रान करि राखे करते बार न लाई ॥

अब मन जागत रहु रे भाई ।
गाफिल होय कै जनम गवायो चोर मुसै घर जाई ॥
पंच पहरुआ दर महि रहते तिनका नही पतियारा ।
चेति सुचेत चित्त होइ रहूँ तौ लै परगासु उजारा ॥
नव घर देखि जु कामिनि भूली बस्तु अनूप न पाई ।
कहत कबीर नवै घर मूसे दसवे तत्व समाई ॥ १९५ ॥

सत मिलै कछु सुनिये कहिये। मिलै असंत मष्ट करि रहियै ॥
बाबा बोलना क्या कहियै। जैसे राम नाम रमि रहियै ॥
संतन स्यो बोले उपकारी। मूरख स्यों बोले झक मारी ॥
बोलत बोलत बढ़हि बिकारा। बिनु बोले क्या करहि बिचारा ॥
कहु कबीर छूछा घट बोलै। भरिया होइ सु कबहु न डोलै ॥१९६॥

मतहु मन पवनै सुख बनिया। किछु जोग परापति गनिया ॥
गुरु दिखलाई मोरी। जितु मिरग पड़त है चोरी ॥
मूँदि लिये दरवाजे। बाजिले अनहद बाजे ॥
कुंभ कमल जल भरिया। जलौ मेटयो ऊभा करिया ॥
कहु कबीर जन जान्या। जौ जान्या तौ मन मान्या ॥१९७॥

मता मानौ दूता डानौ इह कुटवारी मेरी ॥
दिवस रैन तेरे पाउ पलोसौं केस चवर करि फेरी ॥
हम कूकर तेरे दरबारि। भौंकाई आगे वदन पसारि।
पूरब जनम हम तुम्हरे सेवक अब तौ मिट्या न जाई।
तेरे द्वारे धुनि सहज की मथै मेरे दगाई ॥
दागे होहि सुरन महि जूझहि बिनु दागे भगि जाई।
साधू होई सुभ गति पछानै हरि लये खजानै पाई ॥
कोठरे महि कोठरी परम कोठरी विचारि।
गुरु दीनी वस्तु कबीर कौ लेवहु वस्तु सम्हारि।
कबीर दोई ससार कौ लीनी जिसु मस्तक भाग ॥
अमृत रस जिनु पाइया थिरता का सोहाग ॥१९८॥

संध्या प्रात स्नान कराही। ज्यों भये दादुर पानी माही।
जो पै राम नाम रति नाही। ते सवि धर्मराय के जाही ॥
काया रति बहु रूप रचाही। तिनकै दया सुपनै भी नाही।
चार चरण कहहि बहु आगर। साधू सुख पावहि कलि सागर ॥
कहु कबीर बहु काय करीजै। सरबस छोडि महा रस पीजै ॥१९९॥

सत्तरि सै इसलारू है जाके। सवा लाख है कावर ताके।
सेख जु कहीं यहीं कोटि अठासी। छप्पन कोटि जाके खेल खासी ॥
मो गरीब की को गुजरावै। मजलसि दूरि महल को पावै ॥
तेतसि करोडि है खेल खाना। चौरासी लख फिरै दिवाना ॥

वावा आदम कौं कछु न हरि दिखाई । उनभी भिस्त घनेरी पाई ॥
दिल खल हलु जाकै जर दरवानी । छोडि कतेव करै सैतानी ॥
दुनिया दोस रोस है लोई । अपना कीया पावै सोई ॥
तुम दाते हम सदा भिखारी । देउ जवाव होइ वजगारी ॥
दास कवीर तेरी पनह समाना । भिस्त नजीक राखु रहमाना ॥२००॥

सनक आनद अत नही पाया । वेद पढे पढि व्रह्मै जनम गवाया ॥
हरि का विलोवना विलोवहु मेरे भाई । सहज विलोवहु जैसे तत्व न जाई ॥
तनु करि मटकी मन माहि विलोई । इसु मटकी महि सवद सजोई ॥
हरि का विलोना मन का वीचारा । गुरु प्रसादि पावै अमृत धारा ॥
कहु कवीर न दर करे जे मीरा । राम नाम लगि उतरे तीरा ॥२०१॥
सनक सनद महेस समाना । सेप नाग तेरो मर्म न जाना ॥
सत सगति राम रिदै वसाई ।

हनुमान सरि गरुड समाना । सुरपति नरपति नहि गुन जाना ॥
चारि वेद अरु सिमृति पुराना । कमलापति कमल नहि जाना ॥
कह कवीर सो धरमैं नाही । पग लगि राम रहै सरनाही ॥२०२॥
सव कोई चलन कहत है ऊँहा । ना जानौं वैकुंठ है कहाँ ॥
आप आपका मरम न जानाँ । वातन ही वैकुंठ वखानाँ ॥
जव लग मन वैकुंठ की आस । तव लग नाही चरन निवास ॥
खाई कोट न परल पगारा । ना जानौं वैकुंठ दुआरा ।
कहि कवीर अव कहिये काहि । साधु सगति वैकुंठे आहि ॥२०३॥

सर्पनी ते ऊपर नही वलिया । जिन ब्रह्मा विष्णु महादेव छलिया ॥
मारु मारु सर्पनी निर्मल जल पैठी । जिन त्रिभुवन डसिले गुरु प्रसादि डीठी ॥
सर्पनी सर्पनी क्या कहहु भाई । जिन साचु पछान्या तिन सर्पनी खाई ॥
सर्पनी ते आन छूछ नही अवरा । सर्पनी जीति कहा करै जमरा ॥
इहि सर्पनी ताकी कीती होई । वल अवल क्या इसते होई ।
एह वसती ता वसत सरीरा । गुरु प्रसादि सहजि तरे कवीरा ॥२०४॥

सरीर सरोवर भीतरै आछै कमल अनूप ।
परस ज्योति पुरुपोत्तमो जाकै रेख न रूप ॥
रे मन हरि-भजु-भ्रम तजहु जग-जीवन राम ।
आवत कछू न दीसई न दीसै जात ॥

जहाँ उपजै बिनसै तहि जैसे पुरवनि पात।
मिथ्या करि माया तजा सुख सहज बीचारि ॥
कहि कबीर सेवा करहु मन मझि मुरारि ॥२०५॥

सासु की दुखी ससुर की प्यारी जेठ के नाम डरौ रे।
सखी सहेली ननद गहेली देवर कै विरहि जरौ रे ॥
मेरी मति बौरी मै राम बिसार्‌यो किन विधि रहनि रहौ रे।
सेजै रमत नयन नही पेखौ इहु दुख कासौ कहौ रे ॥
बाप सावका करै लराई मया सद मतवारी।
बडे भाई के जब संग होती तब ही नाह पियारी ॥
कहत कबीर पंच को झगरा झगरत जनम गवाया।
झूठी माया सब जग बॉध्या पै राम रमत सुख पाया ॥२०६॥

सिव की पुरी बसै बुधि सारु। यह तुम मिलि कै करहु बिचारु ॥
ईत ऊत की सोझी परै। कौन कर्म मेरा करि करि मरै ॥
निज पद ऊपर लागो ध्यान। राजा राम नाम मेरा ब्रह्म ज्ञान ॥
मूल दुआरै बध्या बंधु। रवि ऊपर गहि राख्या चंदु ॥
पंचम द्वारे की सिल ओड। तिह सिल ऊपर खिडकी और ॥
खिड़की ऊपर दसवा द्वार। कहि कबीर ताका अंतु न पार ॥२०७॥

सुख मॉगत दुख आगै आवै। सो सुख हमहुँ न मॉग्या भावै ॥
विषया अजहु सुरति सुख आसा। कैसे होइ है राजाराम निवासा ॥
इसु सुख ते सिव ब्रह्म डराना। सो सुख हमहुँ साँच करि जाना ॥
सनकादिक नारद मुनि सेखा। तिन भी तन महि मन नही पेखा ॥
इस मन कौ कोई खोजहु भाई। तन छूटै मन कहा समाई ॥
गुरु परसादी जयदेव नामा। भगति कै प्रेम इनही है जाना ॥
इस मन कौ नही आवन जाना। जिसका भ्रम गया तिन साचु पछाना ॥
इस मन कौ रूप न रेख्या काई। हुकुमे होया हुकुम बूझि समाई ॥
इस मन का कोई जानै भेउ। इहि मन लीण भये सुखदेउ ॥
जीउ एक और सगल सरीरा। इस मन कौ रवि रहै कबीरा ॥२०८॥

सुत अपराध करत है जेते। जननी चीति न राखसि तेते ॥
रामय्या हौ बारिक तेरा। काहे न खंडसि अवगुन मेरा ॥
जे अति कोप करे करि धाया। ताभी चीत न राखसि माया ॥

चित्त भवन मन परथो हमारा। नाम विना कैसे उतरसि पारा॥
देहि विमल मति सदा सरीरा। सहजि सहजि गुन रवै कवीरा॥२०९॥

सुन्न सध्या तेरी देव देवा करि अधपति आदि समाई॥
सिद्ध समादि अंत नहीं पाया लागि रहे सरनाई॥
लेहु आरति हो पुरुष निरंजन सति गुरु पूजहु जाई॥
ठाढा ब्रह्मा निगम विचारै अलख न लखिया जाई॥
तत्तु तेल नाम कीया वाती दीपक देह उज्यारा।
जोति लाई जगदीस जगाया बूझै बूझनहारा।
पचे सवद अनाहत वाजे सगे सारिंगपानी।
कवीरदास तेरी आरती कीनी निरकार निरवानी॥२१०॥

सुरति सिमृति दुइ कन्नी मुंदा परमिति वाहर खिंथा।
सुन्न गुफा महि आसरण वैसरण कल्प विवर्जित पंथा॥
मैरे राजन मैं वैरागी जोगी मरत न साग विजोरी॥
खंड ब्रह्माड महि सिंडी मेरा वटुवा सव जग भसमाधारी।
ताडी लागी त्रिपल पलटिये छूटै होइ पसारी॥
मन पवन्न दुई तूवा करिहै जुग जुग सारद साजी।
थिरु भई नती टूटसि नाही अनहद किंगुरी वाजी॥
सुनि मन मगन भये है पूरे माया डोलन लागी।
कहु कवीर ताकी पुनरपि जनम नही खेलि गयो वैरागी॥२११॥

सुग्ह की सैसा तेरी चाल। तेरा पूछट ऊपर झमक वाल॥
इस घर मह है सु तू ढुंढि खाहि। और किसही के तू मति ही जाहि॥
चाकी चाटै चून चाहि। चाकी का चीथरा कहा लै जाहि॥
छीके पर तेरी वहुत डीठ। मत लकरी सोटा परै तेरी पीठ॥
कहि कवीर भोग भले कीन। मति कोऊ मारै ईंट ठेम॥२१२॥

सो मुल्ला जो मन स्यौ लरै। गुरु उपदेस काल स्यो जुरै॥
काल पुरुष का मरदै मान। तिस मुल्ला को सदा सलाम॥
है हजूरि कत दूरि वतावहू। दुंदर वाधहु मुंदर पावहु॥
काजी सो जो काया विचारै। काया की अग्नि ब्रह्म पै जारै॥
सुपनै विन्दु न देई जरना। तिस काजी कौ जरा न मरना॥
सो सुरतान जो दुइ सुर तानै। वाहर जाता भीतर आनै॥
गगन मंडल महि लस्कर करै। सो सुरतानु छत्र सिर धरै॥

जोगी गोरख गोरख करै। हिंदू राम नाम उच्चरै ॥
मुसलमान का एक खुदाई। कबीर का स्वामी रह्या समाई ॥२१३॥

स्वर्ग वास न बाछियै डारियै न नरक निवासु।
होना है सो होइहै मनहि न कीजै आसु ॥
रमय्या गुन गाइयै जाते पाइयै परम निधानु।
क्या जप क्या तप सयमी क्या व्रत क्या इस्नान ॥
जब लग जुक्ति न जानियै भाव भक्ति भगवान ॥
सम्पै देखि न हर्षियौ विपति देखि न रोइ ॥
ज्यो सपै त्यो विपत है विधि ने रच्या सो होइ।
कहि कबीर अब जानिया संतन रिदै मभारि ॥
सेवक सो सेवा भले जिह घट बसै मुरारि ॥२१४॥

हज्ज हमारी गोमती तीर। जहाँ बसहि पीतंबर पीर ॥
वाहु वाहु क्या खूब गावता है। हरि का नाम मेरे मन भावता है ॥
नारद सारद करहि खवासी। पास बैठि विधि कवला दासी ॥
कठे माला जिहवा नाम। सहस नाम लै लै करो सलाम ॥
कहत कबीर राम गुन गावौ। हिंदू तुरक दोऊ समभावौ ॥२१५॥

हम घर सूत तनहि नित ताना कंठ जनेऊ तुमारे ॥
तुम तो वेद पढहु गायत्री गोंविद रिदै हमारे ॥
मेरी जिह्वा विष्णु नयन नारायण हिरदै बसहि गोविदा।
जम दुआर जब पूछसि बवरे तब क्या कहसि मुकुदा ॥
हम गोरू तुम ग्वार गुसाइ जनम जनम रखवारे।
कबहूँ न पार उतार चराइह कैसे खसम हमारे ॥
तू बाह्मन मैं कासी का जुलहा बूझहु मोर गियाना।
तुम तौ पाचे भूपति राजे हरि सो मोर धियाना ॥२१६॥

हम मसकीन खुदाई बन्दे तुम राचसु मन भावै।
अल्लह अवलि दीन को साहिब जोर नही फुरमावै ॥
काजी बोल्या बनि नही आवै ॥

रोजा धरै निवाजु गुजारै कलमा भिस्त न होई।
सत्तरि काबा घरही भीतर जे करि जानै कोई ॥

निवाजु सोई जो न्याइ बिचारै कलमा अकलहि जानै ।
पाँचहु मूसि मुसला बिछावै तब तौ दीन पछानै ॥
खसम पछानि तरस करि जीय महि मारि मणी करि फीकी ।
आप जनाइ और को जानै तब होइ भिस्त सरीकी ॥
माटी एक भेष धरि नाना तामहि ब्रह्म पछाना ।
कहै कबीर भिस्त छोडि करि दोजक स्यो मन माना ॥२१७॥

हरि बिन कौन सहाई मन का ।
माता पिता भाई सुत बनिता हितु लागो सब फन का ॥
आगे कौ किछु तुलहा बांधहु क्या भरोसा धन का ।
कहा बिसासा इस भांडे का इतनकु लागै ठनका ॥
सगल धर्म पुन्न फल पावहु धूरि बांछहु सब जन का ।
कहै कबीर सुनहु रे संतहु इहु मन उडन पखेरू बन का ॥२१८॥

हरि जन सुनहि न हरि गुन गावहि । बातन ही असमान गिरावहि ॥
ऐसे लोगन स्यो क्या कहिये ।
जो प्रभु कीये भगति ते बाहज । तिनते सदा डराने रहिये ॥
आपन देहि चुरू भरि पानी । तिहि निदहि जिह गंगा आनी ॥
बैठत उठत कुटिलता चालहि । आप गये औरनह घालहि ॥
छाडि कुचर्चा आन न जानहि । ब्रह्माहू को कह्यो न मानहि ॥
आप गये औरनहू खोवहि । आगि लगाइ मंदिर मे सोवहि ॥
औरन हँसत आप हहि काने । तिनको देखि कबीर लजाने ॥२१९॥

हिंदू तुरक कहाँ ते आये किन एह राह चलाई ।
दिल महि सोच बिचार कवादे भिस्त दोजक कित पाई ॥

काजी तै कौन कतेब बखानी ।
पढत गुनत ऐसे सब मारे किनहू खबर न जानी ॥
सकति सनेह करि सुन्नति करियै मैं न बदौंगा भाई ।
जौ रे खुदाइ मोहि तुरक करैगा आपनही कटि जाई ॥
सुन्नत किये तुरक जे होइगा औरत का क्या करियै ।
अर्द्ध सरीरी नारि न छोडै ताते हिंदू ही रहिये ॥
छाडि कतेब राम भजु बौरे जुलम करत है भारी ।
कबीर पकरी टेक राम की तुरक रहे पचि हारी ॥२२०॥

हीरै हीरा वेधि पवन मन सहजे रह्या समाई।
सकल जोति इन हीरै वेधी सतिगुरु वचनी मैं पाई ॥
हरि की कथा अनाहद वानी हंस ह्वै हीरा लेइ पछानी।
कह कबीर हीरा अस देख्यो जग महि रह्या समाई।
गुपता हीरा प्रकट भयो जब गुर गम दिया दिखाई ॥२२१॥

हृदय कपट मुख ज्ञानी। झूठे कहा विलोवसि पानी ॥
काया माँजसि कौन गुना। जो घट भीतर है मलनाँ ॥
लौकी अठ सठि तीरथ न्हाई। कौरापन तऊ न जाई ॥
कहि कबीर वीचारी। भव सागर तारि मुरारी ॥२२२॥